विषय-सूची

अठारहसौ सत्तावन

: १ :

विद्रोह या स्वातंत्र्य-संग्राम ?

भारतीय इतिहास मे १८५७ की क्राति एक अत्यत महान और महत्वपूर्ण घटना है। इस ऐतिहासिक काड मे दिल्ली, कानपुर, अवध, झासी, बिहार, ग्वालियर आदि भागो मे युद्ध की ज्वालाएं बडे ही विकराल रूप मे प्रकट हुई थी। सारा उत्तरी भारत इसकी आच से सिहर उठा था। इस युद्ध मे एक लाख से अधिक भारतीयो ने अपना बलिदान कर दिया और इससे भी अधिक लोग बे-घरबार और निस्सहाय हो गए। १७५७ मे प्लासी के रणक्षेत्र मे भारतीयो को हराकर अग्रेजो ने इस देश मे यूनियन जैक फहराया था। इस विजय से उनका साम्राज्य-मद सीमा पार कर गया। सारे हिदुस्तान को अधीन करने की नीति उन्होने तेज गति से आगे बढाई। १८५७ मे अग्रेजो की इस नीति के विरुद्ध एक तीव्र विस्फोट हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य डगमगाने लगा। अग्रेज तक समझने लगे कि उनके साम्राज्य का दुर्ग हिदुस्तान मे ढह चुका है।

इस क्रातिकारी घटना के पीछे कौनसी शक्तिया थी जिनसे प्रेरणा और स्फूर्ति पाकर भारत के हजारो-लाखो नर-नारी मरने-मारने के लिए तैयार हो गए थे ? जब राष्ट्र रणागण मे उतरकर रणदेवी का आह्वान करता है, उसको प्रसन्न करने के लिए असख्य प्राण तथा अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हो जाता है, तो इस उत्सर्गमय वातावरण और मनोदशा का निर्माण करनेवाली शक्ति का भी अत्यत प्रबल तथा प्रभावपूर्ण होना आवश्यक है। अधिकतर इतिहासकार अक्सर तात्कालिक कारणो को ही वास्तविक कारण मानकर और गहराई मे न जाकर मौलिक कारणो को ढूढने का प्रयत्न नही करते। परिणामस्वरूप उनके द्वारा लिखे गए इतिहास

तत्कालीन परिस्थिति पर स्पष्ट तथा मार्गदर्शक प्रकाश डालने मे असमर्थ होते है । १८५७ के जैसे महायज्ञ के कारणो का पता मृत्तिकामय हवन-कु ड अथवा ~ .से निकलनेवाली ज्वाला से नही लग सकता, प्रत्युत उस यज्ञकुंड मे आहुति देनेवाले करो का नियत्रण करनेवाले धडकते हृदयो मे ही उनके दर्शन हो सकते है ।

अनेक अग्रेज इतिहासकारों ने जान-बूझकर १८५७ की ऐतिहासिक घटनाओ के सबध मे मति-भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया है । इस युद्ध मे वे एक पक्ष थे, अतएव उनका ऐसा करना एक तरह से क्षम्य है, पर जब हम भारतीय इतिहासकारो को उनके पद-चिह्नो पर चलते देखते है तो हमे दु ख होता है । अग्रेज इतिहासकारो के स्वर-मे-स्वर मिलाकर कई भारतीय इतिहासकारो ने १८५७ के सग्राम को 'सिपाहियो के विद्रोह' के नाम से पुकारा है । अग्रेज साम्राज्यवादियों ने जब अपनी सेना को, जो उन्होंने इसी देश के लोगो से इसी देश को जीतने के लिए बनाई थी, अपने-ही विरुद्ध बदूके तानते हुए देखा, तो उन्होने इसे 'सिपाही-विद्रोह' के नाम से पुकारा, पर उनसे पूछा जाय कि इस युद्ध के नेता बहादुरशाह, नानासाहब पेशवा, तात्याटोपे, महाराणी लक्ष्मीबाई, मौलवी अहमदशाह, कुवरसिह, अमरसिह, अज़ीमुल्ला आदि कब अग्रजी सेना के सिपाही रहे थे ?

'विद्रोह' शब्द का प्रयोग भी एक अत्यत सीमित दायरे तक ही उचित कहा जा सकता है । यह ठीक है कि इस सग्राम मे अग्रेज़ी सेना के हिदुस्तानी सैनिको ने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया । जब इन सैनिको ने सारे अनुशासन को तोडकर अग्रेजी सत्ता को मिटाने के लिए अग्रजो के विरुद्ध हथियार उठाये, तो उनका यह कार्य भले ही विद्रोह के नाम से पुकारा जाय, पर इस क्राति की योजना बनानेवाले सिपाही न थे । क्राति की योजना बनानेवालो ने सिपाहियो के असतोष का अपने उद्देश्य की पूर्त्ति मे केवल साधन के रूप मे उपयोग किया । सुप्रसिद्ध इतिहासकार मैलिसन ने अपने ग्रथ 'भारतीय विद्रोह का इतिहास' के तृतीय भाग की भूमिका मे लिखा है, "मै तो इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि १८५७ का युद्ध चरबी लगे कारतूसों के

कारण नही हुआ, न सिपाहियों के मतिष्क मे इसका जन्म हुआ और न उन्होने इसकी योजना बनाई। चरबी लगे कारतूस तो एक उपयुक्त साधन-मात्र थे, जिसका षड्यंत्रकारियो ने अत्यत कुशलता से उपयोग किया।"

भारतीयों ने कभी भी ब्रिटिश सत्ता को स्वीकार नही किया। सेना के बल पर, फूट से लाभ उठाकर, डलहौजी ने भारतीय शासकों को गद्दी से उतारा और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इन शासको ने और जनता ने अग्रेजो के इस कार्य को सदा अन्याय तथा अत्याचार माना। अत इस अन्याय अथवा अत्याचार को दूर करने के लिए किये गए प्रयत्न को विद्रोह कहना उचित न होगा।

१८५७ की घटनाओ मे दो प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। एक धर्म और सस्कृति का, और दूसरा विदेशी सत्ता को नष्ट करने के राष्ट्रीय सकल्प का। ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाही अपने धर्म की रक्षा के लिए अग्रेज सरकार के विरुद्ध खडे हुए थे। अपने धर्म की रक्षा के लिए उन्होने अग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। दूसरा प्रवाह था भारतीय शासको, जमीदारो, उच्च अधिकारियो आदि का, जो अपने खोये हुए राज्य तथा सत्ता को प्राप्त करना चाहते थे। ये दोनो प्रवाह अलग-अलग बहने-वाले प्रवाह न थे। इन दोनो प्रवाहो का सगम हुआ। धर्म-युद्ध और राज-नैतिक मुक्ति के राष्ट्रीय सकल्प, के ये दोनो भिन्न प्रवाह एक मे मिल गए और इन्होने स्वातन्त्र्य-सग्राम के महानद का रूप धारण किया।

यह ठीक है कि उस समय की स्वतत्रता का अर्थ आज की स्वतत्रता के अर्थ से भिन्न था। आज ससार मे लोकतत्र की जो भावना विकसित हुई है, वह भावना उन दिनो हमारे देश मे जागृत नही हुई थी। आजकल के विचारो के आधार पर उन दिनो की घटनाओ का मूल्याकन करना एक महान ऐतिहासिक दोष होगा। उस समय स्वराज्य का अर्थ था विदेशी सत्ता के स्थान पर देशी नरेशो की सत्ता स्थापित करना। इसी दृष्टि से हम १८५७ के युद्ध को स्वातंत्र्य और स्वराज्य का युद्ध मानते है। चाहे

जनता हो, चाहे जमीदार या ताल्लुकेदार हो, चाहे वश-परपरानुगत उच्च अधिकारी हो, चाहे भारतीय शासक हो, देश के सभी वर्गो मे उस समय ब्रिटिश सत्ता को नष्ट कर देने की भावना क्रियात्मक रूप से तीव्र हो उठी थी। इसी कारण १८५७ का युद्ध मुक्ति-सग्राम अथवा स्वातन्त्र्य-सग्राम है।

तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड केनिग ने ब्रिटिश सरकार को भेजी गई रिपोर्ट मे लिखा था "मुझे इसमे जरा भी सदेह नही कि इस विद्रोह को ब्राह्मणो ने धर्म-रक्षा के नाम पर तथा अन्य लोगो ने राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्त्ति के लिए उकसाया है।"

केनिग भी इस युद्ध के धार्मिक और राजनैतिक रूप को स्वीकार करता है। प्रसिद्ध इतिहासकार इनीज ने स्पष्ट रूप से माना है—"कम-से-कम अवध मे यह स्वतत्रता का युद्ध था।"

मुगल सम्राट बहादुरशाह ने अग्रेजो के विरुद्ध दिल्ली की सेना का नेतृत्व स्वीकार करते हुए जो घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था, उससे भी इस सग्राम के उद्देश्य पर प्रकाश पडता है .

"ऐ हिदुस्तान के बाशिदो ! अगर हम इरादा कर ले तो बात-की-बात मे दुश्मन को बरबाद कर देगे और अपने मजहब और मुल्क की, जो हमे जान से भी ज्यादा प्यारे है, मुसीबतो से हिफाजत कर सकेगे।"

बहादुरशाह के बरेली के घोषणा-पत्र मे और भी स्पष्टतापूर्वक कहा गया है, "खुदा ने जितनी बरकते इसान को अता की है, उनमे सबमे कीमती बरकत आजादी की है। क्या यह जालिम नकस, जिसने धोखा देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, हमेशा के लिए हमे इससे महरूम रख सकेगा ? क्या खुदा की मरजी के खिलाफ इस तरह का काम हरदम जारी रह सकता है ? नही-नही।"

इग्लैड के 'टाइम्स' पत्र के सुप्रसिद्ध सैनिक सवाददाता विलियम रसेल ने अपनी डायरी मे लिखा है, "यह धर्म-युद्ध था, यह जाति-युद्ध था, यह प्रति-हिसा का, आशा का, विदेशी सत्ता को मिटाने और देश मे भारतीय शासकों

की पुनः स्थापना करने और देश मे हिदुस्तानी धर्मो की पूर्ण सत्ता स्थापित करने के राष्ट्रीय संकल्प का युद्ध था ।"

अमरीकन लोगो ने वाशिगटन के नेतृत्व मे अग्रेजो से जो युद्ध किया, गैरीबाल्डी और मेजिनी के नेतृत्व मे इटली ने आस्ट्रिया से जो युद्ध किया, डि वेलरा के नेतृत्व मे आयरलैड ने अग्रेजो से जो युद्ध किया, ये सब युद्ध अगर विद्रोह है, तो हमारा १८५७ का सग्राम भी विद्रोह है, पर अगर उपरोक्त सभी स्वातत्र्य-सग्राम है, तो हमारा १८५७ का युद्ध भी स्वातत्र्य-सग्राम है ।

यह ठीक है कि यद्यपि हमारा यह सग्राम सफल नही हो सका तथापि इसमे कोई सदेह नही कि यह हमारा प्रथम स्वातत्र्य-युद्ध था ।

: २ :

स्वातंत्र्य-संग्राम की पृष्ठभूमि

१८५७ की घटनाओं का प्रमुख कारण था चारो ओर फैला हुआ असतोष । अग्रजो की अन्यायपूर्ण, विश्वासघाती, अपमानजनक तथा घोर स्वार्थपूर्ण नीति के कारण इस देश में ऐसा कोई वर्ग नही रह गया था जो अग्रेजो से प्रसन्न हो । सभी श्रेणियो के लोग अनुभव करने लगे थे कि अग्रेजी राज्य के कारण उन्हे बहुत हानि हुई है और उनका भविष्य अंधकारमय हो गया है ।

जिस सेना के बल पर अग्रेजो ने इस देश मे अपना सर्वसत्तात्मक राज्य स्थापित किया, वह अग्रेजो से इस समय अत्यत असतुष्ट थी । अग्रेज राजनीतिज्ञ अकसर कहा करते है कि उन्होने तलवार के जोर से हिदुस्तान को जीता, पर जिस तलवार ने उन्हे इस देश का सर्वश्रेष्ठ शासक बनाया, वह तलवार गोरे हाथो मे नही थी, वह तलवार थी हिदुस्तानी हाथो मे । १७५७ का प्लासी का युद्ध, जिसमे ब्रिटिश साम्राज्य की सुदृढ नीव रखी गई, अग्रेजी तलवारो ने नही जीता था । उसमे विजय प्राप्त की मद्रासी सिपा-

हियों की तलवारो ने। फ्रास के प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ डूप्ले के उर्वर और चतुर मतिष्क मे देशी सेना की सहायता से इस देश मे विदेशी राज्य स्थापित करने की कल्पना सर्व-प्रथम उत्पन्न हुई। फ्रास से आवश्यक सहायता न मिल सकने के कारण वह अपने प्रयत्न मे असफल रहा। पर अग्रेज डूप्ले की इस कल्पना को साकार-रूप देकर इस देश मे अपना साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हुए।

जबतक देश मे अग्रेजो की सत्ता दृढ नही हुई थी, तबतक अग्रेज देशी सेना की बडी इज्जत करते थे। उनके सामाजिक और धार्मिक विश्वासो के विरुद्ध कभी कोई कार्य न करते थे; पर ज्यो-ही अग्रेजो की इस देश मे सार्वभौम सत्ता स्थापित हुई कि उनका व्यवहार बदल गया। वे उन्हे तुच्छता की दृष्टि से देखने लगे। पहले अग्रेज देशी सेना से हिल-मिल जाते थे, उनके खेल-कूद मे भाग लेते थे, पर अब उन्हे देशी सिपाहियो की हरएक बात घृणित मालूम होने लगी। अब तो वे विजेता थे और हिदुस्तानी विजित। अब वे देशी सेना से विशेष संबध नही रखते थे। अब उनका मनोरजन क्लबो मे होने लगा। धार्मिक विश्वासो और सामाजिक प्रथाओ के बजाय अनुशासन को महत्व दिया जाने लगा। फौज के लिए नई-नई आज्ञाए निकलने लगी। पहले कान के पास कलम रखकर नीचे की दाढी बनाने की आज्ञा निकली, फिर कान मे बालिया न पहनने का आदेश आया। माथे पर चंदन लगाने की मनाही की गई। साफे के स्थान पर अग्रेजी ढंग के टोप पहनने की आज्ञा हुई। इन सबके परिणामस्वरूप भारतीय सिपाही कुछ शकित हो उठे।

गोरी और देशी फौज मे आर्थिक असमानता भी बढ़ती गई। गोरे सिपाहियों और अफसरो को बहुत अधिक वेतन मिलते थे, पर देशी सिपाहियों को बहुत कम वेतन पर सतोष करना पडता था। पद-वृद्धि भी पराक्रम और वीरता के आधार पर नही होती थी। देशी सिपाही चाहे कितने वीर क्यो न हो, वे कर्नल, कैप्टन तथा लेफ्टिनेट आदि पदो पर नही जा सकते थे। सभी उच्च पद गोरो के लिए सुरक्षित थे।

इस प्रकार देशी सेना मे अग्रेजो के प्रति अविश्वास और घृणा बढती जा रही थी । सन १८०६ का वेलोर का विद्रोह इस असतोष का प्रथम विस्फोट था ।

१७९८ तक ईस्ट इडिया कपनी का प्रमुख उद्देश्य व्यापार करना था । व्यापार की उन्नति करके अधिक-से-अधिक लाभ उठाना उसे अभीष्ट था । उस समय हिदुस्तान की दशा राजनैतिक दृष्टि से बडी शोचनीय थी । देश मे ऐसा कोई महान शासक अथवा राजनीतिज्ञ नही रह गया था जिसकी ओर सभी आदर और विश्वास की दृष्टि से देखते । चारो ओर अव्यवस्था फैली हुई थी । आपसी मतभेद चरम सीमा को पहुच चुके थे । स्थानीय अग्रेजो को देश की गडबडी से लाभ उठाने की इच्छा हुई । वे चाहते थे कि किसी-न-किसी प्रकार स्थानीय राज्यो की राजनीति मे पडकर इस देश मे अग्रेजी राज्य स्थापित किया जाय । पर ईस्ट इडिया कपनी के तत्कालीन डायरेक्टर नही चाहते थे कि अग्रेज यहा की राजनीति मे भाग ले, युद्ध लडे और व्यर्थ खर्च का बोझ अपने सिर पर ले । उन्होने अपने कर्मचारियो को स्पष्ट आदेश दिया कि वे स्थानीय झगडो मे न पडे । इसी नीति का परिणाम था कि वारेन हेस्टिग्ज को अवध की राजनीति मे भाग लेने तथा अपने साम्राज्य स्थापित करने के कार्यो के लिए उत्तर देना पडा । लेकिन लार्ड वेलेजली के कार्य-काल तक अग्रेजी नीति मे काफी परिवर्तन हो गया । उसे तत्कालीन भारतीय परिस्थिति मे काम करने की स्वतत्रता प्राप्त हो गई थी । कपनी के डायरेक्टर अब भारतीय राजाओ के आपसी झगडो मे पडने के उतने विरुद्ध नही रहे थे । अगर विशेष धन-हानि के बिना राज्य स्थापित होना सभव हो तो वे उसके विरुद्ध नही थे । लार्ड वेलेजली ने आते ही अंग्रेजी राज्य स्थापित करने के अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए प्रयत्न करना आरभ किया । यहा के लोगो मे वह फूट के बीज बोने लगा । राज्य के लिए जब भाइयो मे आपसी झगडा उठ खडा होता तो अपने लिए हितकर व्यक्ति चुनकर अग्रेज उसकी सहायता करते और उसे गद्दी पर आसीन कराते । बलवान राजा के मंत्री अथवा सेनापति को लालच

देकर अपने मालिक के विरोध मे खडा कर देते, ताकि वह राजा निर्बल हो जाय । किसी राजा को अयोग्य कहकर उसके विरुद्ध किसी अन्य दावेदार को खडा कर अपना मतलब साधने का प्रयत्न करते । इस प्रकार देश मे चारो ओर अशाति और अरक्षा का वातावरण उत्पन्न किया गया । हर एक राजा दूसरे राजाओ की ओर अविश्वास की दृष्टि से देखने लगा । वह समझता था कि उसका राज्य सुरक्षित नही है । इस विषम परिस्थिति का वेलेज़ली ने खूब फायदा उठाया । उसने राजाओ से कहा कि हम तुम्हारी सुरक्षा का दायित्व लेते है । हम अपनी फौज तुम्हारे राज्य मे बाहरी आक्रमण से तुम्हारी रक्षा करने के लिए रखेगे । उसने देशी राज्यो मे फौजे रखी और उनके खर्च के लिए बडी-बडी रकमे उनसे वसूल की जाने लगी । अगर वे रकम देने मे असमर्थ होते तो उनके राज्य का एक भाग अंग्रेज अपने कब्जे मे कर लेते । वेलेजली ने पहले तो छोटे-छोटे तथा निर्बल राज्यो पर अपनी सुरक्षा-सेना लादी । तदुपरात बडे-बडे राजाओ—निज़ाम, गायकवाड, पेशवा आदि को भी सुरक्षा-सेना रखने के लिए बाध्य किया । इस प्रकार वेलेजली ने अपने कार्यकाल मे हिदुस्तान मे अंग्रेजो की सार्वभौम सत्ता स्थापित की । वेलेज़ली के समय मे देशी राजाओ को अपने आतरिक मामलों मे स्वतत्रता थी । राज्य का शासन, उत्तराधिकार आदि बातों का निर्णय करने के लिए वे स्वतंत्र थे । पर डलहौजी के पदार्पण करते ही राजाओ के उपरोक्त अधिकारो पर भी कुठाराघात किया गया । शासन-व्यवस्था तथा उत्तराधिकार मे भी डलहौज़ी ने दखल देना आरभ किया । भारत आते समय उसने कहा था, "मै इस देश को समतल बनाना चाहता हूं ।" उसका उद्देश्य था सारे हिदुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करना । उसने अपने कार्य-काल मे अनेक देशी राज्यों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया । पजाब, दिल्ली, सतारा, झासी, अवध, नागपुर, तंजौर, सिंध आदि बहुत-से राज्य समाप्त हो गए और अंग्रेजी साम्राज्य के अंग बन गए । १८५७ की घटनाओ के कारणो मे लार्ड डलहौज़ी की यह राज्य-तृष्णा भी एक प्रमुख कारण थी ।

इस समय देश मे जमीदारो और ताल्लुकेदारो का एक बहुत बडा वर्ग था। अपने इलाके मे सुरक्षा बनाये रखने के लिए ये छोटी-छोटी सेनाए रखते थे। समाज मे उनका बडा आदर तथा प्रभाव था। उन्हे वश-परपरागत अधिकार प्राप्त थे। अतएव वे काफी संपन्न तथा शक्तिशाली हो गए थे। वे अपने इलाके के एक प्रकार से राजा थे। इतने समृद्धिशाली तथा बलवान वर्ग को भला अग्रेज कैसे जीवित रहने देते ?

अग्रेज शासको ने इनके अधिकारो को मर्यादित करने के कानून बनाये। नये नियम तथा नये बदोबस्त से ये लोग जकड दिये गए। पर इतने से अग्रेज सतुष्ट नही हुए। वे तो जमीदारी तथा ताल्लुकेदारी समाप्त करना चाहते थे। किसी-न-किसी बहाने उन्होने जमीदारियो को जब्त करना आरभ किया। जमीदारी की व्यवस्था ठीक नही, प्रजा को कष्ट है, जमीदारो पर कर्ज हो गया है, वे मालगुजारी समय पर अदा नही करते, आदि अनेक कारण उपस्थित कर उन्होने एक-के-बाद-एक जमीदारियो को समाप्त करना आरभ किया। डलहौजी ने एक कमीशन की नियुक्ति की और उसके द्वारा जमीदारो की सनदो की जाच की। जमीदारो तथा ताल्लुकेदारो से कहा गया कि वे सिद्ध करे कि उनके पास जो इलाके है, वे उन्हीके है। उन्हे पुराने कागज़ात पेश करने की आज्ञा दी गई। अधिकाश जमीदारो तथा ताल्लुकेदारो के पूर्वजो ने रणक्षेत्र मे पराक्रम करके अपनी तलवार के ज़ोर पर इन इलाको को जीता था। वे भला कहा से कागज़ात पेश करते ? जिनके पास कागज़ात थे भी, वे नष्ट हो गए थे। वे अपने अधिकार कैसे सिद्ध करते ?

जिन जमीदारो ने कागजात ढूढ-ढाढकर निकाले, उनके अर्थ इतने मनमाने ढंग से लगाये गए कि उनमे से कइयो को अपने इलाको से हाथ धोना पडा।

पुरानी सनदो के अर्थ किस अन्याय तथा हास्यास्पद ढग से लगाये गए, उसके कुछ उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। एक जमीदार की सनद मे स्पष्ट रूप से लिखा था कि इलाका उन्हे वश-परपरागत दिया गया है। 'वश-परपरागत' का अर्थ लगाया गया केवल तीन पीढ़ियो तक। "हम

अथवा हमारे वशज जबतक है, तबतक इस जमीदारी को हाथ न लगाया जाय ।" इस सनद के रखनेवाले जमीदार से कहा गया कि उसको सनद देनेवाला राज्य अग्रजी राज्य मे मिल चुका है, उसका अब अस्तित्व नही है, इसलिए उसका इस इलाके पर कोई अधिकार नही रहा ।

इस प्रकार ३५ हजार जमीदारियो की इस कमीशन ने जाच की और २१ हजार जमीदारिया समाप्त करके उनके इलाके अग्रेजी राज्य मे मिला लिये गए ।

इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि देश का एक प्रबल और प्रभावशाली वर्ग अग्रेजो का विरोधी हो गया ।

गावो मे रहनेवाली साधारण जनता भी अग्रजो की ओर अविश्वास की दृष्टि से देखने लगी । उसने देखा कि जो ग्राम-पचायते सदा उनकी भलाई किया करती थी, उनके आपसी मामले तय किया करती थी, संकट पडने पर सहायता देती थी, जिनके डर से कोई उनपर अत्याचार नही कर पाता था, वही पचायते अब नष्ट कर डाली गई है । ये पचायते जनहित का कार्य अत्यत दक्षता से करती थी । उनका स्थान अग्रेज राज्य के हितरक्षक चौकीदार, पटवारी और थानेदारो ने ले लिया । ग्राम जनता अपने को असुरक्षित और असहाय अनुभव करने लगी ।

अग्रेजो ने एक नई शिक्षा-प्रणाली आरभ की । उसका उद्देश्य उसके जनक लार्ड मैकाले के शब्दो मे ही सुनिये :

"हमे एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना है जो हमारे तथा करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, सबध स्थापित करने का काम करे । यह वर्ग अपने रग-रूप से तो हिंदुस्तानी अवश्य होगा, पर रुचि, विचार, भाषा और बुद्धि से वह अग्रेज होगा ।"

इस नवीन प्रणाली के आधार पर चलाई जानेवाली शिक्षा-संस्थाओं से थोडी-बहुत अंग्रेजी पढकर जो 'बाबू लोग' निकलते थे, उन्हे ईस्ट इंडिया कपनी के कार्यालयों में नौकरिया मिल जाती थी । कपनी की नौकरी करने मे उन दिनो धन तो मिलता ही था, साथ ही नौकरी करनेवालो को

लोगो पर अपना अधिकार जताने का अवसर भी मिलता था। ये अंग्रेजी का अधकचरा ज्ञान रखनेवाले बाबू लोग अपने को अत्यत विद्वान और ज्ञानी समझने लगे। साधारण जनता के प्रति घृणा नही, तो उदासीनता का तो अवश्य ही व्यवहार करने लगे। इसी कारण साधारण जनता भी इन बाबुओं का निर्माण करनेवाली शिक्षा-प्रणाली की निदा करने लगी और अग्रेजो को नवीन पीढी को बिगाडने का दोष देने लगी।

हिदुस्तान मे पूर्ण राजनैतिक सत्ता स्थापित होते ही अग्रेजों को इस बात की चिता हुई कि उनका यह साम्राज्य किस प्रकार स्थायी हो। किसी भी राष्ट्र के पुनरुत्थान की तभी तक आशा की जा सकती है, जबतक कि उस राष्ट्र मे स्वाभिमान है, अपनी प्राचीन श्रेष्ठता पर वह गर्व करता है और उसके हृदय मे खोये हुए गौरव को प्राप्त करने की लालसा है। अग्रेज जानते थे कि हिदुस्तानी अपने धर्म के बडे पक्के होते है। धर्म के लिए मरना उनके लिए मामूली बात होती है। इसीलिए अग्रेज शासकों ने हिदुस्तानियो के धर्माभिमान को नष्ट करने की नीति अपनाई। उन्होंने हिदुस्तानियो की धार्मिक भावनाओ पर आघात करना आरंभ किया।

ईस्ट इडिया कपनी के डायरेक्टरो के बोर्ड के अध्यक्ष मैगिल्स ने कामन्स सभा मे भाषण देते हुए कहा था:

"ईश्वर ने इग्लैड को हिदुस्तान के विशाल साम्राज्य का भार इसलिए सौपा है कि ईसाई धर्म का झडा हिदुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक फहराया जा सके। समस्त हिदुस्तान को ईसाई बनाने के प्रयत्न में हमे थोडा भी विलंब नही करना चाहिए।"

पादरी कैनेडी ने भी इसीसे मिलती-जुलती बात कही, "जबतक हिदुस्तान मे हमारा राज्य है, तबतक हमे यह न भूलना चाहिए कि हमारा प्रमुख कार्य इस देश मे ईसाई धर्म की स्थापना करना है। जबतक कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक ईसाई धर्म नही फैल जाता, तबतक हमे अपना प्रयत्न जारी रखना चाहिए।"

सुप्रसिद्ध विद्वान मैकाले ने भी अपनी नवीन शिक्षा-प्रणाली के परिणाम-

स्वरूप यह स्वप्न देखा

"मेरा विश्वास है कि अगर हमारी शिक्षा-प्रणाली स्थापित की गई तो बगाल मे ३० वर्ष के अदर कोई मूर्त्तिपूजक शेष नही रहेगा ।"

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रबल प्रयत्न आरभ हुए । चौराहे-चौराहे पर ईसाई-धर्म-प्रचारक हिंदू-मुसलमानो के धर्म की हसी उडाते । वे हिंदुओ के देवी-देवताओ तथा मुसलमानो के पैगबर के प्रति असभ्य शब्दों का प्रयोग करते और अपने ईसाई धर्म की तारीफ के पुल बाधते ।

जो हिदुस्तानी अपना धर्म छोडकर ईसाई धर्म ग्रहण करता, उसकी बडी प्रशंसा की जाती । उसको उसी समय उच्च पद प्रदान किया जाता । अभीतक मुसलमानो अथवा हिंदू राजाओ और नवाबो के समय मे मंदिरों और मस्जिदो की व्यवस्था के लिए इनाम, भूमि आदि दी जाती थी, पर अग्रेज शासको ने मदिरों-मस्जिदो को धन देना बद ही नही किया, वरन उनके पास जो धन था, उसको भी जप्त कर लिया । लार्ड केनिग ने हिदुस्तान में पदार्पण करते ही मुक्त-हस्त होकर ईसाई मिशनरियो को हजारो रुपये बांटना आरभ कर दिया । ईसाई धर्म के प्रचारको और पादरियो को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाता था ।

इसी समय अग्रेजी सरकार ने भारतवासियो की धार्मिक, सामाजिक और नैतिक भावनाओ की परवाह किये बिना कानून बनाना आरंभ कर दिया । सती-प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया गया । विधवा-विवाह वैधानिक घोषित किया गया । बहु-विवाह-प्रथा की रोक और धर्मातर करने पर भी वारिसी-अधिकार प्रदान करने के कानून शीघ्र ही बननेवाले थे । इन सब बातों को जनता ने धर्म पर आघात माना ।

इस प्रकार देश मे राजाओ, नवाबो, जमीदारो, ताल्लुकेदारो, मध्यम वर्ग के लोगो तथा साधारण जनता मे असतोष की अग्नि धीरे-धीरे प्रज्वलित होने लगी ।

: ३ :

अंग्रेजों का राज्य-विस्तार

पेशवाई की समाप्ति

अग्रेज राजनीतिज्ञ इस बात को जानते थे कि जबतक मराठो को निस्तेज नही किया जाता, तबतक ब्रिटिश सत्ता का हिदुस्तान मे जमना बड़ा कठिन है। महदजी शिदे तथा नाना फडनवीस के जीवित रहते मराठा-मंडल की ओर आख उठाकर देखने की भी हिम्मत अग्रेजो मे नही थी। इन दो महापुरुषो की मृत्यु होते ही जो गडबडी उत्पन्न हुई, उसका पूरा-पूरा लाभ अग्रेजो ने उठाया। सबसे पहले पेशवाओ की राजधानी पूना की ओर उनकी वक्र दृष्टि गई। उन्होने पेशवा को एक अलग सधि करने के लिए बाध्य किया। इस सधि के अनुसार पूना मे अग्रेजी फौज रखी गई तथा अंग्रेजो का एक रेजीडेट पूना मे रहने लगा। पेशवा अभी तक मराठा-मडल का नेता था, पर इस सधि द्वारा पेशवा को मराठा-मडल से अलग कर दिया गया तथा उनमे फूट के वीज बो दिये गए।

पेशवाओ के महत्व को नष्ट करने के बाद अग्रेजो ने मराठा सरदारो से अलग-अलग सधिया की। १८०५ तक सिधिया, होल्कर, भोसले आदि सभी ने अग्रेजो की सत्ता स्वीकार करली। इनके यहा अग्रेजी फौज रहने लगी। इससे मराठा-मडल मे भयकर असतोष फैला। आपसी फूट का परिणाम प्रत्यक्ष सामने देखकर सभी सरदारो की आखे खुल गई। खोई हुई स्वतत्रता को फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न आरभ हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि पेशवाओं के नेतृत्व मे सभी मराठा सरदार पुन एक होकर अग्रजो की सत्ता को उठाकर फेकने का प्रयत्न करनेवाले है।

अंग्रेज घबडा उठे। उन्होने अत्यत विश्वासघाती और देशद्रोही बालाजी पत नातू की सहायता से मराठा सरदारो मे फूट के बीज बोना आरंभ किया। वे जानते थे कि जबतक पेशवाओ को कुचला नही जाता,

तबतक दक्षिण मे अंग्रजी राज्य स्थिर नही रह सकता । अकस्मात अग्रेजो को स्मरण हो आया कि मराठा राज्य के सच्चे अधिकारी पेशवा नही, सतारा के छत्रपति है ! अतएव उन्होने बालाजी पंत नातू की सहायता से छत्रपति प्रतापसिह को पेशवाओं के विरुद्ध भडकाना आरभ किया ।

उससे कहा गया—"पेशवा तो आपके प्रधान-मात्र थे, पर उन्होने सभी सत्ता अपने हाथो मे ले ली है और आपको प्रतिबध लगाकर सतारा मे रखा है । हमारा हृदय आपकी सहानुभूति मे फटा जा रहा है । अगर आप पेशवा का पक्ष छोडकर हमारा साथ दे तो हम विद्रोही पेशवा को हराकर आपका राज्य आपको सौप दे । तभी आप सच्चे अर्थ मे छत्रपति कहला सकेंगे ।"

तरुण प्रतापसिह अंग्रेजों की चाल को न समझ सका । देशद्रोही नातू ने उसके सामने भावी ऐश्वर्य और वैभव का जो चित्र खीचा, उससे उसकी आखे चकाचौध हो गई । अग्रेजो को वह अपना त्राता और सच्चा हितैषी समझने लगा । अग्रेजो की चाल सफल हो गई । इधर पेशवा मराठा सरदारो की सम्मति से अग्रजो को ललकार चुका था । बाजीराव पेशवा ने अग्रेजो के विरुद्ध लडाई आरभ कर दी । इसी समय छत्रपति प्रतापसिह चुपचाप अग्रेजो की छावनी मे पहुचा और उसने वही से घोषणा की .

"बाजीराव पेशवा नालायक है । अतएव उसे पेशवा के पद से अलग किया जाता है । उसके कार्यों से पेशवाई को बहुत हानि पहुची है और भविष्य मे भी पहुंचने की संभावना है, अत· वह अपने पद से हटाया जाता है। भविष्य मे उसकी सहायता करनेवाले विद्रोही माने जायगे । राज्य का सब काम हमने स्वत. देखने का निश्चय किया है । इसलिए पेशवा की कोई आज्ञा न माने ।" अंग्रेजी छावनी पर यूनियन जैक के साथ मराठो का भगवा झडा भी फहराने लगा !

अग्रेजो पर आनेवाला सकट इस प्रकार टल गया । लोगो में भ्रम फैला कि किसकी आज्ञा मानी जाय, पेशवा की अथवा छत्रपति की ? पेशवा युद्ध मे हार गया । उसका राज्य अग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया । सतारा का

अधिपति तो उनके हाथ मे था ही, फिर भी सतारा-विजय का नाटक खेला गया। किले पर अग्रेजी फौज ने गोलिया चलाई । भीतर तो सब अंग्रेजो का हो ही चुका था, विरोध मे एक भी गोली न चली । इस प्रकार अग्रेजों ने "सतारा को हमने तलवार से जीता" ऐसी डीग हाकने की हास्यास्पद व्यवस्था कर ली ।

पेशवाई समाप्त हुई । अब अग्रेज राजनीतिज्ञ छत्रपति को भी व्यर्थ का बोझा समझने लगे । जबतक छत्रपति शिवाजी की गद्दी पर उसके वशज विराजमान थे, तबतक किसी भी समय हिदू धर्म के अभिमानी इस गद्दी के चारो ओर एकत्र होकर अग्रेजी साम्राज्य के लिए सकट पैदा कर सकते थे । अत. शिवाजी महाराज की स्मृति दिलानेवाले किसी भी चिह्न को जीवित रखना उन्होंने घातक समझा । पेशवा के बाद अब छत्रपति प्रतापसिह की बारी थी ।

प्रतापसिह और बबई के गवर्नर मे बार-बार झगडा होने लगा । अत मे प्रतापसिह पर यह दोषारोपण किया गया कि वह अग्रेजो के विरुद्ध षड्यत्र रच रहा है । जाच के लिए एक कमीशन बैठाया गया, पर कोई बात सिद्ध न हो सकी । अंत मे बबई का गवर्नर सतारा पहुचा और उसने प्रतापसिह से कहा कि आप हमे यह लिखित रूप मे दे कि "मैने अंग्रेजो का विरोध किया, उसके लिए मुझे क्षमा किया जाय ।" प्रतापसिह की नसो मे छत्रपति शिवाजी का बहनेवाला रक्त क्षुब्ध हो उठा । उसने कहा, "मै निरपराध हू । इस अपमानजनक तथा असत्य बात को मै नही लिख सकता ।" अत मे अग्रेज शासको ने वही किया, जिसे करने का वे निश्चय कर चुके थे । ५ सितबर सन १८३९ को प्रतापसिह को छत्रपति पद से हटा दिया गया । उसके स्थान पर उसका अत्यत पतित भाई अप्पासाहब गद्दी पर बैठाया गया और देशद्रोही बालाजी पत नातू उसका दीवान बनाया गया !

प्रतापसिह ने अपने साथ किये गए अन्याय की ओर विलायत के उच्च अधिकारियो तथा वहा की जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए रगो बापूजी के नेतृत्व मे यशवतराव और भगवतराव का एक प्रतिनिधि-मडल

विलायत भेजा । इस प्रतिनिधि-मडल को रोकने मे स्थानीय अंग्रेज अधिकारियो ने कुछ भी उठा न रखा । पुलिस की सहायता से उन्हे डराया-धमकाया गया, उन्हे पकडकर जेल मे बद किया गया तथा जिस जहाज पर ये लोग जानेवाले थे, उस जहाज के कप्तान को, इनको लिये बिना ही, अपना जहाज ले जाने के लिए बाध्य किया गया । किराये के सात हजार रुपये, जो जमा किये थे, वे भी उन्हे वापस न मिले । पर रगो बापूजी दृढ-प्रतिज्ञ, सच्चे और स्वामिभक्त थे । इन बाधाओ से हताश होने के बजाय दूने उत्साह से उन्होने अपना नियोजित कार्य जारी रखा । इग्लैंड मे सतारा के भूतपूर्व रेजीडेट ग्रैंट डफ, जनरल ब्रिग्ज आदि ने उनकी बहुत सहायता की। जान ब्राइट, जोसेफ ह्यूम तथा जार्ज टामसन से भी उन्हे बडी मदद मिली । रगो बापूजी ने प्रतापसिह के प्रति किये गए अन्याय के विरुद्ध इग्लैंड मे जोरदार आदोलन किया । पत्रो मे, व्याख्यानो मे, पार्लमेंट मे, सभी सभव स्थानों मे इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठने लगी । इग्लैंड की जनता भी हिंदुस्तान के अधिकारियो को धिक्कारने लगी । अंग्रेजो के लिए प्रतिष्ठा बडी वस्तु होती है । अन्याय को स्वीकार करके भी वे इसका परिमार्जन करने के लिए कभी तैयार नही होते । १८४७ मे प्रतापसिह की काशी में मृत्यु हो गई । रंगो बापूजी के आदोलन और प्रचार से व्याकुल होकर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के अध्यक्ष हॉबहाउस ने उसी वर्ष दिसबर मास मे तत्कालीन गर्वनर-जनरल डलहौजी को जो पत्र लिखा, वह अंग्रेज राजनीतिज्ञो के विचारो पर स्पष्ट प्रकाश डालता है :

"ठीक समय पर महाराजा प्रतापसिह की मृत्यु हुई । मैंने सुना है कि वर्तमान राजा का स्वास्थ्य ठीक नही रहता । बिना पुत्र के अगर वह मरता है तो सतारा का राज्य समाप्त कर अपने राज्य मे मिलाने में कोई बाधा नही रह जाती । अगर वह कोई लडका गोद लेना चाहे तो उसे गोद लेने की आज्ञा न दी जाय । मेरे कार्य-काल में यह हुआ तो मै सतारा को अंग्रेजी राज्य मे मिला लेने के किसी भी उपाय को बाकी नही छोडूगा ।"

हॉबहाउस की भविष्यवाणी और इच्छा के अनुसार अप्पासाहब

महाराज का ५ अप्रैल सन १८४८ को देहात हो गया। मृत्यु के पूर्व उसने सिविल सर्जन डा० मरे की उपस्थिति में अपने ही गोत्र का एक लडका गोद लिया था। इस प्रकार सतारा की गद्दी के दो अधिकारी थे। एक था प्रतापसिह का पुत्र और दूसरा था अप्पासाहब का गोद लिया हुआ पुत्र। पर दोनो ही गद्दी पर नही बैठ सकते थे। प्रतापसिह को गद्दी से उतारा गया था, अतएव उसका पुत्र गद्दी का अधिकारी नही रह जाता था। अप्पासाहब का लडका बिना आज्ञा के गोद लिया गया था, अत. वह भी गद्दी का अधिकारी नही था। सतारा का राज्य अग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया।

राज्य-पद से हटाने के बाद छत्रपति प्रतापसिह को काशी मे लाकर प्रति-बध मे रखा गया था। उसकी मृत्यु के बाद उसकी रानी की आर्थिक स्थिति बडी खराब हो गई। पेट की ज्वाला शात करने के साधन भी उसके पास न थे। अत में उसे डलहौजी से प्रार्थना करनी पडी कि वह उसके लिए पेशन नियत करे। डलहौजी ने ३० हजार रुपये सालाना पेंशन देना स्वीकार किया, पर केवल दो शर्ते मजूर करने के बाद। पहली शर्त थी सतारा की गद्दी का दावा छोड देना और दूसरी इग्लैड मे आदोलन करनेवाले रंगो बापूजी को वापस बुला लेना। महाराज शिवाजी के वश की अतिम रानी ने ये दोनों शर्ते स्वीकार कर ली।

इस प्रकार छत्रपति शिवाजी ने जिस महान राज्य की नीव रखी थी, जिस राज्य का विस्तार बाजीराव प्रथम ने 'कृष्णा-तट के घोडो को सिधु नदी मे पानी पिलाकर किया था', वह इतिहास के पन्नो में समा गया।

पंजाब पर वार

जबतक पंजाब-केसरी रणजीतसिंह के कुशल तथा सुदृढ हाथों मे पजाब की बागडोर रही, तबतक अग्रेज उसको मित्र बनाये रखने मे ही अपना हित समझते रहे। रणजीतसिंह की शक्ति से वे अच्छी तरह से परिचित थे। वे जानते थे कि जिस दिन वह शत्रु बनकर रणांगण मे उतरेगा, उस दिन

हिदुस्तान मे ब्रिटिश सत्ता डगमगा उठेगी। इसीलिए वे रणजीतसिह से डरते थे तथा उसे अपना 'परम प्रिय मित्र' कहते थे। एक बार रणजीतसिह ने हिदुस्तान मे अग्रेजो की शक्ति को बढता देखकर अपने सरदारो से कहा था—"अगर आप लोग जागरूक न रहे, तो मेरे बाद पजाब को भी लाल रग का होने मे देर नही लगेगी।" उस समय कौन जानता था कि भावी इतिहास एक छोटे-से वाक्य मे समाकर उस महापुरुष के मुह से निकल रहा है!

रणजीतसिह की मृत्यु के बाद पजाब मे अव्यवस्था फैल गई। उसके बाद शेरसिह गद्दी पर बैठा, पर सन १८४३ मे वह मार डाला गया। सिख सरदारो ने रणजीतसिह के द्वितीय पुत्र दिलीपसिह को गद्दी पर बैठाया। वह एक छोटा-सा बालक था। उस बालक का अभिभावक कौन हो, इस बात पर सिख सरदारो मे मतभेद उत्पन्न हो गया, क्योकि अभिभावक के हाथो मे ही पजाब की सारी शक्ति रहती। सिख सरदारो के इस आपसी मतभेद का अग्रेज राजनीतिज्ञो ने पूरा लाभ उठाया। सिख सरदारो मे से तेजसिह और लालसिह को अपनी ओर मिलाकर अग्रेजो ने बाकी के सिख सरदारों को लडाई मे हरा दिया। अग्रेजो ने सतलज और रावी के बीच के भू-खड को अपने राज्य मे मिला लिया और पजाब पर डेढ करोड रुपये का दड भी लगाया। उस समय खजाने मे केवल ५० लाख रुपये थे। वे अग्रेजो ने ले लिये। बाकी के एक करोड रुपये के लिए उन्होंने काश्मीर को गुलाबसिह डोगरा के हाथ बेच दिया। सिख सरदारो मे इससे बडा असंतोष फैला। पजाब की शक्ति कम होना तथा काश्मीर का चला जाना भला कौन देशप्रेमी पसद कर सकता था? मत्री लालसिह ने इसका घोर विरोध किया। परिणामस्वरूप उसपर विश्वासघाती और विद्रोही होने का दोषारोपण किया गया। एक कमीशन ने इसकी जाच की और उसे पेशन देकर आगरा भेज दिया गया।

लालसिह के हटते ही अग्रेज शासको ने पजाब के लिए एक अभिभावक-समिति नियुक्त की। लाहौर के अग्रेज रेजीडेट को उसका अध्यक्ष बनाया। इस प्रकार पजाब की सारी सत्ता रणजीतसिह के पुराने मित्र होने के नाते

अंग्रेजो ने अपने हाथ मे ले ली ।

महाराज रणजीतसिह की वीर पत्नी महारानी जिदा कुवर ने दलीप-सिह को केवल कठपुतली बनाये जाते देखकर विरोध करना आरभ किया। पजाब-केसरी की सिहनी भला गुलामी को कैसे पसद करती ! उसने दिलीप-सिह को अग्रेजो की बात न मानने का आदेश दिया। परिणामस्वरूप उसने कई कागजो पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया । अभिभावक-समिति के अध्यक्ष तथा महारानी मे विरोध बढता गया । अत मे महारानी पर विद्रोह करने का भयकर आरोप लगाकर उसे कदकर शेखपुरा नामक मुसलमानी महल्ले मे जान-बूझकर अपमानित करने के लिए रखा गया । न तो कोई जाच हुई और न महारानी को सफाई देने का अवसर ही मिला । पजाब-केसरी रणजीतसिह की रानी कैदखाने मे ठूस दी गई ।

इसी समय एक और घटना हुई, जिसका पजाब के भावी इतिहास पर बडा प्रभाव पडा । मुलतान के सरदार सावनमल की किसीने हत्या कर डाली । उसके स्थान पर उसका पुत्र मूलराज सूबेदार नियुक्त किया गया । इस समय लाहौर की सत्ता पूरी तरह से अग्रेजो के हाथो मे थी । हर प्रकार से रुपया बटोरना उनका धर्म बन गया था । मूलराज से कहा गया कि उसे लगान के रूप मे सालाना बीस लाख रुपये की जगह तीस लाख रुपया देना पडेगा । इतना रुपया देना मूलराज की शक्ति के बाहर था । जब कोई उपाय न रहा तो उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया, जिसे अग्रेजो ने स्वीकार कर लिया और उसके स्थान पर सरदार खानसिह को नियुक्त कर दिया ।

खानसिह के साथ लाहौर के रेजीडेट ने दो अग्रेज अफसर तथा पाच-सौ सिपाही रवाना किये । मूलराज ने उनका स्वागत किया । वह उन्हे किले मे ले गया और सभी सरदारो के सामने सारे अधिकार खानसिह को सौप दिये । पर मूलराज लोकप्रिय था । वश-परपरागत पद से उसे इस प्रकार अपमान तथा विश्वासघात करके अलग किये जाते देखकर प्रजा बिगड गई । मुलतान की फौज ने हमला करके दोनो अंग्रेज

अफसरो को मार डाला। इस हमले मे मूलराज का जरा भी हाथ न था। अग्रेज शासक तक इसे मानते थे, पर इसका सारा दोष मूलराज के ही मत्थे मढा गया। उसकी सारी सपत्ति जब्त कर ली गई। पर इससे भी तत्कालीन रेजीडेट कैरो को सतोष न हुआ। वह उसे और भी सजा देना चाहता था। अत मे मूलराज को अपने सम्मान की रक्षा के लिए शस्त्र उठाने पडे।

ऐसा प्रतीत होता था कि रेजीडेट करो पजाब को अग्रेजी राज्य मे मिला लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। उसने सोचा कि जबतक रणजीतसिह की वीर पत्नी (भले ही वह कैद मे क्यो न हो) पजाब मे है, तबतक अग्रेजी शक्ति को सदा भय बना रहेगा। किसी भी दिन अकाली उसके चारो ओर जमा होकर अग्रेजी सत्ता को ललकार सकते हैं। अतएव उसने महारानी जिदा कुवर को पजाब से हटा देने का निश्चय किया। उसपर यह आरोप लगाया गया कि वह अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए संगठन कर रही है। इसकी न जाच हुई, न पडताल। उसे पजाब से हटाकर काशी लाया गया। उसके सारे ज़ेवरात, जवाहरात तथा व्यक्तिगत सपत्ति जप्त कर ली गई। उसे मिलनेवाली पेशन डेढ लाख रुपये से घटाकर केवल बारह हजार रुपये कर दी गई। महाराज रणजीतसिह के मित्र (!) अग्रेजो ने उसकी महारानी को निर्धन बनाकर काशी मे, प्रतिबंध मे, अपना जीवन बिताने के लिए बाध्य कर अपनी मित्रता निबाही!

इसी समय दिलीपसिह का विवाह सरदार छतरसिह की नातिन के साथ होना निश्चित हुआ। छतरसिह हजारा प्रात का सूबेदार था। वह बडा वीर योद्धा था। उसका पुत्र शेरसिह भी वैसा ही वीर था। वह सिख सेना का मुख्य सेनापति था। अग्रेजो को भला ऐसा संबंध कैसे पसंद आता, जिससे सिखों की शक्ति सगठित होकर बढ़ती! रेज़ीडेट ने किसी-न-किसी बहाने विवाह-तिथि को निश्चित न होने दिया। छतरसिह इससे अत्यंत क्रुद्ध हो उठा।

रेज़ीडेट कैरो छतरसिह के भावों को समझ गया। उसने कैप्टन

एबट को उसके 'सहायतार्थ' हजारा भेजा। पर वास्तव मे एबट वहा भेजा गया था छतरसिह पर नजर रखने ! वह वहा से रेजीडेट के पास एक-एक रिपोर्ट भेजता था। एबट बडा घमडी और सिख-सरदारो को तुच्छ समझने-वाला व्यक्ति था। हजारा पहुचकर उसने वहा के मुसलमानो को छतरसिह के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उभारा। इस समय सिख सेना में कनौरा नामक एक अमरीकन अधिकारी था। वह भी एबट से मिलकर ही काम करता था। छतरसिह की फौज मुलतान की ओर मूलराज के विद्रोह को दबाने जा रही थी। एबट ने मुसलमानो को उकसावा देकर इस फौज का रास्ता रोकने के लिए कहा। एबट की सलाह के अनुसार विद्रोही मुसलमान रास्ते मे खडे हो गए। छतरसिह ने कनौरा को इन्हे हटाने की आज्ञा दी, पर कनौरा ने स्पष्टरूप से कह दिया कि वह केवल एबट की ही आज्ञा मानेगा। इस प्रकार कनौरा ने एक देशी अफसर की आज्ञा न मानकर सेना का अनुशासन भग किया, पर फौज के सिख सिपाहियो ने छतरसिह की आज्ञा मानकर मुसलमानों को हटा दिया। उसने इन सिखों को तोप से उडा देने की आज्ञा दी, पर तोपखाने के अफसर भी सिख ही थे। उन्होने कनौरा की अन्यायपूर्ण आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। कनौरा ने तलवार निकालकर एक सिख सिपाही की गर्दन धड से अलग कर दी और दो सिखो को पिस्तौल का निशाना बनाने का प्रयत्न किया। इस अपमानजनक तथा अन्यायपूर्ण कार्य से सभी सिख क्रोधित हो उठे। उन्होने कनौरा की वही हत्या कर डाली। एबट ने इस काड के लिए छतरसिंह को ही जिम्मेदार ठहराया। पर रेज़ीडेट ने आरभ मे इस हत्याकाड के लिए छतरसिंह को जिम्मेदार मानने से इन्कार कर दिया। इस बीच न मालूम क्या चाबी घूमी। शायद अंग्रेजो ने इस अवसर का पजाब को अपने राज्य मे मिलाने के लिए उपयोग करने का निश्चय कर लिया।

अब सारा दोष छतरसिह के मत्थे मढा गया। छतरसिंह विश्वासघाती तथा विद्रोही करार दिया गया। उसकी जागीर जप्त कर ली गई। उसने रेज़ीडेट से बार-बार कहा —"सारा दोष एबट का है। कनौरा ने मेरी

आज्ञा नही मानी । वह सिखो पर वार कर बैठा । परिणामस्वरूप वह सिखों के कोप का शिकार बन गया ।" पर यह सब व्यर्थ था । अग्रेज तो पाच नदियों से सिचित पजाब की उपजाऊ भूमि चाहते थे । उन्हे न्याय-अन्याय से क्या मतलब !

छतरसिह के पुत्र सेनापति शेरसिह को अपने पिता के अपमान का पता लगा । वैसे भी उसका मन महारानी जिदाकुवर के प्रति किये गए नीचतापूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध था । उसकी नसो मे बहनेवाला वीर रक्त उबल पडा । उसने अग्रेजो के विरुद्ध हथियार उठा लिये ।

सिख-दरबार इस समय पूरी तरह से अग्रेजों के हाथो मे था । वे दिलीपसिह के अभिभावक के रूप मे उसके ही नाम से राज-कार्य कर रहे थे । इसी कारण अग्रेजो की चलती रही । अपने देश तथा धर्म की रक्षार्थ अग्रेजो के विरुद्ध लडनेवाले मूलराज, छतरसिह, शेरसिह आदि लोग सिख-दरबार के विद्रोही करार दिये गए । लाहौर से निकलनेवाली आज्ञाएं अग्रेज शासको की थी, पर उनपर हस्ताक्षर होते थे दिलीपसिह के । इससे सिखो मे एकता स्थापित न हो सकी । सन १८४१ मे चिलियावाले बाग की लडाई हुई । अग्रेज सेनापतियो के छक्के छूट गए । उन्हे पीछे हटना पडा । गुजरात के रणक्षेत्र मे शेरसिंह और लार्ड गफ का पुन. सामना हुआ । इस युद्ध में दोनो ओर से सिख लड रहे थे । अत मे सिखो की ही सहायता से अग्रेजो ने सिखो पर विजय प्राप्त की ! शेरसिह और छतरसिह अग्रेजो के कैदी बन गए ।

पंजाब की पूर्ण रूप से व्यवस्था करने के लिए लार्ड डलहौजी ने इलियट को भेजा । २९ मार्च को सिखो का दरबार हुआ । दिलीपसिह सिहासन पर बैठा । चारो ओर सशस्त्र अंग्रेज सैनिको का घेरा पडा हुआ था । इलियट ने डलहौजी का आज्ञा-पत्र पढकर सुनाया कि पजाब अग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया है । दीवान दीनानाथ ने पुराने सधि-पत्र पढकर सुनाये । रणजीतसिह की मित्रता की याद दिलाई । पर इसका कुछ भी परिणाम न हुआ । लाहौर के किले का सिख झंडा उतार दिया गया और उसकी जगह

यूनियन जैक फहराया गया। महाराजा रणजीतसिह द्वारा स्थापित राज्य का अत हो गया। दिलीपसिह की सारी सपत्ति जब्त कर ली गई। उसका प्रसिद्ध सिहासन अग्रेज उठाकर ले गए। उसके मुकुट का जगत-प्रसिद्ध कोहनूर हीरा लदन के सरकारी कोष मे जमा हो गया। सारे अलकार और जेवरात कलकत्ते मे नीलाम कर दिये गए।

अग्रेज शासको ने दिलीपसिह का हिदुस्तान मे रहना भी उचित न समझा। सन १८५३ मे नाबालिग होते हुए भी उसे ईसाई बनाया गया। सन १८५४ मे जबरदस्ती उसे इग्लैड रवाना किया गया। उसकी माता महारानी जिदा कुवर को उससे मिलने विलायत जाना पडा। उसकी मृत्यु भी वही दिलीप की गोद मे हुई। विलायत मे दिलीपसिह का एक गौराग कुमारी से विवाह किया गया। सारी आयु महाराज दिलीपसिह को विलायत मे ही काटनी पडी। एक बार अपनी मातृभूमि के दर्शन करने की इच्छा उसे इतनी प्रबल हुई कि वह इग्लैड से रवाना हुआ, पर अग्रेज शासक भला उसका भारत आना कैसे पसद करते! अदन मे ही उसे विलायत वापस भेज दिया गया।

इसी यात्रा के पूर्व उसने अपने देशबधुओ के नाम यह पत्र लिखा था:
'प्रिय पजाबी भाइयो,

कौनसा मुह लेकर मै फिर वापस आऊं? मै चाहता था कि मै अपना काला मुह आपको न दिखाऊ। पर गुरु सबके मालिक है। गुरु से मुझे हौसला मिला कि मै अपने वतन आकर एक गरीब आदमी की तरह अपनी जिदगी बिताऊ। इसीलिए मै हिदुस्तान आ रहा हू। गुरुजी की जो इच्छा होगी, वही होगा। खालसा भाइयो, मै आपकी निगाह मे बहुत ही नालायक हू। मैने अपने पुरखो का धर्म छोडा और ईसाई बना। मुझे माफ करे, क्योकि मै बालक था, उसी समय मुझे ईसाई बनाया गया। उस समय मै कर ही क्या सकता था? बाद मे पछताकर मैने फिर सिख धर्म मजूर किया है। आगे मै बाबा नानक के बताये हुए नियमों और गुरु गोविदसिहजी की आज्ञा के अनुसार चलूगा।

अपने प्रिय पजाबी और खालसा भाइयो के दर्शन के लिए मेरा दिल तडप रहा है, पर मुझ पापी को शायद वतन के दर्शन न होगे । शायद मुझे हिंदुस्तान न आने दिया जायगा । मैंने अंग्रेजों की राजनीति पर विश्वास किया, उसका नतीजा मुझे मिला । वाह गुरुजी का खालसा ! वाह गुरूजी की फतह !

आपके ही रक्त-मास से बना
—दिलीपसिंह"

बुढापे में दिलीपसिह ने पुन सिख धर्म की दीक्षा ली । इससे उसको कितना सतोष हुआ होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है ।

: ४ :

राज्य-लिप्सा की पराकाष्ठा

ब्रह्मदेश पर हमला

ब्रह्मदेश के साथ डलहौजी ने जो व्यवहार किया उसकी जितनी निदा की जाय उतनी थोडी है । एक अंग्रेज लेखक का कथन है कि डलहौजी ने सुना था कि ब्रह्मा के पेगू प्रात मे सोने की खाने हैं । इसलिए वह दक्षिण ब्रह्मा को अपने राज्य में मिलाने के लिए व्याकुल हो उठा । इसके लिए वह बहाना खोज ही रहा था । इसी समय शेफर्ड नामक एक अंग्रेज व्यापारी ने एक ब्रह्मी खलासी को उठाकर समुद्र में फेंक दिया और उसके पास की रकम छीन ली । मृत खलासी के भाई ने ब्रह्मी अधिकारियो से शिकायत की । इसकी जाच की गई । मुकदमा चलाया गया । ब्रह्मी सरकार वैसे-ही अंग्रेजों से आतकित थी । गवर्नर ने शेफर्ड पर ९९ रुपये जुर्माना किया । वहा के गोरे व्यापारी इसे कैसे सहन करते कि एक ब्रह्मी गवर्नर अंग्रेज का मुकदमा करे तथा उसे दड दे ! उन्होंने लार्ड डलहौजी का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया । वह तो ऐसे मौके की ताक मे था ही । उसने ब्रह्मा के राजा को लिखा कि अंग्रेज व्यापारी का अपमान करनेवाले गवर्नर को

पद से अलग किया जाय तथा गरीब व्यापारी को ९९९ रुपये हरजाने के तौर पर दिये जाय। राजा अंग्रेजो से बहुत डरता था। उसने दोनो शर्ते स्वीकार करने मे ही अपनी भलाई देखी।

डलहौजी भला इतने से ही सतुष्ट कैसे हो सकता था ! वह तो झगडा बढाना चाहता था और दक्षिणी ब्रह्मा को अग्रेजी राज्य मे मिलाकर नाम कमाना चाहता था। उसने वहा के राजा को लिखा—"कुछ अग्रेज अधिकारी रगून के गवर्नर से मिलना चाहते थे, पर उसने उन्हे १५ मिनट तक धूप मे खडा रखा। इससे उनका अपमान हुआ। इसके लिए उस गवर्नर को बरखास्त कर दिया जाय तथा हरजाने के रूप मे १० लाख रुपये दिये जाये।" ये शर्ते ब्रह्मा के राजा ने स्वीकार न की। इसपर डलहौजी ने ब्रह्म-देश पर हमला किया और दक्षिण ब्रह्मा को जीतकर उसने अपने राज्य मे मिला लिया।

सिक्किम पर आक्रमण

सिक्किम हिमालय मे एक छोटा-सा राज्य है। उसके दार्जिलिग नामक स्थान के सौदर्य तथा जलवायु पर लार्ड डलहौजी की नजर पडी। यह स्थान राजनैतिक दावपेचो के लिए भी अत्यत उपयुक्त था। यह नेपाल और भूटान राज्यो के बीच मे है। इस स्थान से नेपाल, भूटान तथा हिमालय के उस पार के तिब्बत राज्य पर दृष्टि रखी जा सकती है। ऐसे महत्वपूर्ण स्थान पर डलहौजी की निगाह न जाती, यह कैसे सभव था ?

अग्रेजो ने दार्जिलिंग को ६ हजार रुपये वार्षिक के बदले अपने अधि-कार मे ले लिया। अग्रेज व्यापारी वहा गए और उन्होने आस-पास की भूमि का अनाधिकार निरीक्षण करना आरभ कर दिया। वहा के राजा ने इसे पसद नही किया। उसने इन व्यापारियो को वहा से निकल जाने की आज्ञा दी, पर भला साम्राज्य के मद मे चूर अंग्रेज उसकी आज्ञा कैसे मानते ? जब वे नही गए तो सिक्किम के राजा ने उन्हे कैद कर लिया। अब डलहौजी उनकी सहायता को आया। उसने फौज भेजकर सिक्किम का एक भाग जीतकर अग्रेजी साम्राज्य मे मिला लिया।

अर्काट का हड़पा जाना

अर्काट के नवाब की सहायता से ही अग्रेजों ने दक्षिण मे अपना अधिपत्य स्थापित किया था। उसकी सहायता न मिलती तो फ्रासीसी उन्हे इस देश से निकाले बिना न रहते। पर अग्रेज नवाब के एहसान को भूल गए। अतिम नवाब गऊसखा की मृत्यु पर अग्रेजों ने उसके वैध उत्तराधिकारी अज़ीमशाह को नवाब मानने से इन्कार कर दिया और अर्काट को अपने साम्राज्य मे मिला लिया।

तंजौर की लूट

छत्रपति शिवाजी के पौत्र शाहू ने तजौर मे एक छोटा-सा राज्य स्थापित किया था। अगर कभी मराठो पर सकट आता तो इस स्थान पर आश्रय मिलना सरल था। इसीलिए इसकी स्थापना की गई थी। तजौर के अतिम महाराज शिवाजी की १८५५ मे मृत्यु हो गई। उसके कोई लडका न था। पुत्री थी। वहा के रेजीडेट ने सिफारिश की कि उसकी पुत्री को ही राज्य मिले, पर लार्ड डलहौज़ी ने इसे स्वीकार न किया और तजौर ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बन गया।

विधवा रानी कामाक्षीबाई ने मद्रास हाईकोर्ट मे दावा किया। हाई-कोर्ट ने रानी के पक्ष मे निर्णय दिया और उसकी पुत्री को राज्य का उत्तरा-धिकारी माना। पर ईस्ट इडिया कपनी ने लदन मे प्रिवी कौसिल मे अपील की। प्रिवी कौसिल ने डलहौजी के इस कार्य को 'तजौर की लूट' कहा, पर इसे राजकीय कार्य (एन एक्ट ऑफ स्टेट) कहकर उसमे दखल देने से इन्कार कर दिया।

निज़ाम पर हमला

सारे हिंदुस्तान को लाल रग से रगने का निश्चय करनेवाले डलहौजी की लालच-भरी दृष्टि निज़ाम के विशाल राज्य पर न पड़ती तो आश्चर्य की बात होती। उसने निज़ाम पर भी वार करने का निश्चय किया। १८५१ मे निज़ाम पर कपनी का ७८ लाख रुपये का कर्ज हो गया था।

उसके राज्य पर यह कर्ज इस कारण हुआ था कि निजाम अपने इलाके मे तैनात अग्रेज सेना के खर्च की रकम अदा न कर सका था। डलहौजी ने निजाम को लिखा —"आप जल्दी-से-जल्दी हमारी रकम अदा करे। अगर आपके लिए यह मुमकिन न हो तो आप ६५ लाख रुपये की आमदनीवाला अपने राज्य का कोई हिस्सा हमे दे दे, ताकि हम अपने कर्ज की वसूली कर सके।" निजाम ने बडी कठिनाई से ४० लाख रुपये शीघ्र ही अदा कर दिये। दो वर्ष मे फिर यह रकम ४५ लाख हो गई। डलहौजी ने अपनी इच्छा की पूर्त्ति के लिए यही उपयुक्त अवसर समझा। एक नया सधि-पत्र बनाया गया। इसके अनुसार निजाम को अपना उपजाऊ बरार प्रदेश अग्रजो को सौपना पडा। निजाम ने रोते-रोते इस सधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

नागपुर का अंत

डलहौजी के समय मे अप्पासाहब भोसला नागपुर की गद्दी पर आसीन था। वह वीर, स्वातत्र्य-प्रिय और देशभक्त था। ऐसे पराक्रमी वीर को अग्रेज फूटी आखो भी नही देख सकते थे। रेजीडेट से सदा उसके झगडे होते रहते थे। १८१८ मे बात इतनी बढ गई कि अप्पासाहब और अग्रजो मे युद्ध आरभ होगया। सधि करने और आपस मे मामला निपटा लेने का बहाना कर अग्रेजो ने उसे अपने कैप मे बुलाया। उनपर विश्वास कर अप्पासाहब वहा गया। अग्रेजो ने उसे कैद कर लिया और उसके स्थान पर भोंसला घराने के एक अल्पवयस्क बालक को तृतीय राघोजी भोंसला के नाम से गद्दी पर बैठा दिया। यह बालक द्वितीय राघोजी की रानी बाकाबाई की गोद दिया गया था, अतः वही इसकी अभिभावक थी। इस अवसर पर जो सधि हुई, उससे नर्मदा तट का भू-भाग अग्रेजों को मिल गया।

११ दिसबर सन १८५३ को तृतीय राघोजी की मृत्यु हो गई। वह अत तक पुत्रहीन रहा। बाकाबाई ने रेजीडेट से पुन. एक लड़का गोद लेने की आज्ञा मागी। रेजीडेट ने उत्तर दिया कि जबतक लार्ड डलहौजी की स्वी-

कृति नही आती, तबतक वह आज्ञा नही दे सकता । अत मे गोद लेने की रस्म पूरी की गई । नवीन बालक का नाम जनौजी रखा गया, पर राज्य-तृष्णा से ग्रसित डलहौजी ने अनेक प्रार्थनाए करने पर भी उसे स्वीकार नही किया । २६ जनवरी सन १८५४ को भोसलो का नागपुर अग्रेजी-राज्य का भाग बन गया । भोसला वश के सारे रत्नालकार कलकत्ते के बाजारो मे नीलाम कर दिये गए ।

अवध की इतिश्री

१८४७ मे अवध के नवाब अजमदअली शाह की मृत्यु हुई । उसके स्थान पर उसका पुत्र वाजिदअली शाह गद्दी पर बैठा । आरभ मे बडी दक्षता से उसने राज-काज आरभ किया । वह प्रात काल उठता । कवायद के मैदान मे पहुचकर फौजो की कवायद देखता । समय की पाबंदी का वह बडा ध्यान रखता । जो कोई कवायद करने देर से आता, वह कितना-ही बडा अफसर क्यो न हो, उसे दड दिया जाता । स्वय नवाब को देर हो जाती, तो वह भी दड पाता । राज-काज वह स्वत. देखता था । प्रजा की भलाई के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता था ।

ऐसे प्रजा-हितचितक नवाब को अग्रेज शासक कैसे पसद करते ? अग्रेज रेजीडेट ने प्रयत्न किया कि वाजिदअली शाह राज-काज की ओर ध्यान न दे । उसने उसकी माता से कहा कि नवाब इतना अधिक परिश्रम कर रहे है कि मुझे डर है कि उन्हे कही क्षय रोग न हो जाय । मा इससे बडी चिंतित हुई । उसने बेटे को परिश्रम करने से रोक दिया । तरुण वाजिद-अली को जब कोई विशेष काम न रह गया तो वह विलासी बन गया । अग्रेज लेखकों ने उसके सबंध मे बहुत-सी मनगढ़त और अतिशयोक्ति-पूर्ण बाते लिखी है । वे नितात असत्य है । उनका ऐसा करना उनके भावी कार्यक्रम की भूमि तैयार करने का ही प्रयत्न था ।

लार्ड डलहौजी के लिए अवध जैसी सुदर तथा उपजाऊ भूमि को अपने साम्राज्य से बाहर रखना असंभव था । अवध के नवाबो ने उसके साथ जो भलाइया की थी, उन्हे वह भूल गया । सकट-काल मे अवध के नवाब ने

अग्रेजो की तीन करोड का अन्न, धन तथा अन्य सामान देकर सहायता की थी। ब्रह्मदेश और नेपाल-युद्ध के समय वादिजअली शाह ने उन्हे १४ लाख रुपये दिये थे। अफगान-युद्ध के समय भी वाजिदअली शाह के पिता ने ३५ लाख रुपये देकर अग्रेजो की सहायता की थी। लेकिन जब डलहौजी का एकमात्र उद्देश्य अवध की उर्वर भूमि को अपने राज्य मे मिला लेना था, तो वह इन उपकारो का क्यो याद रखता ? जब डलहौजी ने अवध को अपने राज्य मे मिलाने का निर्णय किया तो उसकी कौसिल के सदस्य जनरल लो ने भिन्न मत दिया और अवध के राज्य को समाप्त करने का विरोध किया। अवध के तत्कालीन रेजीडेट स्लीमेन ने स्पष्ट रूप से डलहौजी को लिखा—"अवध के राज्य अथवा उसके कुछ भाग को अपने राज्य मे मिला लेने से बडी बदनामी होगी।" इसी समय उसने अपने एक मित्र को पत्र मे लिखा था—"अगर लार्ड डलहौजी ने मेरा कहना न माना तो मै त्याग-पत्र देकर चला जाऊगा और इस अन्यायपूर्ण कार्य को करने से इन्कार कर दूगा।"

पर साम्राज्य के नशे मे चूर डलहौजी पर इसका कोई प्रभाव न पडा। १८५६ मे अयोग्य घोषित कर वाजिदअली शाह को गद्दी से हटा दिया गया तथा उसे कलकत्ते के फोर्ट विलियम मे कैद कर दिया गया। इतना ही नही, अग्रेजों ने नवाब की बेगमो को बडी निर्दयता तथा अमानुषिक ढंग से लूटा।

अवध की प्रजा खुली आखो से यह सब अत्याचार देखती रही। उसका हृदय जल रहा था। प्रतिहिसा की अग्नि धीरे-धीरे सुलग रही थी।

झांसी का अपहरण

झासी का राज्य हिदुस्तान के बीचो-बीच था। राजनैतिक दृष्टि से इसकी स्थिति अत्यत महत्वपूर्ण थी। इसका क्षेत्रफल पाच हजार वर्गमील तथा जनसख्या लगभग १० लाख थी। पेशवा और अग्रेजो मे बसीन की जो संधि हुई, उससे इस मराठा रियासत मे हाथ डालने का अग्रेजो को मौका मिला। पर झासी के सिहासन पर जबतक शिवराम भाऊ था, तबतक अग्रेज इधर नजर डालने की हिम्मत नही कर सके। शिवराम

भाऊ बडा वीर और पराक्रमी था। बुंदेलखड के सारे सरदार उसे अपना अगुआ मानते थे। उसने समय-समय पर अग्रेजो की बडी मदद की थी। १८१४ मे राज-काज से उसकी तबियत ऊब गई और वह अपने भतीजे रामचद्रराव को झासी की गद्दी देकर स्वत ब्रह्मावर्त मे जाकर हरि-भजन मे अपने दिन बिताने लगा। रामचद्रराव भी अधिक दिनो तक राज्य न कर सका। १८३५ मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी ने सागर के मोरेश्वर खेर के पुत्र कृष्णराव को गोद लिया, पर यह गोद लेना शास्त्र-विरुद्ध माना गया। अत गद्दी पर रामचद्रराव के चाचा रघुनाथराव को बैठाया गया। वह बडा अयोग्य और चरित्रहीन शासक था। उसके शासन-काल मे राज्य मे चारो ओर गडबडी मच गई। रियासत की आमदनी जहा १८ लाख थी, वहा वह केवल ३ लाख रह गई। राज्य पर कर्ज का बोझा बढता गया। अत: १८३८ से १८४२ तक राज्य की व्यवस्था अग्रेजों ने अपने हाथो में रखी और राज्य को ऋण से मुक्त किया।

१८४२ मे झासी की गद्दी पर गगाधरराव को बैठाया गया। अग्रेजो का यह नियम था कि जब नया राजा गद्दी पर बैठता था तो उससे नई सधि की जाती थी और इस अवसर का उपयोग उस राज्य के कुछ भू-भाग हडप लेने मे होता था। गगाधरराव को गद्दी देते समय सवा दो लाख आमदनीवाला भाग अग्रेजो ने ले लिया। राज्याधिकार प्राप्त होने के पूर्व गगाधरराव का दूसरा विवाह हुआ था। उसकी पहली पत्नी रमाबाई की मृत्यु हो गई थी। ब्रह्मावर्त मे बाजीराव पेशवा के आश्रय मे रहनेवाले मोरापत ताबे की पुत्री मनूबाई के साथ उसका विवाह हुआ। इस प्रकार बाजीराव पेशवा की 'छबीली मनू' झासी की महारानी लक्ष्मीबाई बनी। लक्ष्मीबाई अत्यत सुदर, तेजस्वी तथा आत्माभिमानिनी थी। उसका व्यवहार इतना विनयपूर्ण था कि वह झासी के सभी लोगो की प्रिय बन गई।

गगाधरराव योग्य शासक था। उसने राज्य की व्यवस्था चतुर और दक्ष लोगो के हाथो मे सौपी। परिणामस्वरूप उसके कार्य-काल मे प्रजा सुखी रही। पर गंगाधरराव कुछ सनकी भी था। कमजोर होने के कारण वह

स्वभाव का क्रोधी था । इसके सबध मे तरह-तरह की बाते फैलाई गई, पर उनमे सत्य का अश अधिक नही था ।

१८५१ मे महारानी लक्ष्मीबाई के पुत्र उत्पन्न हुआ, पर वह शीघ्र-ही मर गया । इससे गगाधरराव को बडा धक्का लगा । वह बीमार पड गया । पुत्र-हीन होने के कारण उसने वासुदेवराव के पुत्र आनदराव को गोद लेने का निश्चय किया । गोद लेने के अवसर पर सेना के अग्रेज अधिकारी मार्टिन तथा झासी के पोलिटिकल एजेट एलिस भी उपस्थित थे । शास्त्र-विधि से गोद लेने का समारोह पूर्ण हुआ ।

महाराज गगाधरराव ने कपनी-सरकार के नाम एक खरीता तैयार किया—"मेरी मृत्यु के साथ मेरे कुटु ब का अत न हो, अत ब्रिटिश सरकार और मुझमे जो सधि हुई है, उसकी द्वितीय धारा के अनुसार मैंने आनंदराव नामक पचवर्षीय बालक को गोद लिया है । उसका नाम दामोदर गगाधर-राव निश्चित किया गया है । यह लडका मेरे ही वश का है और मेरा नाती है । अगर इस बीमारी से मै अच्छा न हुआ तो सरकार को चाहिए कि वह इस पुत्र पर कृपा रखे । जबतक मेरी पत्नी जीवित है, तबतक उसे राज्य की मालिक तथा इस पुत्र की माता माना जाय और राज्य की व्यवस्था उसके हाथो मे रहे । उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो ।"

रुग्ण गगाधरराव ने कापते हाथो से यह पत्र एलिससाहब के हाथो मे दिया । एलिस भी द्रवित हो गया । २१ नवबर सन १८५३ को गगाधर-राव की मृत्यु हो गई । महारानी को पूर्ण विश्वास था कि अग्रेज दामोदर-राव को उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेगे । एलिस ने भी लक्ष्मीबाई के पक्ष मे ही सिफारिश की थी ।

पर गवर्नर जनरल ने इस गोद लिये हुए बच्चे को उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया । ७ मार्च सन १८५४ को झासी को ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया गया । घोषणा मे कहा गया—"झासी फिलहाल पोलिटिकल एजेट एलिस को सौपी जाती है । झासी के सभी निवासियो को चाहिए कि वे अपने को अग्रेजो के प्रजा-जन समझे, मेजर एलिस को कर अदा करे

तथा सुखी और सतुष्ट रहे ।"

एलिस ने यह घोषणा-पत्र महारानी को पढकर सुनाया । लक्ष्मीबाई की आखो से आसुओं की धारा बहने लगी । उसे कल्पना तक न थी कि अब तक के सारे संधि-पत्रो को रद्दी की टोकरी मे डालकर उसके साथ इतना बडा अन्याय किया जा सकता है । आत्माभिमान, तेजस्विता और वीरता जागृत हुई और भावी इतिहास के द्योतक चार शब्द उसके मुह से निकले—"मेरी झासी ! नही दूगी ।"

अन्याय यही समाप्त नही हुआ । गगाधरराव की व्यक्तिगत सपत्ति भी जप्त कर ली गई । बडी उदारता से डलहौजी ने महारानी के लिए ५ हजार रुपये महीने की सहायता निश्चित की, पर उस आत्माभिमानिनी ने इस पेशन को ठुकरा दिया । व्यक्तिगत संपत्ति बेचकर उसकी रकम भी उसे नही दी गई । इस बात मे दामोदर का गोद लेना स्वीकार किया गया और उसके नाम से यह रकम अमानत के तौर पर ब्रिटिश खजाने मे जमा हुई । कहने की आवश्यकता नही कि यह रकम दामोदरराव को कभी नही मिली ।

रानी को झासी का किला और महल अग्रेजो को सौंपना पडा । शहर के महल मे उसे लाकर रखा गया । महारानी ने श्री उमेशचंद्र बनर्जी को अपने मामले की अपील करने के लिए विलायत भेजा । इस अपील मे कहा गया था

"गवर्नर जनरल कहते है कि रामचद्रराव द्वारा गोद लिये गए लडके को स्वीकार नही किया, अतएव गवर्नर जनरल गोद लिये हुए दामोदरराव को भी स्वीकार नही कर सकते । पर वास्तविकता यह है कि रामचंद्र-राव ने कभी कोई लडका गोद ही नही लिया । उनकी मृत्यु के बाद राज्य के और उत्तराधिकारी रहते हुए भी उनकी पत्नी ने कृष्णराव को गोद लिया, पर इस समय तो राज्य के लिए कोई वास्तविक उत्तराधिकारी नही है और स्वत· गंगाधरराव ने बच्चे को गोद लिया है । हिंदू शास्त्रानुसार प्रत्येक को लड़का गोद लेने का अधिकार है, इसलिए अपने कुल और गोत्र

मे से एक लडका गोद लिया गया है। भारत-सरकार ने अन्यायपूर्वक झासी राज्य को अंग्रेजी राज्य मे मिला लिया है। वह गोद लिये हुए लडके को प्राप्त होना चाहिए। गवर्नर जनरल कहते है कि अग्रेजो ने कृपापूर्वक यह राज्य गगाधरराव को सौपा था, पर यह नितात असत्य है। झासी का राज्य हमने अग्रेजो से नही लिया। हमारे पूर्वजो ने पेशवाओ के लिए जो वीरता के कार्य किये, उसके बदले मे हमे यह राज्य प्राप्त हुआ है। हमारे पूर्वजो ने इसे बाहुबल से हासिल किया है। अतएव इस राज्य को अपने राज्य मे मिला लेने का अग्रेजो को किंचित-मात्र भी अधिकार नही है।"

इस प्रार्थना-पत्र मे सचाई थी और न्याय की दृष्टि से काफी बल था, पर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने इसकी ओर जरा भी ध्यान न दिया। झासी को अपने राज्य मे मिलाने के उपलक्ष मे डलहौजी की पीठ ठोकी गई।

महारानी के हृदय मे अपमान तथा अन्याय के विरोध मे आग जल रही थी। इस आग की प्रखरता को कम करने के लिए रानी ने ईश्वर-भक्ति, पुराण-श्रवण आदि पारलौकिक बातो की ओर ध्यान देकर अपने अपमान को भूलने का प्रयत्न किया, पर भाग्य ने उसे ऐसा नही करने दिया।

नानासाहब की पेंशन जप्त

मराठो तथा अग्रेजो के तृतीय युद्ध के परिणामस्वरूप अंतिम पेशवा बाजीराव अपना सारा राज्य अग्रेजो को सौपकर बिठूर (ब्रह्मावर्त) मे आकर ईश्वर-चिंतन और धर्म-कर्म मे अपना शेष जीवन बिताने लगा। इस दुर्बल शासक को ईश्वर ने लबी आयु दी। वह बिठूर मे ३३ वर्षो तक—अर्थात १८५१ तक—अग्रेजो की पेशन खाता रहा।

पजाब के और अफगान-युद्ध के समय बाजीराव पेशवा ने अपनी पेशन मे से अग्रेजो को लाखो रुपये देकर सहायता दी। अपनी गुलामी से ही बाजीराव को सतोष नही था। औरो को भी गुलाम बनाने मे अग्रेजो को सहायता देने मे उसे जरा भी हिचकिचाहट नही हुई।

ब्रह्मावर्त मे बाजीराव के तीन कन्याए उत्पन्न हुई। पुत्र एक भी

नही हुआ। अतः उसने अपने-ही एक आश्रित माधव नारायण भट्ट के तीन पुत्रों को गोद ले लिया। इनके नाम थे नानासाहब, दादासाहब और बालासाहब। दादासाहब की तो बाजीराव के सामने ही मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी रोहणीबाई ने माधव नारायण भट्ट के सबसे छोटे पुत्र रावसाहब को गोद ले लिया। इस प्रकार रावसाहब जन्म से नानासाहब का भाई था, पर गोद लिये जाने के कारण वह उसका भतीजा हो गया।

नानासाहब बाजीराव का विशेष प्रिय था। वह बडा वीर, तेजस्वी और उदार-हृदय व्यक्ति था। बाजीराव ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। २८ जनवरी १८५१ को बाजीराव की मृत्यु हो गई। बाजीराव काफी धन नकद और सरकारी प्रोमिसरी नोटो के रूप मे छोड गया था। नानासाहब पर उसके सभी आश्रितो की देख-भाल करने का उत्तरदायित्व आ पडा। नानासाहब ने गवर्नर जनरल से अनुरोध किया कि बाजीराव को मिलनेवाली पेशन उसके नाम कर दी जाय। उसे अंग्रेजों की सदाशयता पर पूर्ण भरोसा था। पर डलहोजी ने जो उत्तर भेजा वह इस प्रकार था:

"बाजीराव ने ३३ साल की लबी अवधि तक पेशन ली। ढाई करोड से अधिक रकम उन्हे मिल चुकी है। उन्होने अपने रिश्तेदारों के लिए अट्ठाईस लाख की सपत्ति छोडी है। कानून के अनुसार उनके रिश्तेदारों का पेशन पर कोई अधिकार नही। बाजीराव ने जो धन छोडा है, वह उनके संबधियो के लिए पर्याप्त है।"

डलहौजी के इस निश्चय के विरुद्ध नानासाहब ने विलायत मे अपील की। उसमें कहा गया था —"बाजीराव पेशवा ने जब राज्य के अधिकार अग्रेजों को सौपे, तब उनके तथा उनके परिवार के लिए यह निश्चय हुआ था कि उन्हे आठ लाख रुपये मिलते रहेंगे। यद्यपि उनकी मृत्यु हो गई है, तथापि आज भी उनका परिवार है। उत्तराधिकारी पुत्र तथा सबधियो को परिवार में न मानना अत्यत अनुचित है। राज्य लेते समय पेशवा के परिवार के खर्च का उत्तरदायित्व अंग्रेजो ने लिया था। उसे निभाना उनका कर्त्तव्य

है। अगर अंग्रेजो ने पेशवा का राज्य स्थायी रूप से ले लिया है, तो उन्हे पेशन भी उनके परिवार को स्थायी रूप से देनी चाहिए। टीपू सुल्तान के वंशजो को पेशन मिल रही है। मुगल बादशाहो के वंशजो को भी पेशन मिलती है। मैसूर तथा दिल्ली का न्याय पेशवाओं के वंशजों पर क्यों लागू नही किया जाता?"

नानासाहब अत्यत सज्जन तथा सत्यनिष्ठ व्यक्ति था। अग्रेजो ने भी मुक्त-कंठ से उसके उच्च चरित्र, उदार व्यवहार तथा अतिथि-सत्कार की प्रशसा की है। पर उसके ये सब गुण डलहौजी की दृष्टि मे कोई मूल्य नही रखते थे। राज्य-विस्तार और द्रव्य-प्राप्ति उसके जीवन का उद्देश्य था। नाना-साहब के पास अजीमुल्ला नामक एक अत्यंत योग्य, चतुर, सुदर तथा कूटनीतिज्ञ व्यक्ति था। इसीको नानासाहब ने अपना वकील बनाकर इग्लैड भेजा। वहा इसने अपने चतुर व्यवहार से उच्च परिवारो से संबध स्थापित किया, पर उसे नानासाहब की पेशन को प्राप्त करने मे सफलता नही मिली। इससे अग्रेज राजनीतिज्ञो पर उसका विश्वास एकदम खत्म हो गया। वही सतारा के राजा प्रतापसिह के वकील रगो बापूजी से उसकी भेट हुई। दोनो ही देश-प्रेमी, आत्माभिमानी और चतुर व्यक्ति थे। दोनो ही ने अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर विश्वास किया था, पर वास्त-विकता की ठोकर खाकर वे दोनो उनके बडे कठोर द्रोही बन गए थे।

लदन के किसी होटल मे ये दोनो राजनीतिज्ञ मिले। क्या बाते हुई, इसका पता नही। इसमे सदेह नही कि हिदुस्तान मे शीघ्र-ही अग्रेजो को बाहर निकालने का जो महान प्रयत्न हुआ, उसका बीजारोपण लदन के इसी होटल मे रंगो बापूजी तथा अजीमुल्ला के इसी वार्तालाप मे हुआ। इसका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा।

दिल्ली पर प्रहार

अंग्रेज जानते थे कि जबतक दिल्ली के मुगल बादशाह के अस्तित्व को समाप्त नही किया जाता, तबतक लोग उन्हे हिदुस्तान का सर्व-सत्तात्मक शासक नही मानेगे। इधर मुगल सिहासन भी अतिम सासे ले रहा था।

१८०३ के पूर्व महदजी शिदे को दिल्ली की वजारत का अधिकार प्राप्त था, पर शिदे और अग्रेजो मे सुरजी-अजनगाव की जो संधि हुई, उसके बाद से दिल्ली की वजारत अग्रेजो के हाथो मे चली गई । लेकिन दिल्ली का मुगल सम्राट नाममात्र का बादशाह ही क्यो न हो, अभी तक लोगो की नजरो मे वही सर्व-शक्तिमान सत्ताधारी था । दिल्ली मे अग्रेज रेजीडेट नियुक्त हुआ । वास्तव मे सारी सत्ता इसीके हाथो मे रहती थी ।

अग्रेज मुगल सम्राट-पद को पूरी तरह से समाप्त करने का निश्चय कर चुके थे । १८०६ मे अधे शाहआलम की मृत्यु होते ही उसके स्थान पर अकबरशाह गद्दी पर बैठा । अभी तक मुगल सम्राट के सामन जब कभी अग्रेज अफसर जाते, तो बडी विनय, नम्रता तथा शालीनता से पेश आते थे । जब कभी रेजीडेट सम्राट से मिलता तो अपने जूते बाहर उतारकर भीतर जाता, झुककर सलाम करता । जब कभी किसीसे युद्ध होता तो, नाम के लिए ही क्यो न हो, बादशाह से आज्ञा प्राप्त की जाती । पर धीरे-धीरे अग्रेजो ने सम्राट के महत्व को घटाना आरभ किया । १८२७ से उन्होने सम्राट से किसी प्रकार की सलाह लेना बद कर दिया । अग्रेज रेजीडेट बिना बादशाह से पूछे मनमाने ढग से कार्य करने लगा । १८३५ मे सम्राट के नाम का सिक्का बद कर दिया गया तथा उसके स्थान पर ईस्ट इडिया कपनी का रुपया चलाया गया ।

अग्रेज अधिकारी बादशाह को खर्च के लिए जो धन देते थे, वह उसके परिवार के लिए बहुत कम होता था । अकबरशाह ने इस धन को बढाने का प्रयत्न किया । उसने राममोहन राय को राजा की पदवी प्रदान कर इंग्लैड मे अपना वकील बनाकर भेजा । पर पेशन की रकम बढ़वाने मे वह असफल रहा । सम्राट की इस कठिनाई का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करने का अग्रेजो ने निश्चय किया । उससे कहा गया कि अगर वह बादशाह के सभी अधिकार छोड देने को तैयार हो तो उसकी पेशन मे तीन लाख रुपये की वृद्धि की जा सकती है, पर बादशाह की नसो मे बहनेवाला बाबर-अकबर का खून इतना ठडा नही हो गया था कि वह इन शर्तों को

स्वीकार कर लेता, उसने उन्हे अस्वीकार कर दिया ।

लार्ड एलनबरो ने अपने कार्यालय मे मुगल सम्राट के महत्व को और भी घटाने का प्रयत्न किया । ईद तथा सम्राट की सालगिरह के अवसर पर उसे जो भेट दी जाती थी, वह बद कर दी गई ।

अतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह अत्यत वृद्ध था । चतुर और कूट-नीतिज्ञ तरुण बेगम जीनतमहल का प्रभाव बादशाह पर इतना अधिक था कि वह सारा राजकाज उसीको सौप चुका था । वह जवाबख्त को उत्तरा-धिकारी बनाना चाहती थी, पर अग्रेज न जवाबख्त को चाहते थे और न जीनतमहल को—वे जानते थे कि ये दोनो ही अग्रजो के कट्टर विरोधी है ।

जीनतमहल ने देखा कि अग्रेज धीरे-धीरे बादशाह के सभी अधिकार छीनकर उसे लाल किले के बाहर कही दूर ले जाकर रखना चाहते है । उसने बादशाह को समझना आरभ किया । बादशाह भी जानता था कि अग्रेज उसकी बादशाहत खतम करना चाहते है । वह वीर तैमूर का वशज था । आत्माभिमान की भावना उसमे मरी नही थी । वृद्ध बादशाह के मन मे अग्रेजो के विरोध की अग्नि प्रज्वलित होने लगी । भावी इतिहास की घटनाओं ने इस अग्नि को प्रचड रूप प्रदान किया ।

: ५ :
महायज्ञ की तैयारी

इस प्रकार असंतोष की चिनगारियो से देश का सारा वायुमडल व्याप्त हो गया । स्वातत्र्य-संग्राम के हुताशन को प्रबल रूप से प्रज्वलित करने के लिए इन चिनगारियों को एकत्र कर एक ऐसे भयंकर अग्निपुज को प्रज्वलित करने की आवश्यकता थी, जिसमे देश की स्वतंत्रता का अपहरण और धर्म पर कुठाराघात करने तथा समाज को नैतिक और सामाजिक अध.पतन की ओर ले जानेवाली शक्तियो को जलाकर राख का ढेर बनाया जा सके । यह महान ऐतिहासिक कार्य किया नानासाहब पेशवा तथा अज़ीमुल्ला खा ने ।

नानासाहब ने अजीमुल्ला को अपनी पेंशन पुन. प्राप्त करने के लिए इग्लैड भेजा था। वहा उसकी भेंट सतारा के छत्रपति प्रतापसिह के वकील रगो बापूजी से हुई। वह भी प्रतापसिह के प्रति किये गए अन्याय की ओर बोर्ड के डायरेक्टरो का ध्यान आकर्षित कराने वहा गया था। दोनो ही अत्यत बुद्धिमान, राजनीतिज्ञ तथा देश-प्रेमी थे। दोनो ही को वहा असफलता के सिवा कुछ भी प्राप्त नही हुआ। अत मे निराश होकर इन दो महान कूटनीतिज्ञो ने अनुभव किया कि जबतक हिदुस्तान से अग्रेजी राज्य की समाप्ति नही की जाती, तबतक इस देश की स्वतन्त्रता, धर्म, सभ्यता, नैतिकता आदि सभी सकट मे रहेगे। दोनो ने निश्चय किया कि वे हिदुस्तान वापस आकर अग्रेजो के विरुद्ध लडाई की व्यवस्था करेगे। दक्षिण का सगठन रगो बापूजी को सौपा गया और उत्तर को सगठित करने का कार्य अजीमुल्ला ने अपने ऊपर लिया।

हिदुस्तान वापस आने के पूर्व अज़ीमुल्ला ने यूरोप की यात्रा की। वह यूरोप के कई राजनीतिज्ञो से मिला। वह तुर्की के खलीफा से भी मिला। जब उसने सुना कि सैवस्तोपोल के युद्ध मे अग्रेजो और फ्रासीसियो को रूसी लोगों ने मार भगाया है, तब वह अत्यंत प्रसन्न हुआ। यूरोपीय इतिहासज्ञो का कहना है कि इसी समय वह रूसी राजनीतिज्ञो से मिला। वह जानना चाहता था कि क्या रूसी हिदुस्तान आकर अग्रेजो को यहा से भगाने मे सहायक हो सकेगे ? वह उनसे सहायक सधि भी करना चाहता था।

अज़ीमुल्ला जिस समय रूस मे था, रसेल नामक पत्रकार से उसकी भेंट हुई। रसेल 'लदन टाइम्स' का सैनिक सवाददाता था। उसीके साथ वह अग्रेजी कैंप में गया। उस समय वह भारतीय नवाब के वेश मे था। रसेल से उसने कहा, "मै इस प्रसिद्ध नगर तथा उन महान 'रुस्तमों' को देखना चाहता हू, जिन्होंने अग्रेजो और फ्रासीसियों की सयुक्त सेना को हराया है।"

लार्ड राबर्ट्स को एक पत्र अजीमुल्ला द्वारा लिखा हुआ मिला, जिसमे उसने तुर्की के खलीफा का ध्यान हिदुस्तान के असंतोष की ओर आकर्षित

किया था। चद्रनगर से फ्रांसीसी सहायता प्राप्त करने के लिए भी उसने कई फ्रांसीसी राजनीतिज्ञो को पत्र लिखे थे। वापस आते समय वह मिस्र भी गया था। इस प्रकार अनेक देशो तथा राजनीतिज्ञो से सपर्क स्थापित कर अज़ीमुल्ला हिंदुस्तान लौटा। सबसे पहले वह बिठूर पहुचा। उसने अपनी यात्रा का पूरा वर्णन नानासाहब पेशवा के सामने पेश किया। इन लोगो ने अनुभव किया कि प्रार्थना और न्याय की भाषा अग्रेज नही समझ सकते। वे तो एक ही भाषा समझते है और वह भाषा है तलवार की।

नानासाहब और अजीमुल्ला ने देश-भर मे एक बृहत क्राति करने की योजना ब्रह्मावर्त मे नानासाहब के महल मे बैठकर बनाई। यह योजना बड़ी दूरदर्शिता और चतुरता से बनाई गई थी। इन लोगो ने समझा कि देश मे एकता स्थापित करने के लिए क्राति का अगुआ ऐसा व्यक्ति बनाया जाय, जो सर्व-सम्मत हो। उन्होंने अनुभव किया कि जनता के हृदय मे आज भी मुगल सम्राट के प्रति भक्ति और श्रद्धा है। अत. उसीके पक्ष मे निर्णय हुआ। क्राति को सफल बनाने के लिए यह भी आवश्यक था कि एक देश-व्यापी सुदृढ गुप्त सगठन हो। नानासाहब स्वत. इस सगठन को मूर्त-रूप देने मे जुट पडा।

हजारो प्रचारको को देश-भर मे भेजा गया। ये प्रचारक चौराहो पर, मेलों मे, बाजारो मे, राजाओ के राजमहलों मे, गरीबो की झोपड़ियो मे—सब जगह क्राति का सदेश देते थे। स्थान-स्थान पर भावी स्वातंत्र्य-सग्राम की चर्चा होती थी। ये प्रचारक अनेक रूप धारणकर देश के कोने-कोने मे पहुंचे। कोई फकीर बना, कोई साधु, कोई भिखारी, कोई यात्री। इस प्रकार क्राति के अनेक सदेशवाहक देश-भर मे छा गए।

इसीके साथ नानासाहब ने देश के विभिन्न राजाओ से पत्र-व्यवहार करना आरभ किया। अपने पत्रो मे नानासाहब ने देश पर अग्रेजो द्वारा किये गए अत्याचारो, राजाओ के प्रति किये गए अन्यायो तथा धर्म और संस्कृति पर किये जानेवाले आक्रमणो की ओर उनका ध्यान खीचा और बड़ी सशक्त भाषा मे उनसे अग्रेजो को देश के बाहर निकालने के प्रयत्न मे सहयोग

देने की प्रार्थना की । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक नानासाहब के प्रचारक घूमते थे और देश को भावी क्राति के लिए तैयार करते थे । इन प्रचारकों मे से कुछ के पास हाथी और साथ मे सशस्त्र सिपाही भी थे । हाथी पर चढकर ये लोग देश के प्रत्येक राजा के दरबार मे जाकर वहा की परिस्थिति का अध्ययन करते और उचित अवसर पर राजा, सैनिको और जनता को क्राति का सदेश देते । गुप्त प्रचार इतने सुलझे ढग से तथा चतुराई से किया जाता था कि अंग्रेजों को इसकी हवा भी न लग पाई ।

सेना की छावनियों पर इन प्रचारको की विशेष दृष्टि रहती । अनेक प्रचारक छावनियों मे पडितो अथवा मौलवियो के रूप मे घुस जाते और सैनिको को क्राति का पाठ पढाते । उनसे कहते कि उचित समय पर उन्हे अग्रेजो के विरुद्ध उठ खडे होना है । छावनियो मे गुप्त समितिया बनाई गईं । इनमे क्राति के सदेश और समाचार बराबर आया करते थे । एक छावनी से दूसरी छावनी तक आश्चर्यजनक शीघ्रता से समाचार बराबर आया-जाया करते थे । अग्रेज अफसरो के पास किसी भी घटना का समाचार पहुचने के पूर्व सभी सैनिक उसे जान जाते थे ।

अवध मे प्रचार-कार्य का सगठन फैजाबाद के जमीदार मौलवी अहमदशाह ने बडे उत्साह और लगन से किया । वह अवध के गाव-गाव गया और उसने लोगो को अग्रेजो के विरुद्ध उठ खडे होने का सदेश दिया । उसके क्रातिकारी सदेश को सुनने के लिए जो सभाए होती थी, उनमे दस-दस हजार से भी अधिक लोग उपस्थित होते थे । भाषण के बाद लोग शपथ लेते थे कि भावी सग्राम मे वे अग्रेजो को मार भगाने मे प्राण-पण से प्रयत्न करेगे । अवध के वजीर नकीखा ने हजारो लोगो को उत्तरी भारत मे फकीरो और साधुओ के वेश मे भेजा और क्राति के लिए भूमि तैयार की ।

दिल्ली तो स्वातंत्र्य-सग्राम का एक प्रमुख केद्र था ही । मुगल सम्राट बहादुरशाह और उसकी चतुर बेगम जीनतमहल ने पजाब और दिल्ली मे प्रचार का कार्य किया । इतना ही नही, जीनतमहल ने ईरान के बादशाह से भी इस सबध मे पत्र-व्यवहार किया और विदेशो से सहायता प्राप्त

करने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार नानासाहब तथा अन्य क्रांतिकारी नेताओ ने गुप्त रूप से एक देश-व्यापी सगठन स्थापित कर लिया। यह सब होने के बाद नाना-साहब स्वयं यात्रा के बहाने ब्रह्मावर्त से निकला। उसके साथ बाबासाहब, अजीमुल्ला, तात्याटोपे और रावसाहब आदि थे।

अनेक राजाओ से ये मिले। जहा जाते थे, उसी स्थान पर उनका भव्य स्वागत होता था। नानासाहब के प्रचारको ने स्थान-स्थान पर क्राति के केंद्र स्थापित किये थे। केंद्रो के कार्यों मे एकसूत्रता आवश्यक थी। क्राति-सग्राम की सफलता भी इस बात पर निर्भर थी कि सारे देश मे एक साथ अग्रेजो पर आक्रमण हो। नानासाहब की यात्रा का यही उद्देश्य था।

नानासाहब सबसे पहले दिल्ली पहुचा। लाल किले मे बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल तथा कुछ प्रमुख व्यक्तियों की एक गुप्त बैठक हुई। इसमे भावी स्वातत्र्य-सग्राम की योजना को अतिम रूप प्रदान किया गया। इस बैठक मे कई निर्णय हुए। इसके बाद नानासाहब अबाला गया। वहा से क्राति के विभिन्न केंद्रों का सगठन कर वह अप्रैल मास मे लखनऊ पहुचा। यहा उसका बडा स्वागत हुआ। एक विशाल जुलूस निकाला गया। फिर कालपी होते हुए ये लोग ब्रह्मावर्त लौट आये।

नानासाहब कितना बडा राजनीतिज्ञ था, कितना चतुर सगठनकर्त्ता था, इसका इस बात से पता चलता है कि क्रातिकारी सगठन के लिए उसने इतनी लबी यात्रा की, पर अग्रेजो को उसके वास्तविक उद्देश्य का आभास भी नही हुआ। जहा-जहा नानासाहब और उसके साथी जाते, वहा-वहा वे अग्रेज अफसरो से मिलते। उनसे मित्रतापूर्ण बाते करते। रास्ते मे अंग्रेजी सेना की जितनी छावनिया थी, उन सबमे वे अवश्य गए। सर जेकब ने अपनी 'वेस्टर्न इडिया' (पश्चिमी भारत) नामक पुस्तक में लिखा है—"इस षडयत्र का सगठन जितने गुप्त ढंग से हुआ, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजना बनाई गई, जिस सतर्कता के साथ षड़यत्रकारी केंद्र कार्य करते थे, इन केंद्रो मे सामजस्य स्थापित करनेवाले जिस गुप्त रूप से रहते

थे—प्रत्येक को उतनी ही हिदायते दी जाती थी, जितनी उसके लिए आवश्यक थी—इन सबका वर्णन करना अत्यत कठिन है।"

लाल कमल के फूल तथा चपाती को इस भावी क्राति के प्रचार का साधन बनाया गया। लाल कमल वीरता तथा जागृति का चिह्न माना जाता था। चपाती देश के सभी वर्गों की एकता की प्रतीक थी। इस प्रकार रक्त कमल तथा चपातियो ने देश मे क्रातिकारी सदेशवाहक का काम किया।

क्राति के सदेशवाहक एक सैनिक छावनी से लाल कमल लेकर निकट की दूसरी सैनिक छावनी मे जाते थे। उस सेना का भारतीय अफसर उसे बडी श्रद्धा से अपने हाथो मे लेता था। सैनिक एक पक्ति मे खडे हो जाते थे। लाल कमल एक के हाथो से दूसरे के हाथों मे जाता। लाल कमल को हाथ मे लेने का अर्थ था भावी क्राति का सैनिक बनना। इस प्रकार जब सभी उपस्थित भारतीय सैनिकों के हाथो से वह गुजर चुकता तो इस छावनी का एक सैनिक उसे दूसरी छावनी मे ले जाता। इस प्रकार देश की प्रत्येक छावनी मे लाल कमल पहुचा और उसने वहा क्राति का सदेश देकर हजारो सैनिको की एक क्रातिकारी सेना का सगठन किया।

सर्व-साधारण मे प्रचार करने का साधन चपाती थी। एक गाव का चौकीदार इस चपाती को पास के गाव मे ले जाता और वहा के चौकीदार के हाथो मे उसे सौपता। दूसरा चौकीदार गाववालो को इकट्ठा करता। उस चपाती मे से एक टुकडा वह स्वय खाता, बाकी चपाती सभी उपस्थित गाववालो मे बांट दी जाती। इस पवित्र चपाती का प्रसाद पाने मे हजारो वर्षो की जाति-पाति की दीवार ढह जाती। सभी उसे बडे प्रेम और उत्साह से ग्रहण करते। चपाती खाने का अर्थ यह था कि वे भी आनेवाले स्वातन्त्र्य-सग्राम मे विदेशी सत्ता को मिटाने के प्रयत्न मे भाग लेगे। फिर उस गाव का चौकीदार एक नई चपाती बनाकर उसे अपने निकटवाले गाव के चौकीदार को दे आता।

इस प्रकार लाल कमलों ने सैनिको मे तथा चपातियो ने जनता मे जागृति का सदेश फैलाया और भावी स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए तैयार रहने

का आदेश दिया । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक ये चपातिया इसी प्रकार सदेश देती हुई घूमी ।

अपनी यात्रा से वापस आकर नानासाहब ने अपने अनुभवो और सगठन पर फिर से विचार किया । अंत मे यह निश्चय हुआ कि सारे भारत मे ३१ मई को एक साथ अग्रेजो पर आक्रमण किया जाय और इस प्रकार स्वातत्र्य-सग्राम का आरभ किया जाय ।

: ६ :

आग भड़की

हम कह चुके है कि डलहौज़ी की कुटिल नीति से देश मे घोर असतोष फैल गया था । स्थिति विस्फोटक थी । डलहौज़ी ने ऊपरी शाति को वास्तविक शाति माना । इग्लैड पहुचने पर उसकी चारो ओर प्रशसा होने लगी । भारत से वापस जाकर उसने कहा—"हिदुस्तान की स्थिति अत्यत सतोषपूर्ण है तथा वहा चारो ओर सुख और शाति है ।" पर सचाई कुछ और ही थी और वह कुछ समय बाद सामने आनेवाली थी ।

लार्ड केनिग ने डलहौजी से २६ फरवरी, १८५६ को गवर्नर-जनरल का चार्ज लिया । वह सुशिक्षित, बुद्धिमान, शातिप्रिय और नम्र स्वभाव का था । उसे संभवत देश की वास्तविक स्थिति का आभास था । उसने हिदुस्तान मे आते समय कहा था—"हिदुस्तान मे ऊपरी शाति अवश्य दिखाई दे रही है, पर उस देश के क्षितिज पर एक छोटा-सा काला बादल भी दिखाई दे रहा है । मै ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि इस छोटे-से बादल को बड़ा रूप न प्राप्त हो ।" उस समय कौन जानता था कि लार्ड केनिग के इन शब्दो मे भावी घटनाओ की प्रतिध्वनि गूज रही थी !

इधर देश से अग्रेजो को बाहर निकालने की पूर्ण योजना बन चुकी थी । विभिन्न क्राति-केद्र इसकी तैयारी मे लगे हुए थे । क्राति का प्रचार जोरो पर था । चुपचाप प्रचार का ढग इतना सफल सिद्ध हुआ कि

देश का प्रत्येक व्यक्ति कहता था कि शीघ्र ही कुछ होनेवाला है । नाना-साहब ने देश के अनेक लोगो से राय लेकर क्राति के श्रीगणेश के लिए जो तिथि निश्चित की थी, उसका पता केद्र के प्रमुख लोगो और सेना के प्रमुख अफसरो को ही था । सभी उसकी तैयारी मे लगे थे । पर अग्रेजो के सौभाग्य से और क्रातिकारियो के दुर्भाग्य से इस क्राति का विस्फोट निश्चित तिथि के पूर्व ही हो गया ।

कलकत्ते के क्रातिकारी नेताओ ने अग्रेजो की राजधानी सेट डेविड के किले पर अपना अधिकार करने की योजना बनाई । १० मार्च को ग्वालियर का राजा जयाजीराव शिदे कलकत्ता आया था । अग्रेजो का 'परम मित्र' होने के नाते यहा उसका शानदार स्वागत किया गया । इसी दिन उसके सम्मान मे एक बडे भोज का आयोजन किया गया । हिदुस्तानी सेना के क्रातिकारी नेताओ ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया । उन्होंने सोचा कि सभी अग्रेज अफसर भोज मे व्यस्त रहेगे । ऐसे समय मे किले पर अधिकार कर लेना सरल होगा ।

पर दुर्भाग्य से उस दिन जोरदार वर्षा हुई । परिणामस्वरूप भोज स्थगित कर दिया गया, पर यह समाचार सबको नही मिल सका । शहर के प्रमुख अधिकारी मेजर केवनाग को भोज के स्थगित होने का पता न था । वह निश्चित समय पर भोज के स्थान पर पहुचा, पर वहां उसके स्थगित हो जाने का समाचार सुनकर वापस लौट आया ।

इधर क्रातिकारियो ने सोचा कि भोज मे काफी समय लगेगा । पर एकाएक मेजर केवनाग को वापस आता देखकर वे घबडा गए । उन्होने समझा कि उनकी योजना का उसे पता लग गया है । सभी लोग चिंतित हो उठे । कई सिपाहियो ने उसके सामने जाकर क्षमा-याचना की और क्रातिकारी नेताओ के नाम बता दिये, फलत· क्रातिकारी नेता पकडे गए और उन्हे चौदह-चौदह वर्ष कठोर कारावास का दड दिया गया ।

कलकत्ते से ८ मील दूर बैरकपुर नामक स्थान मे अग्रेजों की एक सैनिक छावनी थी । यहा एक अग्रेजी तोपखाना रहता था, पर थोडे ही दिन पूर्व

यह तोपखाना यहा से हटाकर मेरठ भेज दिया गया था। इससे बहुत से बगले तथा बैरके खाली हो गईं। इनमे कारतूस बनाने का एक नया कारखाना खोल दिया गया। अभी तक हिंदुस्तानी सैनिक ब्राउनबेन नामक बदूक का प्रयोग करते थे, पर हाल ही मे एनफील्ड नामक नई बन्दूके, जो पहली से अधिक लबी मार की थी, उन्हे दी गई थी।

इन बदूको मे जो कारतूस भरे जाते थे, उन्हे पहले दातो से तोडना पडता था। नये कारखाने मे इस नई बदूक के कारतूस बनते थे। नई बदूक के उपयोग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक-दो सेनाए यहा रहती थी।

१८५७ के जनवरी मास मे इस कारतूस के कारखाने मे काम करने-वाले एक मेहतर ने एक सिपाही से कहा—"बडी प्यास लगी है। जरा अपना लोटा मुझे दे दो।"

सिपाही ब्राह्मण था। वह भला अपना लोटा नीची जाति के आदमी को कैसे देता ? उसने कहा—"मै ब्राह्मण हू। अपना लोटा तुम्हे कैसे दू ?" उस मजदूर ने हसकर कहा—"बडे ब्राह्मण बनते हो! ऐसे ही ब्राह्मण बने रहना।"

सिपाही ने पूछा—"क्यो, बात क्या है ?"

मजदूर बोला—"हमारे कारखाने मे एक नये प्रकार के कारतूस बन रहे हैं। उसमे गाय और सूअर की चरबी लगती है। इसे तुम्हे दात से काटकर बंदूक मे भरना पडेगा। अब तुम्हारी जाति गई।"

सिपाही घबडा गया। वह भागकर अपनी बैरक में पहुचा। सभी सिपाहियो को उसने यह समाचार दिया। सिपाही उत्तेजित हो उठे। उन्होने समझा कि अग्रेज उनको जान-बूझकर धर्म-भ्रष्ट करना चाहते है। कारखाने मे काम करनेवाले और भी मजदूरो से उन्होने इस बात का पता लगाया। सभी ने इस बात की सचाई की पुष्टि की। वे सीधे अपने अग्रेज अफसरो के पास गए। अफसरो ने कहा—"यह बात बिल्कुल झूठी है। कारतूसो मे ऐसी कोई चीज नही लगाई गई है, जो किसीके धर्म के विरुद्ध हो।" पर सिपाहियों ने उनकी बात का विश्वास नही किया। देश मे चारो ओर

पत्र भेजे गए। पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक यह समाचार फैल गया कि अंग्रेजो ने हिंदुस्तानी सिपाहियों को ईसाई बनाने के लिए यह नई चाल चली है। सारे देश मे सनसनी फैल गई। अग्रेज अफसरो ने सिपाहियो को बहुत समझाया कि यह अफवाह निराधार है, पर सिपाहियो को उनकी बातो पर विश्वास न हुआ।

बैरकपुर मे इस समय ३४ नबर की पलटन थी। इसमे अधिकतर सिपाही अवध प्रात के थे। वे पहले ही से अग्रेजो से असतुष्ट थे। वे सोचते थे कि अग्रेजो पर विश्वास करना घातक है। इन्होने पहले अवध के नवाब को धोखा देकर अन्यायपूर्वक राज्य ले लिया और नवाब को कैद कर लिया। अब ये लोग हिंदू-मुसलमानो को ईसाई बनाने का प्रयत्न कर रहे है।

हिंदुस्तानी सिपाहियो के इस व्यवहार से अग्रेज अफसर चिंतित हो गए। अभीतक सिपाही उनके प्रति अत्यंत वफादार थे। अग्रेज अफसरो की आज्ञा पर वे अपने ही देशवासियो पर बदूक तानने मे जरा भी नही हिचकिचाते थे। वेतन देनेवाली ईस्ट इडिया कपनी की आज्ञा मानना वे अपना धर्म समझते थे। पर अब समय बदल चुका था। अंग्रेजो के प्रति उनके हृदय मे अविश्वास पैदा हो गया था। उन्होने देखा कि अग्रेज अपना राज्य स्थापित करके ही सतुष्ट नही हुए है, वरन वे उनके धर्म का भी नाश करने पर तुले हुए है।

अवध का वजीर नकीखा इस समय कलकत्ते मे रहता था। वह वही से सारे उत्तरी भारत मे क्राति का प्रचार कर रहा था। बैरकपुर की हिंदुस्तानी सेना को वह पहले ही क्राति के पक्ष मे कर चुका था और सिपाही क्राति मे भाग लेने की शपथ ले चुका थे।

साम्राज्य के नशे मे चूर अग्रेज हिंदुस्तानियो की इस अनुशासन-हीनता को कैसे सहन करते? उन्होने बल-प्रयोग द्वारा इन कारतूसों का उपयोग कराने का निश्चय किया। उन्होने सोचा कि हिंदुस्तानी सिपाही थोडा-सा बहक भले ही जाय, पर वह अग्रेज अफसरों की आज्ञा का उल्लघन करने का साहस नही कर सकता, पर उन्हे क्या पता था

कि हिंदुस्तानी सिपाही इस समय एक सुप्त ज्वालामुखी था, जिसका विस्फोट शीघ्र ही होनेवाला था ?

सेना के हिंदुस्तानी अफसरो ने बहुत प्रयत्न किया कि क्रांति के लिए निश्चित की गई तिथि तक सिपाही शांत रहे और सर्वत्र क्राति का श्रीगणेश इसी निश्चित दिवस पर हो। इसीलिए वे उत्तेजित सिपाहियो को शात रखने का प्रयत्न कर रहे थे। पर उन्हे इसमे सफलता प्राप्त नही हुई।

अग्रेजो ने निश्चय किया कि सिपाहियो से कारतूसों का उपयोग अवश्य कराया जाय। उन्होने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। बरहामपुर की १६ नबर की पलटन इसके लिए चुनी गई। इस पलटन को इन कारतूसो का प्रयोग करने की आज्ञा दी गई। सिपाहियो ने दृढता-पूर्वक इन्कार कर दिया। अंग्रेजो की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी मे मिलती हुई दिखाई दी। पर वे असहाय थे। बंगाल मे इस समय कोई गोरी फौज न थी। अत. वे इस अपमान को चुपचाप थोडे समय के लिये पी गए। पर पलटन को अब बरहामपुर मे रखना सुरक्षित न समझा गया। उसे बैरकपुर भेज दिया गया।

इधर अग्रेजो ने ब्रह्मदेश से एक गोरी पलटन बुलवाई। १६ नबर की पलटन को नि:शस्त्र करके बरखास्त करने का भी निश्चय किया गया।

१६ नबर की पलटन बैरकपुर पहुंची। चारों ओर सनसनी थी। इतने मे समाचार फैला कि ब्रह्मदेश से गोरो की एक फौज कलकत्ता आ गई है। वह शीघ्र ही बैरकपुर पहुचेगी तथा १६ नंबर की पलटन के शस्त्र रखा लिये जायगे और उसे भग कर दिया जायगा। इससे सिपाही बिगड़ गए। हथियार रखने के बजाय वे उनका उपयोग करने के लिए तैयार हो गए। उनके हिंदुस्तानी अफसरो ने उन्हे सयम से काम लेने को कहा और ३१ मई तक चुप रहने का आदेश दिया।

१६ नबर की पलटन मे मगल पाडेय नाम का एक सिपाही था। वह अपने धर्म का पक्का था। हाल की घटनाओं और कारतूसो के बारे मे अफवाहों से उसका धर्माभिमान जागृत हो उठा। ३१ मई तक राह

देखना उसके लिए कठिन हो गया ।

२९ मार्च १८५७ रविवार को दोपहर के समय मगल पाडेय एक हाथ मे नगी तलवार तथा दूसरे मे बदूक लेकर बाहर निकल पडा और इधर-उधर खडे सिपाहियो को अग्रेजो पर आक्रमण कर धर्म-युद्ध आरभ करने के लिए उन्हे ललकारने लगा। उसे एक बिगुलर दिखाई दिया । उससे उसने कहा कि बिगुल बजाकर सबको यहा इकट्ठा करो । बिगुलर हसकर चल दिया । इतने मे मेजर जनरल ह्यू सन वहा आया । उसने सिपाहियो को मगल पाडेय को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, पर कोई सिपाही आगे न बढा । इतने मे पाडेय ने अपनी बदूक ह्यू सन की ओर तानी । १८५७ की क्राति की प्रथम बदूक गरज उठी और उसने मेजर जनरल की ह्यू सन प्रथम बलि ली ।

सैकडो हिदुस्तानी सिपाही वही खडे तमाशा देख रहे थे । मगल पाडेय के बारबार आवाहन करने पर भी उन्होने उसका साथ नही दिया । न उन्होंने अग्रेज अफसरो की ही सहायता की । आज्ञा मिलने पर भी उन्होने मगल पाडेय को पकडने का प्रयत्न नही किया ।

समाचार मिलते ही एडजुटेट लेफ्टिनेट बाग व सार्जेंट हडसन घटना-स्थल पर आये । उन्हे आते देख मगल पाडेय ने एक तोप की आड़ से उन पर बदूक दागी । गोली लेफ्टिनेट बाग के घोडे को लगी । घोडा और सवार दोनो धरती पर गिर पडे । बाग ने एकदम उठकर मगल पाडेय पर पिस्तौल से गोली चलाई । निशाना चूक गया । तभी मगल पाडेय तलवार लेकर उस पर टूट पडा । हडसन बाग की सहायता के लिए आगे बढा । पाडेय तलवार चलाने मे बडा निपुण था । खून की प्यासी उसकी तलवार दोनो की बलि लिये बिना न रहती, पर इसी समय दोनो अग्रेज अफसरो के सौभाग्य से शेख पलटू नामक एक सिपाही ने मगल पाडेय का हाथ पकड लिया । दोनों घायल अग्रेज वहा से भाग गए ।

उस स्थान पर उपस्थित सिपाही, जो इस घटना को दर्शक के रूप मे देख रहे थे, पलटू पर बिगड़े । उन्होने उसे धिक्कारा तथा मगल पाडेय

को छोड देने के लिए कहा । पलटू घबडा गया । उसने पाडेय को छोड दिया । इस प्रकार सैकडो सिपाहियों मे केवल पलटू ही अग्रेजो की रक्षा करने आगे बढा ।

जनरल हियरसे ने मगल पाडेय का समाचार सुना । उसने अपनी वरदी पहनी । उसके दो पुत्र भी उसके साथ पिस्तौल लेकर बाहर आये । जनरल ने हिदुस्तानी अफसरो से पूछा—"आपने पागल मगल पाडेय को गिरफ्तार क्यों नही किया ?" उन्होने उत्तर दिया—"सिपाहियो ने हमारी आज्ञा नही मानी ।" वह बडे साहस के साथ आगे बढा और उसने सभी उपस्थित अफसरो तथा सिपाहियो को मगल पाडेय को पकडने मे सहायता करने की आज्ञा दी ।

मगल पाडेय ने सिपाहियो से धर्म-युद्ध मे शामिल होने को कहा, पर किसीने भी उसकी सहायता न की । अत मे मंगल पाडेय ने अपनी छाती पर पिस्तौल रखकर घोडा दबा दिया । पाडेय घायल हो गया । बेहोशी की हालत मे उसे अस्पताल भेजा गया । बाद मे उसका कोर्ट मार्शल हुआ । ८ अप्रैल को पलटनों के सामने उसे फासी पर लटका दिया गया । बैरकपुर के सभी जल्लादो ने मगल पाडेय को फासी देने से इन्कार कर दिया । अत मे कलकत्ते से आदमी बुलाये गए, तब कही उसे फासी पर लटकाया जा सका ।

अग्रेज इतिहासकारो ने कहा है कि मगल पाडेय भाग पीता था और उसीके नशे मे उसने यह सब किया । पर वास्तव मे मंगल पाडेय ने जो नशा किया था वह भाग से अधिक तेज था । उसने देश-प्रेम और धर्म-प्रेम का प्याला चढाया था । उसीके नशे मे मतवाला होकर उसने १८५७ की क्राति की वेदी पर अपनी सर्व-प्रथम बलि चढाकर अमरत्व प्राप्त किया ।

लार्ड राबर्ट्स अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'भारत मे इकतालीस वर्ष' (फोरटीवन ईयर्स इन इडिया) मे लिखते है—"इसी दिन से भारत का प्रत्येक सिपाही 'पाडेय' के नाम से पुकारा जाने लगा ।"

अब १६ नबर की पलटन अग्रेजो की कोप-भाजन बनी । उसके शस्त्र

रखवा लिये गए तथा वह भग कर दी गई। पर इस पलटन के सिपाही घर नही लौटे, वे क्राति के प्रचारक बनकर देश-भर मे फैल गए। ये लोग प्रत्येक छावनी मे जाकर सिपाहियो को भावी स्वातत्र्य-सग्राम के लिए तैयार रहने का संदेश देते थे। रात को प्रत्येक छावनी मे गुप्त सभाए होती, ३१ मई को क्या करना चाहिए इसका कार्यक्रम बनता। बैरकपुर की ३४ नबर की पलटन मे इसी प्रकार की एक सभा का हाल अग्रेज अफसरो को मालूम हुआ। उन्होने उस पलटन के सूबेदार का कोर्ट मार्शल किया और उसे फांसी पर लटका दिया। क्राति की वेदी पर यह दूसरी बलि थी। इस सूबेदार के पास कुछ ऐसे कागजात मिले जिनसे ३४ नबर की पलटन की गुप्त योजना पर प्रकाश पडता था। परिणामस्वरूप ३४ नबर की पलटन भी भग कर दी गई।

इसी समय देश-भर मे अग्रेजो के बंगलो मे आग लगना आरभ हुआ। कलकत्ते से अबाला तक अनेक स्थानो पर अग्रेज अफसरो के बगले जलकर राख हो गए। आग लगानेवालो का पता लगाने के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया गया, पर कही भी कोई आग लगानेवाला न पकड़ा गया आग लगानेवालों को पकडने पर हजारो रुपये के इनाम की घोषणा की गई मुख्य सेनापति एनसन ने गवर्नर जनरल को जो पत्र लिखा, वह इस बात स्पष्ट करता है कि अग्रेज इन अग्निकाडो से कितने घबडा गए थे। उस लिखा—"यह वास्तव मे बडे आश्चर्य की बात है कि आग लगानेवाला कोई पकड़ा नही जाता। पूरी सावधानी रखी जा रही है, पर आग लगानेवाले गिरफ्तार नही हो रहे हैं।"

बंगाल की घटनाओं से शिक्षा लेने के बजाय साम्राज्य के मद मे चूर अग्रेजो ने सिपाहियो से और भी अधिक कडाई से व्यवहार करने का निश्चय किया। देश-भर के सैनिको को यह विश्वास हो गया था कि नये कारतूसों मे गाय और सूअर की चरबी लगी है। अग्रेज अफसर ज्यों-ज्यों उनको समझाने का प्रयत्न करते, त्यो-त्यो उनका वह विश्वास और दृढ होता जाता कि अग्रेज उन्हे ईसाई बनाना चाहते है। क्रातिकारियो द्वारा संगठित

समाचार एजेंसी ने यह खबर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला दी । सभी छावनियों के सिपाही चौकन्ने हो गए । सभी लोग अनुभव करने लगे कि उनका धर्म सकट मे है ।

अंग्रेज अधिकारियो ने कहा कि कारतूसो मे ऐसा कोई पदार्थ नहीं लगाया गया है, जिस पर धार्मिक दृष्टि से आक्षेप किया जा सके । तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड केनिंग ने एक घोषणा में कहा—"कारतूसों मे गाय और सूअर की चरबी के प्रयोग की अफवाह बे-बुनियाद है । कुछ बदमाश लोगो ने फौज मे अशाति फैलाने के लिए ही यह किस्सा गढा और फैलाया है ।" अंग्रेज इतिहासकारो का कहना है कि सिपाहियों की यह मूर्खता थी कि उन्होने निराधार अफवाहों पर विश्वास कर विद्रोह कर दिया ।

पर वास्तविक परिस्थिति इसके बिल्कुल विपरीत थी । तत्कालीन अंग्रेजों के लेखो से यह मालूम होता है कि हिंदुस्तानी सिपाहियो की बात ठीक थी । वुलविच रसायनशाला के कैप्टन बाक्सर ने इस कारतूस का परीक्षण कर कहा—"कारतूसों मे किस जानवर की चरबी का प्रयोग किया गया है, यह कहना असभव है, पर इतना निश्चित है कि इसमे सूअर की चरबी नही है ।" यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि गाय की चरबी के संबंध मे उसने कोई बात नही कही ।

'इंडियन म्यूटनी' नामक अपनी पुस्तक मे के ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—"इसमे कोई सदेह नही कि चिकने मसाले के निर्माण मे गाय की चरबी का प्रयोग किया गया है ।"

लार्ड राबर्ट्स, जो उस समय हिंदुस्तान मे था, अपने 'भारत में इकतालीस वर्ष' नामक ग्रथ मे लिखता है—"मि० फारेस्ट द्वारा भारत सरकार के कागजातो के परीक्षण से यह सिद्ध होता है कि कारतूसों के बनाने मे जिस चिकने पदार्थ का प्रयोग किया गया था, उसमे गाय और सूअर की चरबी थी । इन कारतूसो को बनाने मे सिपाहियो की धार्मिक भावना की जो उपेक्षा की गई, उसपर सहसा विश्वास नही होता ।"

'दि मैप ऑफ लाइफ' का लेखक लेकी लिखता है—"इन [illegible]

और पुन: दृष्टि डालने पर अंग्रेज लेखको को लज्जापूर्वक यह स्वीकार करना पडेगा कि हिंदुस्तानी सिपाहियो ने जिन कारणो से विद्रोह किया, उनसे अधिक विद्रोह के लिए उचित कारण हो ही नही सकते थे ।"

अंग्रेज लेखको के उपरोक्त उद्धरणो को पढने के बाद इसमे कोई सदेह नही रह जाता कि कारतूस वास्तव मे धर्म की दृष्टि से आक्षेपजनक थे । हिंदुस्तानी सिपाहियों ने जो बाते कही थी, वे सत्य थी ।

: ७ :

क्रांति का शंखनाद

अंग्रेज अधिकारी समझते थे कि बगाल की घटनाएं कुछ लोगो के भडकाने से ही घटी है । अत. उन्होने बगाल से दूर मेरठ की छावनी मे इन नये कारतूसो का उपयोग कराने का निश्चय किया । बहुत सोच-विचारने के बाद इन्होने मेरठ मे रहनेवाली हिंदुस्तानी घुडसवार सेना को चुना । ६ मई १८५७ को ९० घुडसवारो को आज्ञा दी गई कि वे इन कारतूसो को दात से काटकर इस्तमाल करे । इनमे से ८५ सवारो ने आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया । अंग्रेज अफसरो ने इन्हे बहुत समझाया, धमकिया दी ; पर इन लोगो ने किसी भी कीमत पर धर्मभ्रष्ट होना स्वीकार न किया । ये लोग उसी समय गिरफ्तार कर लिये गए । वही इनका कोर्ट मार्शल हुआ और इन्हे ६ वर्ष से १० वर्ष तक के कठोर कारावास का दड दिया गया । हथकड़ी-बेड़ियों से विभूषित ये 'धर्मवीर' मेरठ के कारावास मे बंद कर दिये गए । सिपाहियो के सामने उनकी वरदी उतारी गई । उनके शस्त्र छीने गए । इस घटना से सभी हिंदुस्तानी सिपाही विचलित हो उठे । क्रोध और दु ख से भरे हृदयो को लेकर वे अपने कैंपो मे आये । शाम को वे नगर मे घूमने गए । वहा स्त्रियो ने उन्हे धिक्कारा और कहा—"तुम्हारे भाई धर्म के लिए जेल गए और तुम यहा मस्ती से घूम रहे हो ! धिक्कार है, तुम्हारी मर्दानगी को ! धिक्कार है तुम्हारे जीवन को !"

स्त्रियो के इन वाग्बाणो ने उनके हृदयो को चलनी बना दिया । क्रोध मे भरे वे कैंप लौटे और साथियों को सारा हाल कह सुनाया । लोग क्रोध और क्षोभ से भर गए । ३१ मई की राह देखना असभव हो गया । उत्तरी भारत मे मेरठ एक प्रमुख छावनी थी । यह मुगल सम्राट पर नजर रखने के लिए स्थापित की गई थी । यहा से दिल्ली केवल ३२ मील दूर है । उपरोक्त घटना के समय मेरठ मे पैदल, घुडसवार तथा तोपखाने की पलटने थी । यहा इस समय १८५० गोरे सिपाही तथा तीन हजार देशी सिपाही थे । तोपखाना अग्रेजो के हाथो मे था ही । ऐसी अवस्था मे यहा अग्रेजों के विरुद्ध क्राति का झडा खडा किया जा सकता है, इसकी किसीको कल्पना तक न थी ।

८५ सिपाहियों को जेल मे ठूसना अन्य सिपाहियो ने अपना अपमान समझा । जिस धर्म की रक्षा के लिए इन लोगो ने साहस के साथ चरबी लगे कारतूसों का उपयोग करने से इन्कार किया, वह धर्म अन्य सिपाहियो को भी प्राणों से प्यारा था । वे भी इस पर अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए उद्यत थे । रात भर गुप्त बैठके हुई । १२ नबर की पलटन को तैयार करने मे काफी समय लगा । अत मे १० मई को प्रात काल क्राति का बिगुल बजाने का निश्चय किया गया ।

क्रांति का परचम लहराया

१० मई को रविवार था । सकेत के अनुसार आस-पास के गावों से अनेक सशस्त्र लोग मेरठ आकर इकट्ठे होने लगे । छावनी मे भी बड़ी चहल-पहल थी । सिपाही अपनी गुप्त सभा मे इस बात पर बहस कर रहे थे कि अग्रेजों का कत्लेआम किया जाय अथवा नही । अत मे २० नबर की पलटन का यह सुझाव कि गिरजाघर मे अग्रेजों के एकत्र होते ही क्राति का झडा खड़ा कर दिया जाय और अग्रेजो को मौत के घाट उतारा जाय, सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ ।

प्रात:काल हुआ । गिरजाघर के घटों के बजने के साथ ही

सिपाही शस्त्र लेकर निकल पडे । घुडसवार पलटन सीधी जेलखाने पहुची । जेल के सभी कर्मचारी क्रातिकारियों के साथी थे ही ! जेल की दीवार तोड दी गई । सभी कैदी मुक्त कर दिये गए । सिपाहियो ने अपने ८५ साथियो को भी स्वतत्र किया । उनकी हथकडी-बेडी काट डाली । आनद से सिपाहियो ने उन्हे गले लगाया। चारो ओर अग्रेजो पर हमला होने लगा। "हरहर महादेव !" "दीन-दीन !" "मारो फिरगी को !" आदि नारों से मेरठ का वायुमडल गूज उठा । अनेक अग्रेज मार डाले गए। तार काट डाले गए। रेल की पटरियो पर क्रातिकारियों का पहरा लग गया । अंग्रेजो के बगले, दफ्तर, होटल आदि जला दिये गए । अग्रेज अपनी रक्षा के लिए इधर-उधर छिप गए । कुछ अग्रेज अपने बावर्चियो की शरण में गए और उनसे अपने प्राणों की भीख मागने लगे । अंग्रेजो के कई नौकरो ने उन्हे पनाह दी । कई अग्रेज अस्तबलों मे जा छिपे । कई नालियो मे ।

११ नबर की पलटन का अफसर कर्नल फिनिश घोडे पर बैठकर क्रातिकारियो के सामने आया और उन्हे डाटने-डपटने लगा । २० नबर की पलटन के एक सिपाही ने अपनी पिस्तौल से उसे यमलोक पहुचा दिया ।

वर्षों से दबी अग्रेजों के प्रति घृणा और प्रतिहिसा की भावना उभर उठी । अग्रेजो के रहने के सभी बगले जला दिये गए । उनमे कई स्त्रिया और बच्चे भी जल गए । अग्रेजो की जो कोठिया पत्थर की थी, वे गिरा दी गई । कमिश्नर ग्रीथड के बगले मे आग लगा दी गई । वह अपने बावर्ची के चरणों पर गिर पडा और रक्षा की भीख मागने लगा । बावर्ची ने उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाकर रखा ।

मेरठ के मुख्य सेनाधिकारी ने इस समय अत्यत कायरता दिखाई । नगर के अग्रेजों की रक्षा का उसने कोई प्रयत्न नही किया । गोरी फौज को उसने परेड के मैदान मे एकत्र किया, पर क्रातिकारी सिपाही दिल्ली रवाना हो चुके थे । इस समय अगर वह चाहता तो गौरी फौज की सहायता से दिल्ली की ओर बढनेवाले क्रातिकारियो को रोक सकता था । पर मेरठ के सभी अग्रेज घबड़ा उठे थे और सोचने की शक्ति उनमे नही रह गई थी ।

१० मई को दिन-भर मेरठ शहर मे भयानक काड होते रहे। जेल-खाना टूटने से अनेक भयकर अपराधी स्वतत्र हो गए। उन्हे खुलकर खेलने के लिए मैदान खाली मिल गया। नगर लूटा गया, मकान जलाये गए। गुंडो ने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया।

११ मई को प्रातःकाल मरे हुए अग्रेजो के शव नाटक-गृह मे एकत्र किये गए। जिन अंग्रेजो की उनके नौकरो तथा अन्य दयालु लोगो ने रक्षा की थी, वे भी धीरे-धीरे परेड के मैदान मे आने लगे। अब अग्रेजो की प्रतिहिसा जगी। तीन-चार हिदुस्तानियो को पकडकर न्याय का ढोग रचकर फासी पर लटका दिया गया। पर सेनाधिकारी ह्यूवेट ने आगे ऐसा करने से रोक दिया। साधारण जनता की आनेवाले सकट से रक्षा हुई।

हम पहले कह चुके है कि नानासाहब, बहादुरशाह, ज़ीनतमहल, जकीखा, अजीमुल्ला आदि क्राति के नेताओ ने ३१ मई का दिन क्राति के प्रथम शखनाद के लिए निश्चित किया था। मई-जून के महीने इस देश मे बडी गरमी के महीने होते है। अग्रेजो को यह गरमी बहुत सताती है। इन्ही महीनो के बाद वर्षा-ऋतु आरभ हो जाती है। चारो ओर के रास्ते बद हो जाते है। ऐसे समय मे क्राति को दबाना अग्रेजो के लिए कठिन हो जाता। इस तिथि के निश्चय से क्राति के नेताओ की बुद्धिमानी, दूरदर्शिता तथा सूझ-बूझ का पता चलता है।

अगर क्राति का आरभ ३१ मई की मध्य रात्रि को, जैसाकि निश्चय किया गया था, सब जगह एक साथ होता, तो ब्रिटिश साम्राज्य इस देश से सौ वर्ष पूर्व ही उठ गया होता।

मेरठ की देशभक्त स्त्रियों ने मेरठ के सिपाहियो पर ताने कसकर अपने देशप्रेम का परिचय भले ही दिया हो, पर इससे क्राति को बहुत हानि पहुची। ह्वाइट नामक अग्रेज इतिहासकार लिखता है—"मेरठ का अत्यंत सकटपूर्ण विद्रोह हमारे लिए एक बात मे बहुत-ही उपकारक सिद्ध हुआ। ३१ मई १८५७—रविवार—की निश्चित तिथि के पूर्व यह विस्फोट हो गया, इससे पूर्व निश्चित योजना गड़बड़ी मे पड गई।"

जे० सी० विल्सन अपनी सरकारी रिपोर्ट मे लिखता है—"बाजार की अबलाओ ने ३१ मई १८५७ को सारे देश मे एक साथ होनेवाले हत्याकाड से हमारी रक्षा की। बारूद बिछा दिया गया था। तीन सप्ताह बाद इसमे पलीता लगाया जानेवाला था। पर स्त्रियो के मुख से निकलनेवाली चिनगारी ने इसमे आग लगा दी। १० मई को जो घटनाए घटी, वे ब्रिटिश शासन-काल की अभूतपूर्व घटनाए थी।"

अगर कही योजनानुसार सारे हिंदुस्तान मे एक ही समय क्राति आरंभ होती तो अंग्रेजो का क्या होता, यह ईश्वर ही जाने। उस समय हिंदुस्तान मे कुल २३ हजार गोरी पलटन थी। एक साथ ही सब जगह अगर युद्ध की ज्वाला फूट निकलती तो इतनी-सी फौज कहा-कहा जाती? एक बार क्राति के आरभ होने पर फिर उसका सामना करना अंग्रेजों के लिए असंभव हो जाता, पर हिंदुस्तान के भाग्य मे अभी गुलामी के कुछ और वर्ष लिखे थे। उसे कौन मेट सकता था!

दो हजार क्रातिकारियो की सेना १० मई को मेरठ से दिल्ली की ओर चली। ११ मई को प्रातःकाल वह दिल्ली पहुची। रात-भर मे उन्होंने बत्तीस मील की मजिल तय की।

दिल्ली की विजय

मंगल पाडेय के बलिदान का समाचार आते ही दिल्ली के सिपाही भी भडक उठे। अंग्रेजो पर आक्रमण करने के लिए उनके भुज-दड फडकने लगे। दिल्ली के क्रातिकारी नेताओ ने बडी चतुराई से इनको काबू मे रखने का प्रयत्न किया।

मेरठ के क्रातिकारी नेताओ ने मेरठ से दिल्ली आने तथा पहले ही आक्रमण में दिल्ली को जीत लेने की जो योजना बनाई, वह उनके सगठन-चातुर्य की परिचायक थी। मेरठ में आक्रमण आरभ होते ही सिपाहियों ने सब तार काट डाले। इससे मेरठ की घटनाओं के समाचार दिल्ली के अंग्रजों के पास पहुच ही न सके। दिल्ली के क्रातिकारी केंद्र मे मेरठ-केंद्र का

समाचार आ गया था—"कल हम लोग आ रहे है, आवश्यक तैयारिया कर लो ।"

दो हजार सिपाही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर 'दिल्ली चलो' का नारा लगाते हुए हिंदुस्तान की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए बढ रहे थे । स्वतंत्रता के ये मतवाले सिपाही रात-भर चलते रहे । प्रात यमुना के किनारे पहुचे । सामने लाल किला दिखाई दे रहा था । पुल पार करते ही उन्हे अग्रेज अधिकारी टॉड दिखाई दिया । मेरठ की तार की लाइन बिगड जाने से वह उसका निरीक्षण करने निकला था । सिपाहियो ने दिल्ली की क्राति की वेदी पर इसीका सर्व-प्रथम बलिदान चढाया ।

सिपाही आगे बढे । लाल किले के सामने वे एकत्र हुए और मुगल बादशाह का जय-जयकार करने लगे । लाल किले मे हलचल मच गई । दीवाने-खास मे किले के रक्षक डगलस को बुलाया गया । डगलस ने कहा कि मै नीचे जाकर विद्रोहियो को वापस जाने की आज्ञा देता हू, पर बादशाह ने उसे नीचे जाने की आज्ञा नही दी । दिल्ली के अग्रेज अफसर आनेवाले सकट से बिल्कुल अनभिज्ञ थे ।

इस समय दिल्ली मे कोई गोरी फौज न थी । ३८, ५४ और ७४ नबर की हिंदुस्तानी फौज थी । तोपखाने मे एकसौ साठ गोलदाज थे । कुल मिलाकर साढे तीन हजार सिपाही दिल्ली मे थे ।

दिल्ली मे अग्रेज अफसरो को जब इन घटनाओ का समाचार मिला, तो उन्होने सेना को परेड के मैदान मे इकट्ठा किया । अग्रेज अफसरो ने स्वामि-भक्ति की महत्ता पर भाषण दिया । हिंदुस्तानी सिपाही शातिपूर्वक सुन रहे थे । ५४ नबर की पलटन के अफसर कर्नल रिप्ले ने अपनी सेना को मेरठ के विद्रोही सिपाहियो पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने को कहा । सिपाहियो ने कर्नल से कहा—"जरा हमे उन सिपाहियो के दर्शन तो कराओ, फिर हम देखेगे ।" कर्नल ने उनकी स्वाभिमक्ति की प्रशसा की और उनकी पीठ ठोंकी । पर वह बेचारा क्या जानता था कि उसकी सारी सेना क्रांतिकारियो से पहले ही मिल चुकी है ! मेरठ के घुडसवारो

के सामने आते ही ५४ नबर की पलटन ने उनका अभिवादन किया। "अग्रेजी राज्य को मिटा दो !" "मुगल सम्राट की जय !", "फिरगियो को मारो !"—आदि नारो से दोनो सेनाओ ने दिल्ली के वायुमडल को गुजा दिया। कर्नल रिप्ले यह देखकर बौखला उठा। उसने कहा—"यह सब क्या है ?" पर उसका वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि सिपाहियो की गोलियो से उसकी देह चलनी हो गई।

मेरठ के सिपाही दो भागो मे विभक्त हो गए थे। एक भाग राजघाट की ओर के दरवाजे से और दूसरा कलकत्ता दरवाजे से लाल किले मे घुसने का प्रयत्न कर रहा था। इस समय ३८ नबर की सेना लाल किले की रक्षा कर रही थी। उसने क्रातिकारियो के लिए दोनो ही फाटक खोल दिये। मेरठ के मतवाले सिपाही लाल किले मे "दीन-दीन" की आवाज करते हुए घुस पडे। जो अग्रेज सामने आता था, उसे वे मौत के घाट उतारते जाते थे। कलकत्ता दरवाजे के भीतर घुसते ही मेरठ के सैनिक दरियागज की ओर मुडे। यहा अग्रेजों के बगले थे। सब बगलो मे आग लगा दी गई। जो अग्रेज आग से बचने के लिए बगले के बाहर निकले, वे तलवार से उडा दिये गए।

लाल किले मे घुसते ही मेरठ के सैनिकों ने मुगल सम्राट को २१ तोपो की सलामी दी और उसका जय-जयकार किया। दीवाने खास और दीवाने-आम को इन सैनिकों ने अपनी छावनी बनाया। लाल किले में जितने अंग्रेज थे, वे सब मार डाले गए।

लाल किले मे मेरठ के नेताओं, बादशाह, बेगम तथा दिल्ली के क्राति-कारी नेताओं की एक बैठक हुई। उसमे सारी परिस्थिति पर विचार किया गया। अत मे सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि ३१ मई तक रुकना अब असभव है। इन नेताओ ने बादशाह से प्रार्थना की कि वह इस क्राति का नेतृत्व ग्रहण करे। बादशाह जानता था कि क्राति की असफलता का अर्थ है अग्रेजो की गुलामी। गुलाम बनकर जीवित रहने के बजाय उसने देश को स्वतत्र करने के प्रयत्न मे प्राण दे देना अधिक अच्छा समझा।

पर उसने सिपाहियो से कहा—"मेरे पास आपको तनखा देने के लिए पैसा नही है ।"

देश का क्रातिकारी निश्चय उन सिपाहियो के मुह से निकला—"मुल्क-भर के अंग्रेजों के खजानो को लूटकर हम आपके कदमो मे डाल देगे ।"

बादशाह ने क्रातिकारियो के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथो मे ली । सहस्रो कठो ने "मुगल सम्राट की जय !" का नारा लगाकर स्वतन्त्रता की घोषणा की ।

इस समय दिल्ली शहर मे अनेक घटनाए तीव्र गति से घटित हो रही थी । एक शताब्दी के अन्याय का परिशोध अपने भयकर रूप मे दिल्ली मे ताडव कर रहा था । दिल्ली के नागरिक जिसे जो मिला, वही शस्त्र लेकर घर से निकल पडे । जो अग्रेज मिलता था, वह सीधे यमलोक रवाना कर दिया जाता था । क्रातिकारी नेताओं ने नागरिको की टोलिया बनाकर शहर मे घूमना आरभ किया। ऐसा प्रकट होता था, मानो उन्होने दिल्ली से अग्रेजो का नामोनिशान मिटाने का निश्चय कर लिया है । ११ मई को बारह बजे दिल्ली का बैक घेर लिया गया । बैक के मैनेजर बार्सफोर्ड और उसके कुटुंब को मार डाला गया । बैक नष्ट कर दिया गया ।

इसके बाद भीड ने 'दिल्ली गजट' पत्र के कार्यालय की ओर कूच किया । प्रेस मे मेरठ की घटनाओ के समाचार कपोज किये जा रहे थे । इस कार्यालय मे जितने ईसाई थे, वे सब मार डाले गए । टाइप और मशीने तोड डाली गई । पास का गिरजाघर भी नही बचा । उसे भी नष्ट कर दिया गया ।

शस्त्रागार की ओर अगर क्रातिकारियो की नजर न जाती तो वास्तव मे आश्चर्य की बात होती । शस्त्रागार किले के पास ही एक मजबूत इमारत मे था । शस्त्रागार का रक्षक जार्ज विलोबी नाम का अफसर था । इस समय शस्त्रागार मे खूब रण-सामग्री भरी थी । नौ लाख कारतूस, दस हजार बंदूके और विस्फोटक पदार्थो का विराट भडार था । क्रातिकारी सैनिको ने अपनी शक्ति इस शस्त्रागार पर अधिकार करने मे लगा दी । पहले

विलोबी के पास मुगल सम्राट के नाम से यह सदेश भेजा गया कि वह आत्म-समर्पण कर दे। पर विलोबी बहादुर और कर्त्तव्यनिष्ठ अफसर था। उसने सदेश का कोई उत्तर न दिया। सिपाहियो ने शस्त्रागार घेरना शुरू किया और धीरे-धीरे उसके पास आने लगे। कुछ लोगो ने दीवार फादने का भी प्रयत्न किया। जब विलोबी ने देखा कि शस्त्रागार का बचाना असभव है, तो उसने एक गभीर निश्चय किया। वह जानता था कि इतनी बडी रण-सामग्री अगर क्रातिकारियो को मिल गई तो अग्रेजो के लिए भयकर सिद्ध होगी। स्कली नामक एक बहादुर अग्रेज उसका सहायक था। विलोबी ने उसे शस्त्रागार मे आग लगाने की आज्ञा दी। बहादुर स्कली ने ऐसा ही किया। भयकर विस्फोट हुआ। विलोबी और स्कली के शरीर के टुकडे-टुकडे होकर न मालूम कहा बिखर गए। सारा नगर हिल उठा। शस्त्रागार के आसपास के मकान भी चकनाचूर हो गए। इस विस्फोट ने एक हजार क्रातिकारियो तथा प्राय: इतने ही दिल्ली के नागरिको की बलि ली।

इस तरह से शस्त्रागार नष्ट हो गया। लेकिन फिर भी क्रातिकारियो के हाथ काफी शस्त्र लगे। प्रत्येक सिपाही को चार-चार बदूके दी गई।

११ मई से १६ मई तक दिल्ली मे भयकर काड होते रहे। सभी पलटने विद्रोही बन गई थी। सभी अग्रेज अफसर मार डाले गए थे। जो कुछ बचे थे, वे काश्मीरी दरवाजे के भीतर मेनगार्ड नामक भवन मे इकट्ठे होकर आत्म-रक्षा कर रहे थे। इनमे स्त्रिया भी थी। शस्त्रागार के विस्फोट के बाद लोग उधर गए! अब इनका बचना असभव दिखाई देता था। अत मे ३० फुट गहरी खाई मे ये उतरे तथा किसी प्रकार खदक से बाहर आकर जगल मे भाग खडे हुए। इनमे से कई लोगो को गाव-वालो ने बडी सहायता दी। कई भारतीयो ने इन्हे शरण दी। कुछ अंग्रेज भागते-छिपते मेरठ पहुँचे और कुछ अबाले। कई अग्रेजो ने अपने मुह पर कालिख पोत ली ताकि वे हिदुस्तानी दिखाई दे। कुछ फकीर बन गए। कुछ साधू। इस प्रकार इन लोगों ने अपनी रक्षा की। लाल किले का यूनियन जैक फाडकर फेक दिया गया। उसके स्थान पर मुगल सम्राट

का हरा झडा फहराने लगा। सारी दिल्ली पर बादशाह का अधिकार हो गया। इसके बाद बादशाह ने एक कडी आज्ञा निकाली कि कोई किसी अग्रेज को न मारे। इस प्रकार कई अग्रेजो की जीवन-रक्षा हुई।

दिल्ली की विजय की खबर सारे देश मे फैल गई। स्थान-स्थान पर आनद मनाया गया। देश-भर के क्रातिकारियो को इससे स्फूर्ति प्राप्त हुई।

: ८ :

प्रतिकार का संगठन

केनिंग की योजनाएं

मेरठ के सिपाहियो ने निश्चित तिथि के तीन सप्ताह पूर्व क्राति का शंखनाद किया था। दिल्ली की स्वातत्र्य-घोषणा ने इस सघर्ष को राष्ट्रीय रूप प्रदान किया। मुगल सम्राट अग्रेजो के अकुश से मुक्त होकर पुन. स्वतत्रतापूर्वक शासन करने लगा। उसके फरमान सारे हिदुस्तान मे प्रसारित होते थे, जिनमे लोगो को फिरगियो को देश से निकाल बाहर करने के आदेश रहते थे। मुगल सम्राट के फरमानो को देश मे बडी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। लोगो पर उनका प्रभाव पडता था। उनसे उन्हे स्फूर्ति प्राप्त होती थी। दिल्ली की स्वतत्रता के साथ ही लोगो की आखों के सामने मुगल साम्राज्य के महान वैभव के दिनो का चित्र घूम जाता था।

१० और ११ मई को जो घटनाए हुईं, उन्हे देखते हुए यह कहना पडता है कि अगर योजनानुसार सघर्ष का आरभ सब जगह एक साथ ३१ मई को हुआ होता, तो यह निश्चित-सा था कि एक दिन मे सारा देश अग्रेजो के चगुल से मुक्त हो जाता। दिल्ली और मेरठ मे जिस आसानी और शीघ्रता से क्रातिकारियों को सफलता प्राप्त हुई, उससे यह बात और भी सत्य प्रतीत होती है।

लेकिन देश के क्रातिकारी नेताओ ने जब मेरठ और दिल्ली की घट-

नाओ के समाचार सुने तो वे किकर्त्तव्यविमूढ हो गए। वे यह तय न कर सके कि उन्हे इसी समय उठ खडे होना चाहिए अथवा निश्चित तिथि की राह देखनी चाहिए। यही अनिश्चितता क्रातिकारियो के लिए घातक सिद्ध हुई।

इन घटनाओ से सारे देश के अग्रेज बहुत ही घबडा गए। वे इतने आतंकित हो गए कि उन्हे चारो ओर सकट-ही-सकट दिखाई देने लगा। अग्रेजो की राजधानी कलकत्ते मे भय छाया हुआ था। बार-बार यह अफवाह फैलती कि बैरकपुर की हिदुस्तानी सेनाए कलकत्ते की ओर आ रही हैं। फिर क्या था ? अंग्रेजो मे भगदड मच जाती। अग्रेज स्त्री-पुरुष और बालक सभी भागते हुए फोर्ट विलियम पहुचते। यहा के कुछ अग्रेजो ने जहाज मिलते ही इग्लैड रवाना होने मे ही अपनी भलाई समझी। बाकी अपना सामान बाधकर जहाज की राह देख रहे थे। कुछ लोग अपने काम छोडकर दफ्तर मे सुरक्षित जगह छिपने का प्रयत्न करते।

शिमला मे भी यही हालत थी। एकाएक समाचार फैला कि गुरखो की नाजिरी पलटन ने विद्रोह कर दिया है और वह अग्रेजो पर हमला करने आ रही है। अग्रेजो के दिल दहल उठे। अंग्रेज स्त्री, पुरुष और बच्चे जिधर रास्ता मिला,उधर भाग खडे हुए। अग्रेज पुरुषो ने बच्चो और स्त्रियो तक को पीछे छोड दिया। जब गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति के रहने के स्थान पर यह अवस्था थी तो अन्य स्थानो का तो कहना ही क्या !

इन घटनाओ ने सघर्ष के नेताओ तथा अग्रेज शासको दोनों को चक्कर मे डाल दिया। दोनो के लिए ये घटनाएं अनपेक्षित थी। देश मे पूरी तरह क्राति की योजना बन चुकी थी। प्रत्येक हिदुस्तानी सेना मे दो-तीन व्यक्तियों की समितिया बन गई थी। उनकी आज्ञा का पालन करने का सब सिपाहियों को आदेश था। क्राति का झडा ऊचा करने की तिथि भी निश्चित हो चुकी थी।

१५ मई को गवर्नर जनरल लार्ड केनिग के पास मेरठ तथा दिल्ली की घटनाओं का समाचार आया। यह समाचार इतना अनपेक्षित था कि

इससे सभी अग्रेज चौक पडे । लार्ड केनिग ने अंग्रेजी राज्य को उलट देने के इस प्रयत्न को निष्फल बनाने की योजना बनाना आरभ किया । उस समय उसे चारो ओर शासन की निर्बलता तथा अव्यवस्था दृष्टिगोचर हुई ।

लार्ड डलहौजी ने अपनी कार्य-काल मे अग्रेजी राज्य का विस्तार बडी तेजी से किया, पर इन नये भू-भागो के शासन मे स्थिरता नही आ पाई थी । दृढता और सगठन का चारो ओर अभाव था । शासन अत्यत निर्बल था ।

इस समय हिदुस्तान मे कुल मिलाकर दो लाख अड़तीस हजार सिपाही थे । इनमे से केवल अठारह हजार गोरे थे । इस प्रकार हिदुस्तानी फौज गोरे सिपाहियो से सख्या मे पचगुनी थी । बैरकपुर से लेकर आगरे तक केवल एक स्थान—दानापुर—मे गोरी फौज थी । ७५० मील की व्यवस्था रखने के लिए यह फौज अत्यत अपर्याप्त थी । यही क्षेत्र अशाति का केद्र बना हुआ था । ग्राड ट्रक रोड भी इसी भाग से जाती थी । यह मार्ग सैनिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण था । इस प्रकार उत्तर भारत मे अग्रेजों की हालत बडी चिताजनक थी ।

लार्ड केनिग देश की परिस्थिति से अनभिज्ञ अवश्य था, पर वह बडा बुद्धिमान और चतुर था । उसने अनुभव किया कि उसके साथियो ने उसे धोखे मे रखा है । मेरठ तथा दिल्ली की भयकर घटनाओ के समाचार आते ही उसकी कार्य-कुशलता, व्यवहार-पटुता और वास्तविकता को समझने की बुद्धि जागृत हुई । वह इस सकट का सामना करने के लिए कमर कस-कर तैयार हो गया ।

इस समय देश मे तरह-तरह की अफवाहे फैली हुई थी । कोई कहता था कि आटे मे गाय और सूअर की हड्डी पीसकर मिलाई गई है । कोई कहता था कि जिन तालाबो से लोग पानी पीते है, उनमे गाय और सूअर की हड्डिया डाली जानेवाली है ताकि लोग धर्म-भ्रष्ट हो जाय । इस तरह के अनेक समाचारो से देश का वायुमंडल क्षुब्ध होता जा रहा था ।

लार्ड केनिग ने २० मई को एक घोषणा-पत्र निकाला, जिसमे उसने कहा—"यह समाचार नितात असत्य है कि सरकार जनता अथवा सिपाहियो की जाति एव धर्म खुले अथवा गुप्त रूप से भ्रष्ट करना चाहती है। आज-तक उसने अपनी प्रजा को कभी धोखा नही दिया है।" इस घोषणा के अत मे सिपाहियो तथा जनता से कहा गया था कि "वे षडयन्त्रकारी विद्रोहियो द्वारा फैलाई गई इन राजद्रोहपूर्ण असत्य बातो पर विश्वास न करे। विद्रोही लोग भले आदमियो को विनाश की ओर ले जाना चाहते है।" पर परिस्थिति शब्दो का प्रभाव पडने योग्य नही रह गई थी—कोई सुनने को तैयार नही था।

केनिग भी जानता था कि हालत इतनी गभीर हो गई है कि केवल नैतिक अपील से काम नही चल सकता। उसने शीघ्रतापूर्वक अन्य उपायो का अवलबन करना आरभ किया।

विभिन्न छावनियो मे देशी सिपाही जिम्मेदारी के पदो से हटा दिये गए। महत्वपूर्ण स्थानो पर, शस्त्रागारों पर, खजानों पर गोरो के पहरे लग गए। हिदुस्तानी सिपाहियो के व्यवहार पर बडी कडी दृष्टि रखी जाने लगी और उनकी गति-विधि और आपसी बातचीत की पूरी रिपोर्ट की जाने लगी।

स्वामिभक्त सिपाहियो को तत्काल इनाम देने की तथा राजद्रोही सैनिको को तत्काल दड देने की केनिग ने व्यवस्था की। उसने स्थानीय अफसरो को यह अधिकार प्रदान किया कि वे सरकार के प्रति ईमानदार रहनेवाले सैनिकों को तत्काल इनाम दे। साथ ही उसने एक कानून पास करके कमाडिग अफसरो को अधिकार दिया कि वे विद्रोही सैनिकों का वही कार्ट मार्शल कर दड दे। इसके लिए ऊपर से आज्ञा प्राप्त करने की आवश्यकता नही रही।

इसी समय केंनिग ने ईस्ट इडिया कपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के अध्यक्ष के नाम जो पत्र भेजा, उसमे उसने लिखा—"इस समय मै दो कार्य करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा रहा हूं। एक तो जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी दिल्ली से विद्रोहियो को निकालकर बाहर करना; और दूसरे

अशातिग्रस्त क्षेत्रों मे भेजने के लिए यूरोपियनों को एकत्र करना ।"

वह जानता था कि दिल्ली भारतीय जनता की दृष्टि में अत्यत महत्व रखती है । भले ही अग्रेजों ने कलकत्ते को अपनी राजधानी बना लिया था, पर अब भी लोगों की दृष्टि मे दिल्ली को जो मान प्राप्त था, वह कलकत्ते को नही था । सदियो से दिल्ली इस देश का केंद्र थी और सत्ता का उद्गम-स्थान । केनिग ने बडी दूरदर्शिता से सोचा कि अगर दिल्ली अधिक दिन तक विद्रोहियो के हाथो मे रही तो इस देश के लोगों की दृष्टि मे अग्रेजों की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी । इसीलिए उसने सेनापतियो को दिल्ली पर आक्रमण कर उसे वापस लेने की आज्ञा दी ।

लार्ड केनिग ने गौरी फौज को एकत्र करने की आवश्यकता को भी समझा । अंग्रेजों के सौभाग्य से इसी समय अग्रेजो और ईरान मे होनेवाला युद्ध समाप्त हो गया । केनिग ने बबई प्रात के गवर्नर लार्ड एलफिस्टन को ईरान से लौटी हुई गोरी पलटन को शीघ्र भेजने का तार दिया । ब्रह्मदेश से ८४ नबर की जो गोरी पलटन कलकत्ता आई थी, उसे वापस नही भेजा गया । मद्रास प्रात से गोरी पलटने बुलाई गईं । एक फौज इग्लैड से चीन जा रही थी, उसे भी लार्ड केनिग ने हिदुस्तान ही बुला लिया । इस प्रकार संकट-काल मे भी बिना घबराये, निश्चित गति से विद्रोह का दमन करने की केनिग ने जो योजना बनाई, वह उसकी बुद्धिमत्ता, राजनीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता की परिचायक है । पर कलकत्ते के अग्रेज व्यापारी केंनिग के कार्यों से सतुष्ट न थे । उन्होने केंनिग को सलाह दी कि सभी देशी सेनाओं के हथियार रखवा लिये जाय । जिन लोगो पर जरा भी सदेह हो, उन्हे शीघ्र-से-शीघ्र फासी पर लटका दिया जाय । विद्रोह का ज़रा भी आभास मिलते ही मार्शल लॉ घोषित कर दिया जाय । पर केनिग बुद्धिमान था । वह जानता था कि विद्रोह को दबाने के लिए केवल यही उपाय नही है, वह तो इससे भी कही अधिक प्रभावशाली योजना को पूरा करने मे लगा हुआ था । लेकिन कलकत्ते के व्यापारी उसे कायर, दुर्बल आदि विशेषणों से विभूषित करते थे ।

लार्ड केनिग उत्सुकतापूर्वक एक ओर अशाति के क्षेत्रो से आनेवाले समाचारों की राह देखता था ताकि वह प्रभावपूर्ण ढग से अपने नियोजित कार्यक्रम को आरभ कर दे, दूसरी ओर वह गोरी फौज के आने की उत्सुकता-पूर्वक राह देख रहा था। इस प्रकार उसने विद्रोह-दमन की पूर्ण तैयारी कर ली।

दिल्ली पर आक्रमण

इस समय लार्ड एनसन हिंदुस्तान के प्रधान सेनापति के पद पर काम कर रहा था। जिस समय मेरठ और दिल्ली मे विद्रोह हो रहा था, एनसन-साहब शिमला के शैल-शिखर पर ठंडी हवा का आनद ले रहे थे! १२ मई को उसे इन घटनाओं का पता चला। उसने मसूरी से एक पलटन अबाला भेजी। सिरपुर की गुरखा पलटन को मेरठ पहुचने की आज्ञा दी गई। खुद वह १४ मई को अबाला पहुचा।

अबाला की सेना मे भी असतोष की आग भडक चुकी थी। उसमे भी हलचल आरभ हो गई थी। पजाब के चीफ कमिश्नर सर जॉन लारेंस ने एनसन को सलाह दी कि देशी पलटनो के हथियार रखवाले, पर प्रधान सेनापति ने यह सलाह स्वीकार नही की।

एनसन के सौभाग्य से उसे सतलज प्रात के मुख्य कमिश्नर जार्ज वारनेस के रूप मे एक अत्यंत योग्य और साहसी सहायक प्राप्त हो गया। वह हिंदुस्तानी फौज और पुलिस पर बिल्कुल विश्वास नही करता था। अतएव उसने अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए सिखों पर निर्भर रहना अधिक उचित समझा। अबाला भौगौलिक और सैनिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। देश के अन्य भागो को पजाब से मिलानेवाला मार्ग इसी नगर से होकर जाता है। एक प्रकार से इसे पजाब का द्वार ही कहना चाहिए। दिल्ली निकट होने के कारण भी इसका उस समय अत्यंत महत्व था। वारनेस ने इस नगर की रक्षा का विशेष प्रबध किया। वह जानता था कि अगर यह नगर क्रांति-कारियों के हाथों मे पहुच गया तो अंग्रेजो के हित की दृष्टि से यह अत्यंत

घातक होगा । उसने सिखो की एक विशेष पुलिस बनाई और उसे नगर की रक्षा का भार सौपा । वारनेस ने पटियाला, जिद और नाभा आदि सिख रियासतो के शासको से सहायता मागी । सिख शासक अपनी-अपनी सेना लेकर अंग्रेजो की सहायतार्थ आ पहुचे ।

केनिग बार-बार एनसन से दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए जोर दे रहा था, पर एनसन अभी दिल्ली की ओर बढने मे हिचकिचा रहा था । वह समझता था कि इतनी थोडी सेना के बल पर दिल्ली पर विजय करना कठिन है । पर चारो ओर से दवाव पडने पर उसने २५ मई को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए अबाला से फौजे रवाना कर दी ।

रास्ते में करनाल नामक स्थान पर मुख्य सेनापति एनसन को एकाएक हैजा हो गया, जिससे वही उसकी मृत्यु हो गई ।

२७ मार्च को सर हैनरी बरनार्ड ने प्रधान सेनापति-पद का भार सभाला । इसीके नेतृत्व मे अब अग्रेजी सेना दिल्ली पर आक्रमण करने आगे बढी । अंबाला से दिल्ली तक मार्शल ला घोषित कर दिया गया । रास्ते मे जो कोई भी मिलता, वह पकड लिया जाता । सैनिक अदालत मे मुकदमे होते । वे या तो फासी पर लटकाये जाते या तोप से उडा दिये जाते । मेरठ और दिल्ली मे मारे गए मुट्ठी-भर अग्रेजो का बदला सैकड़ो-हजारो निरपराध लोगो को अकथनीय पाशविकता से मौत के घाट उतारकर लिया जा रहा था ।

एनसन को अग्रेज इतिहासकारो ने एक अयोग्य सेनापति के रूप मे चित्रित किया है । दिल्ली पर यूनियन जैक के स्थान पर मुगल सम्राट का हरा झंडा फहरते ही देश-भर के सभी अग्रेज अफसर बौखला उठे थे । अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए दिल्ली पर पुन: शीघ्र-से-शीघ्र अधिकारी करना वे आवश्यक मानते थे । लार्ड केनिग और पंजाब के मुख्य अधिकार सर जॉन लारेंस बार-बार एनसन से दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए कहते थे । वे सोचते थे कि दिल्ली के सामने अंग्रेजी फौज पहुंचते ही क्राति-कारियो की शक्ति ताश के महल की तरह लडखड़ा जायगी । दिल्ली पर

अधिकार करना वे सरल समझते थे। पर एनमन क्रातिकारियो की शक्ति से परिचित था। वह पूरी तरह मे तैयारी किये बिना दिल्ली की ओर बढना उचित नही समझता था। केनिग समझता था कि मई के समाप्त होने के पूर्व ही दिल्ली पर पुन कब्जा किया जा सकता है। हिदुस्तान के सर्वोच्च शासक का यह अज्ञान वास्तव मे दयनीय था। भावी घटनाए इसकी सच्चाई प्रमाणित करती है।

दिल्ली पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करने के लिए चारो ओर से सेना एकत्र की जाने लगी। मेरठ की निष्क्रिय गोरी फौज को आज्ञा दी गई कि वह दिल्ली की ओर बढे। रुडकी से भी फौज बुलाई गई। वहा से मेजर फ्रेजर के नेतृत्व मे ५०० सिपाहियो की सेना मेरठ आई। फ्रेजर ने उन्हे विश्वास दिलाया था कि उसके प्रति किसी प्रकार का अविश्वास नही किया जायगा। उनके शस्त्र तथा गोला-बारूद उनके साथ रहेगे। पर मेरठ पहुचते ही इन वचनो को भुला दिया गया। बारूद उनके पास रखना ठीक नही समझा गया। इसलिए गाडियो पर लादकर बारूद हटाई जाने लगी। इससे सिपाहियो का आत्माभिमान जाग उठा। एक जिम्मेदार अग्रेज अफसर द्वारा किये गए विश्वासघात को वे सहन न कर सके। उन्होने बारूद से लदी गाडियो को रोका और विद्रोह कर दिया। एक सिपाही ने मेजर फ्रेजर पर गोली छोडी जो उसकी छाती से आर-पार हो गई। मेजर मैसल पर भी गोली चलाई गई, पर वह किसी प्रकार बच गया। इसके उपरात विद्रोही सिपाही दिल्ली की ओर रवाना हुए। गोरी फौज ने उनका पीछा किया। केवल ५० सिपाही मिले, वे सभी मार डाले गए।

१० मई की घटनाओ का मेरठ की गोरी फौज पर इतना असर पडा था कि उसके हाथ-पाव ढीले पड गए। उसमे न सोचने की शक्ति रह गई, न कुछ करने की। परेड के मैदान मे एकत्र होकर वह धडकते हृदय से भावी घटनाओ की राह देखने लगी। मेरठ के लोग समझने लगे थे कि वहा की गोरी फौज १० मई को ही समाप्त की जा चुकी है। २७ मई को मेरठ के सैनाधिकारी को प्रधान सेनापति की आज्ञा मिली कि वह अपनी सेना के साथ

दिल्ली पर आक्रमण करनेवाली सेना से जा मिले। इससे उसमे पुन. सक्रियता आई। वह दिल्ली की ओर रवाना हुई। दिल्ली की क्रातिकारी सेना ने सोचा कि इन दोनो सेनाओ का मिलने देना उचित नही। अत: उन्होने हिडौन नदी के किनारे मेरठ मे आनेवाली फौज को रोकने का प्रयत्न किया। पर इस लडाई मे गोरी फौज को विजय प्राप्त हुई। क्रातिकारियो की ५ तोपे भी उनके हाथ लगी। लेकिन इन तोपो पर अग्रेजो का अधिकार होने के पूर्व ही एक सिपाही ने अपनी वीरता और कर्त्तव्यनिष्ठा का जो परिचय दिया, वह बडा ही प्रशसनीय था। जब अग्रेज अफसर इन तोपो को घेरकर खड़े हो गए तो उसने जान-बूझकर बारूद मे गोली चला दी। एक भयकर धडाका हुआ। इससे कैप्टन एड्रूज़ तथा उसके अनेक साथी जल गए। अनेक अग्रेज घायल हो गए। इस वीर सिपाही का शरीर भी टुकड़े-टुकडे हो गया। इतिहास उसका नाम भी नही जानता, पर उसका वीरतापूर्ण कार्य अमर है। एक विदेशी लेखक के शब्दो मे "इस घटना से हमने जाना कि विद्रोहियो के पक्ष मे भी बहादुर और साहसी लोग है जो अपने राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए आत्म-बलिदान करने के लिए सदा तत्पर रहते है।"

हारे हुए सिपाही जब दिल्ली पहुचे तो चारो ओर से उनपर धिक्कारो की बौछार होने लगी। दूसरे दिन नये जोश और उमग से उन्होने पिछले दिन का बदला लेने का निश्चय किया। ३१ मई की लड़ाई मे क्राति-कारियो की सेना ने अग्रेजो के छक्के छुडा दिये। उस दिन उनकी गोलंदाजी इतनी अचूक रही कि अग्रेज लाख प्रयत्न करने पर भी आगे न बढ सके। लेकिन दूसरे दिन जनरल रीड के नेतृत्व मे एक गुरखा पलटन वहा आ पहुची। उसके आते ही युद्ध की हवा बदल गई। अब अंग्रेजो का पलड़ा भारी हो गया। ७ जून को दोनो अंग्रेजी फौजो का मिलन हो गया।

बुंदेल की सराय मे अग्रेजी फौजो तथा क्रातिकारी सेना का पुन: सामना हुआ। अग्रेजी सेना मे योग्य अफसर थे, युद्ध का अच्छा सामान था। उसमे ताजा दमवाले सैनिक थे और थी बदला लेने की तीव्र भावना। इसके

विपरीत क्रातिकारी सेना का सेनापति शहजादा था, जिसने प्रथम बार ही युद्ध देखा था। उसकी सेना मे शिक्षित सैनिको की सख्या कम थी, हुल्लडबाज अधिक थे। साथ ही वे अग्रेजो की सेना मे अपने देशभाइयो—गुरखो तथा सिखो—को देखकर हताश से हो गए। पर उनके हृदय मे अपने महान उद्देश्य मे विश्वास था। इसीके बल पर उन्होने सुशिक्षित अग्रेज सेना का सामना किया। क्रातिकारियो की सेना को देखकर अंग्रेज हँसते थे कि दिल्ली पर अधिकार होने मे अब देर नही। पर युद्ध मे दिल्ली के तोपखाने के सामने अग्रेजों के तोपखाने की एक न चली। अनेक अग्रेज मारे गए। अग्रेजो की पैदल सेना ने दिल्ली के तोपखानो पर हमला करके तोपखाने के लोगो को मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार क्रातिकारियो की यहा भी हार हुई। दिल्ली के अस्पताल की भूमि पर अग्रेजो का अधिकार हो गया। गोरी सेना दिल्ली की दीवार तक आ पहुची। पर इस युद्ध के अनुभव ने उन्हे बता दिया कि दिल्ली पर अधिकार करना कोई हँसी-खेल नही है। एक दिन मे दिल्ली लेने का उनका सपना जहा-का-तहा रह गया।

पंजाब पर पाशविक अत्याचार

पजाब प्रात की स्वतत्रता छिने कुछ अधिक वर्ष नही हुए थे। दस वर्ष पूर्व पजाब की सत्ता खालसा दरबार के हाथो मे थी, पर इस अल्प-काल मे अग्रेज राजनीतिज्ञो ने अधिकाश सिखो को सिपाही ने स्थान पर किसान बना दिया था। जो सिख किसान न बन सके, उन्हे अग्रेजो ने अपनी सेना मे भरती करके तलवार का उपयोग करने का अवसर प्रदान किया। अग्रेज पजाब से निश्चित थे। गरमी के आरभ मे पजाब का चीफ कमिश्नर सर जॉन लारेस मरी की पहाडियो की ठडी हवा खाने के लिए रवाना होनेवाला था। मेरठ और दिल्ली के समाचारो से वह सावधान हो गया। एक चतुर शासक होने के कारण परिस्थिति की गभीरता को वह समझ गया। इस समय पजाब की सेना का प्रमुख अधिकारी राबर्ट माटगुमरी था। लारेस और

माटगुमरी ने नई परिस्थिति पर विचार किया। उन्होने जानना चाहा कि पजाब के सिपाहियो मे अशाति की अग्नि कितनी प्रखर है। गुप्त रूप से जाच करने के बाद दोनो समझ गए कि पजाब की सेना भी विद्रोह करने को तैयार है। वह केवल अवसर की ताक मे है।

लाहौर के निकट मियामीर नामक महत्त्वपूर्ण सैनिक छावनी थी। यही पर सबसे अधिक सख्या मे सेना थी। यहा पर गोरे गिनती मे हिंदुस्तानी सिपाहियो से केवल चौथाई थे। लारेंस और माटगुमरी ने यहा के सिपाहियो से शस्त्र रखवा लेने का निश्चय किया।

१३ मई को प्रातःकाल परेड की आज्ञा निकली। हिंदुस्तानी सिपाही बीच मे खडे किये गए। तोपखाने को ऐसे स्थान पर खडा किया गया कि अगर सिपाही गडबड करते तो शीघ्र ही तोपो के गोलो के शिकार हो जाते। सिपाहियो को वास्तविकता का पता तब लगा जब वे असहाय परिस्थिति मे थे। कुछ भी नही कर सकते थे। अत मे सभी हिंदुस्तानी सेना ने आज्ञानुसार शस्त्र रख दिये। जिस सेना ने अफगानिस्तान के युद्ध मे अग्रेजो की रक्षा की थी, उसी सेना के शस्त्र इस प्रकार धोखा देकर रखवा लिये गए। इसके उपरात गोरो की एक टुकडी लाहौर के किले मे गई। वहा भी सेना के शस्त्र रखवा लिये गए और उसे किले से बाहर निकाल दिया गया।

इस समय अमृतसर का गोविदगढ नामक किला सिखो के हाथो मे था। एक खबर फैली कि मियामीर तथा लाहौर के नि.शस्त्र सैनिक इस किले की ओर बढ रहे है। सिख लोग इस किले को अत्यत पवित्र मानते है। यहा पर अगर कुछ हो जाता तो सिखो पर इसका बहुत प्रभाव पडता। इसी कारण इस समाचार से अग्रेज घबडा उठे। उन्होने जाटो और सिखो से इस किले की रक्षा मे सहायता मागी। वह उन्हे मिल गई। इस प्रकार अमृतसर का किला भी अग्रेजो के हाथ मे आ गया।

फिरोजपुर

अग्रेज अफसरो के पास बराबर समाचार आ रहे थे कि फिरोजपुर

की सेना मे भी अशाति की आग धधक रही है । यहा पर एक बडी मैगजीन (शस्त्र-भडार) थी । इससे वे और भी चिंतित हो उठे । उन्होने जानना चाहा कि इस समाचार मे वास्तविकता क्या है । १३ मई को सिपाही परेड के मैदान मे बुलाये गए । उनके प्रत्येक कार्य पर, व्यवहार पर अग्रेज अफसरो की बारीक दृष्टि थी । पर उनका व्यवहार इतना शात रहा कि अग्रेजो के हृदयो मे उनके प्रति जो सदेह पैदा हो गया था, वह दूर हो गया । अग्रेज नही समझ सके कि जिन सिपाहियो को वे आज्ञाकारी समझ रहे है, वे हिदुस्तान से फिरगियो को मार भगाने की शपथ ले चुके है । परेड के दिन ही सायकाल इन सिपाहियो ने विद्रोह का झडा खडा कर दिया । अग्रेजो के मकान जला दिये गए । जो अंग्रेज मिला, वह मार डाला गया । अग्रेजो ने घबडाकर मैगजीन मे आग लगा दी । इसके बाद हिदुस्तानी सेना दिल्ली की ओर रवाना हुई । गोरी सेना ने उसका पीछा किया, पर उसे न पा सकी ।

पेशावर

पेशावर अफगानिस्तान की सरहद की छावनी थी । यहा अफगानो की रोक-थाम के लिए पास-पास कई छावनिया स्थापित की गई थी । इस ओर से अफगानो द्वारा, अथवा पेशावर के पास की पठान जातियो द्वारा अगर इस समय हिदुस्तान पर आक्रमण होता, तो नि सदेह पजाब मे अंग्रेजी राज्य का अस्तित्व ही मिट जाता । पजाब की सेनाए वैसे ही विद्रोह के उचित अवसर की ताक मे थी । अगर इस ओर से कोई आक्रमण होता तो अग्रेज उसका सामना न कर पाते । इस समय यहा सात हजार छ सौ देशी सिपाही तथा केवल दो हजार गोरे थे ।

क्रातिकारी नेता भी इस बात को अच्छी तरह समझते थे । लखनऊ के गुप्त क्रातिकारी केंद्र ने अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मौहम्मद को एक पत्र लिखा था । वह किसी प्रकार अंग्रेजो के हाथो मे पड गया । इससे स्पष्ट हो गया कि लखनऊ के मुसलमान अमीर से सहायता के लिए

बातचीत कर रहे है । अगस्त १८५५ के इस पत्र मे लिखा था—"अवध को अग्रेजो ने हडप लिया है । हैदराबाद को निगलते ही हिदुस्तान मे कोई मुसलमानी राज्य नही रह जायगा । शीघ्र ही इसका उपाय करना आवश्यक है । अगर लखनऊ के लोग स्वराज्य के लिए उठ खड़े होते है तो वे श्रीमान से कितनी सहायता की आशा करे ?"

अमीर ने इस पत्र के उत्तर मे अपनी राजनैतिक चतुरता का परिचय देते हुए लिखा —"इस पर हम विचार करेगे ।" इसी समय अग्रेजो और अफगानिस्तान के अमीर मे एक सधि हुई । अग्रेजो ने उसे दस लाख रुपया सालाना देकर सतुष्ट कर दिया और इस प्रकार उसे इस ओर से उदासीन बना दिया ।

अग्रेज सीमा के पास की अफगान, अफरीदी आदि जातियो से भी बहुत घबड़ाते थे । वे बडे वीर, साहसी तथा स्वतत्रता-प्रेमी थे । लडाई-झगडा, हत्या-लूट आदि तो उनके लिए साधारण बाते थी । लबी-लबी रकमे देकर अग्रेजो ने इन वीर जातियो को भी सतुष्ट किया ।

इधर से अपनी सीमा सुरक्षित कर अग्रेजो ने पजाब के सिपाहियो को नि.शस्त्र करना आरभ किया । पेशावर के आस-पास की छावनियो मे इस समय २४, २७ और ५१ नबर की पैदल पलटने थी । साथ ही एक घुडसवार सेना भी थी । इन पलटनो ने २२ मई को विद्रोह करने का निश्चय किया था । अग्रेज अफसरों ने इन्हे २१ मई को गोरी सेना द्वारा घेर लिया तथा उनके शस्त्र रखवा लिये । इन सेनाओ के अग्रेज अफसरो तक ने इस कार्रवाई को पसद नही किया । उन्होने भी अपने शस्त्र इन्हीके साथ वही रख दिये ।

मरदान

५५ नबर की सेना का इतिहास अत्यत करुणाजनक है । यह सेना उस समय मरदान मे थी । इस सेना को भी नि शस्त्र करने की आज्ञा दी गई । इसका अफसर कर्नल स्पाटिश वुड एक अत्यंत उच्च विचार का

व्यक्ति था। वह अपनी सेना मे अत्यत लोकप्रिय था। वह अपनी सेना पर अडिग विश्वास रखता था। सेना को नि शस्त्र करने का विचार उसे पसद नही आया। उसने इसका प्रबल विरोध किया, क्योकि उसने इसे अपना तथा अपनी सेना का अपमान समझा। सेना को भी समाचार मिला कि उसे नि शस्त्र करने के लिए पेशावर से गोरो की सेना आ रही है। कर्नल वुड अपनी सेना का अपमान न सह सका। अपने कमरे मे जाकर उसने आत्म-हत्या कर ली। इस समाचार से सेना भडक उठी। उसने विद्रोह कर दिया। खजाने को लूट लिया। शस्त्रो से सज्जित होकर थोडा उत्पात कर वह दिल्ली की ओर रवाना हो गई।

अग्रेज अफसर निकलसन ने घुडसवारो के साथ इसका पीछा किया और एक स्थान पर इसे घेर लिया। स्वतत्रता के मतवाले सिपाही डटकर लडे, पर तोपखाने के सामने उनकी एक न चली। सैकडो सिपाही अग्रेजो की गोलियोके शिकार हो गए। जो पकडे गए, वे फासी पर लटका दिये गए। कई बचकर काश्मीर की ओर बढे। उन्हे विश्वास था कि क्योकि वे हिंदू है, अत काश्मीर का महाराजा उनकी सहायता करेगा। कम-से-कम शरण प्राप्त होने की उन्हे पूरी आशा थी। पर ज्यो-ही महाराजा को पता लगा कि विद्रोही सिपाही उसके राज्य मे घुस आये है, उसने आज्ञा दी कि यदि वे लोग रियासत से बाहर नही जाय तो उन्हे समाप्त कर दिया जाय। अग्रेजो का परम भक्त काश्मीर का महाराजा इससे कम कर भी क्या सकता था? जगली जानवरो की तरह इनका पीछा करते हुए अग्रेज पीछे-पीछे आ ही रहे थे। जो लोग पकडे जाते, उन्हे या तो फासी दे दी जाती या वे तोप द्वारा उडा दिये जाते।

इस सेना के सिपाहियो पर, जिन्होने एक भी अग्रेज की हत्या नही की थी, जो अत्याचार किये गए, वे इतने घृणित है कि अग्रेज इतिहासकार तक इसका वर्णन करने मे हिचकिचाते है। के लिखता है—"यद्यपि मेरे पास अनेक ऐसे पत्र है, जिनमे हमारे अफसरो द्वारा किये गए अत्याचारो का वर्णन है, तथापि मै उस सबध मे एक शब्द भी नही लिखना चाहता ताकि यह विषय

अब ससार के सामने अधिक दिनों तक न रहे ।"

क्रातिकारियो द्वारा किये गए हत्या-काडो को बढा-चढ़ाकर अतिरजित करके ससार के सामने रखनेवाले अग्रेज इतिहासकार अपने पाशविक, घृणित और अमानुषिक अत्याचारो पर कैसे परदा डालने का प्रयत्न करते है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है ।

दोआब

जालधर, फूलपुर, लुधियाना आदि स्थानो मे क्रातिकारियो का सगठन अत्यत सुदृढ था । इस भाग मे ६ जून को विद्रोह करने का निश्चय किया गया था । योजना यह थी कि जालधर, फूलपुर तथा होशियारपुर की सेना मे एक साथ विद्रोह का झडा खडा किया जाय । ६ जून को मध्य-रात्रि मे जालधर के कर्नल का बगला एकाएक जल उठा । यही विद्रोह के श्रीगणेश का सकेत था । शस्त्रो से सुसज्जित होकर सभी सैनिक बाहर निकल पडे । स्वतत्रता के नारो से नगर का वायुमडल गूज उठा । अग्रेजो के लिए यह निरभ्र आकाश से बिजली गिरने की तरह आश्चर्यजनक बात थी । अग्रेज महिलाए, बच्चे, पुरुष सभी रक्षा पाने के लिए इधर-उधर भागने लगे । एडजूटैट बैगशॉ ने आकर इन सिपाहियो को रोकने का प्रयत्न किया, पर एक घुडसवार ने उसे गोली का निशाना बना दिया । अन्य किसी अग्रेज पर सिपाहियो ने हाथ नही उठाया ।

जालधर की सेना ने एक दिन पूर्व ही फूलपुर की छावनी मे सदेश भेज दिया था । उन्होने भी निश्चित समय पर विद्रोह कर दिया । जालधर था तो पूरी तरह से अग्रेजो के हाथो मे, गोरे घुडसवार भी थे, पर यह विद्रोह इतना यकायक हुआ कि वे हतप्रभ हो गए । जालधर की सेना फूलपुर पहुंची, वहा उसका खुले दिल से स्वागत हुआ । दोनो सेनाएं एक हुई और वे दिल्ली की ओर रवाना हुई । लुधियाना पहुचने के लिए सतलज नदी के नाव के पुल को पार करना आवश्यक था, पर लुधियाना के अग्रेजो को ज्यो-ही समाचार मिला कि क्रातिकारी सेना आ रही है, उन्होने इस पुल को नष्ट कर डाला । सतलज के उस पार गोरों तथा सिखो

की सयुक्त सेना इनका सामना करने के लिए खडी थी ।

पुल के नष्ट होते ही क्रातिकारियो ने चार मील आगे बढकर एक स्थान से नाव द्वारा सतलज पार करना आरभ किया । लेकिन थोडे ही सिपाही उस पार पहुचे होगे कि अग्रेजी तोपो ने इनपर गोले बरसाना आरभ कर दिये । क्रातिकारियो की तोपे अभी नदी के इस पार न आ पाई थी । इस कठिन अवस्था मे भी सिपाही अग्रेजो और सिखो का सामना करते रहे । तोपो के गोलो का उन्होने बदूको की गोलियो से जवाब दिया । दो घटे की इस असमान लडाई के बाद अग्रेज कमाडर विलियम्स गोली खाकर वही मारा गया । सिपाहियो ने अब पूरी ताकत से हमला किया । अग्रेजो और सिखो के पैर उखड गए । वे भाग खडे हुए ।

अपनी विजय पर मतवाले बनकर ये क्रातिकारी दोपहर को लुधियाना पहुचे । लुधियाने की जनता भी उनके साथ हो गई । सरकारी माल-गोदाम, गिरजाघर, सरकारी प्रेस, अग्रेजो के बगले——सभी——या तो जला दिये गए या नष्ट कर दिये गए । जेलखाना तोड दिया गया । फिर ये रणोन्मत्त सिपाही क्राति के गीत गाते हुए दिल्ली की ओर रवाना हुए ।

इस समय अगर ये सैनिक दिल्ली की ओर जाने के बजाय लुधियाने को ही क्राति का केद्र बना लेते तो नि सदेह अग्रेजो के लिए एक कठिन समस्या पैदा हो जाती । पर ये तो सैनिक-मात्र थे । इनके पास कोई नेता न था और न गोला-बारूद आदि ही थी । अगर इस समय इन्हे योग्य नेता मिल जाता तो अग्रेजो की शक्ति को बडा धक्का पहुंचता ।

क्रातिकारियो को पूरी आशा थी कि पजाब प्रात क्राति की दृष्टि से अत्यत उपयुक्त स्थान रहेगा । वहा सिखो का राज्य गए केवल १० वर्ष हुए थे । खालसा दरबार की स्मृतिया अब भी उनके स्मृति-पटल पर ताजी थी । वहा के मुसलमान भी अवध आदि मुसलमानी रियासतो के नष्ट होने से असतुष्ट थे । दिल्ली मे बहादुरशाह के नेतृत्व मे क्राति का झडा ऊचा होते ही उनमे एक नई उमग पैदा हो गई । हिदू अंग्रेजो से असंतुष्ट ही थे । वे अपने देश को फिरगियो के अधिकार मे जाता

देख दु.खी थे। पजाब की ५५ नबर की पलटन हिदुओ की ही थी। उसने जिस वीरता से विकट परिस्थिति का सामना किया और देश के स्वातत्र्य के लिए अपना बलिदान किया, वह इतिहास की एक महान घटना है।

पर दुर्भाग्य से तथा अग्रेजो की कूटनीति से पजाब के हिदू-मुस्लिम और सिख एक न हो सके। सिखो ने तो मानो देश मे द्रोह करने का बीडा ही उठा लिया था। उनका व्यवहार कुछ स्वाभाविक भी था। जिन सेनाओ की सहायता से अंग्रेजो ने सिखो का राज्य समाप्त किया था, उन्ही सेनाओ के साथ सिख कैसे मिलते? क्रातिकारियो ने सिख सरदारो के पास दूत भेजे और क्राति के पक्ष मे उनको लाने का कोई उपाय बाकी न छोडा। इस सबध मे बहादुरशाह का विशेष दूत ताजुद्दीन सिख सरदारो से मिला था। उसका कथन है—"पजाब के सिख अत्यत आलसी और कायर है। वे क्रातिकारियो का साथ न देगे। वे फिरगियो के हाथो के खिलौने बन गए है। मैने उनसे पूछा—'तुम लोग फिरगियो का साथ देकर स्वराज्य-द्रोह क्यो कर रहे हो? क्या स्वराज्य से तुम लोगो का लाभ न होगा? अपने हित मे तुम्हे दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए।' इस पर उन्होने उत्तर दिया—'हम तो अवसर की ताक मे है। मुगल सम्राट की आज्ञा आते ही हम फिरगियो को मार डालेगे!' मगर मेरे विचार से वे सभी अविश्वसनीय है।"

हुआ यही। दिल्ली की स्वतत्रता के बाद बहादुरशाह ने इन सिख सरदारो के पास फिरगियों पर हमला करने की आज्ञा भेजी। पर पत्रो को लानेवाले सभी सवार मार डाले गए!

अग्रेजो ने सिखो को अपनी ओर रखने मे अपनी सारी चातुरी लगा दी। सिखो से कहा गया—"मुसलमान तो तुम्हारे शत्रु है और औरगजेब ने तुम्हारे धर्म पर कैसे आघात किये थे? अगर तुमने बहादुरशाह का साथ दिया तो दिल्ली मे पुन. मुसलमानी राज्य स्थापित हो जायगा और तुम्हारा धर्म फिर संकट में पड जायगा। अब समय आ गया है कि तुम मुसल-

मानो से अपना पूरा-पूरा बदला ले लो। यह भविष्यवाणी कि सिख दिल्ली पर आक्रमण कर उसे जमीदोज कर देगे, पूरी होने का अवसर आ गया है। इसमे पूरा लाभ उठाओ।" साथ ही बहादुरशाह का एक जाली फरमान पजाब-भर मे दीवारो पर चिपका दिया गया, जिसमे लिखा था—"सिखो को मार डाला जाय।" सिख अग्रेजो की बातो मे आ गए। इससे राष्ट्र की भयकर हानि हुई।

सर जॉन लारेंस ने १८५८ के एक पत्र मे लिखा था—"ईश्वर की अनुकपा से पजाब के लोगों की राजभक्ति तथा सतोष और समाधान ने हिदुस्तान को बचा लिया गया। अगर पंजाब चला जाता तो हम नष्ट हो गए होते।"

पंजाब मे शाति स्थापित करने के बाद लारेंस ने सिखों, पहाडियो आदि स्वामिभक्तो की एक सेना डैली के नेतृत्व मे बरनार्ड की सहायता के लिए दिल्ली रवाना की।

अजनाले का हत्याकांड

लाहौर की २६ नबर की पलटन ने विद्रोह कर दिया और अपने अफसर मेजर स्पेंसर की हत्या कर डाली। प्रकाशसिह नामक सिपाही नेता चुना गया। अग्रेज अफसरो के पास जब यह समाचार पहुचा तो उन्होने सिख सैनिको को साथ लेकर विद्रोहियो पर तोपो से गोले बरसाने आरभ कर दिये। सैकडो सिपाही गोलो के शिकार हो गए। बचे हुए सिपाही अपनी प्राण-रक्षा के लिए भाग खडे हुए और रावी नदी पार करने का प्रयत्न करने लगे। इधर अग्रेज उनके पीछे पड गए। उन पर गोलिया बरसाई गई। कई सिपाही जान बचाने नदी मे कूद पडे और डूब गए। जो बचे, उन्होने नदी मे एक टापू पर आश्रय लिया। दो नावों मे तीस सशस्त्र सैनिक इन्हे गिरफ्तार करने के लिए भेजे गए। अग्रज सैनिकों को आते देख उन्होने हाथ जोडकर प्राण-भिक्षा मागी। पर यहा तो प्रतिहिसा की अग्नि मे जलनेवाले गोरे सिपाही थे। पचास सिपाही नदी मे कूद पडे और रावी के गर्भ मे समा गए। बचे हुए सिपाही गिरफ्तार कर लिये गए। उन्हे कस-कसकर बाधा गया। सिखो की देख-रेख मे वे

अजनाला पहुचाये गए। मध्य रात्रि मे दोसौ बयासी सिपाही घनघोर वर्षा मे अजनाले के थाने मे पहुचे। इन्हे पास की तहसील की इमारत मे तथा अधिकतर को थाने मे बद कर दिया गया। छियासठ तहसील की इमारत के छोटे-से गुंबद मे बद कर दिये गए।

प्रात.काल इन्हे मौत के घाट उतारना शुरू किया गया। दस सिख सिपाही बदूक ताने खडे थे। कुछ सैनिक इनके सामने लाये जाते और वही गोली से उडा दिये जाते। जब गुबद मे बद सिपाही बाहर लाये जाने लगे तो सैनिक अधिकारी कूपर को सूचना मिली कि कैदी बाहर आने से इन्कार कर रहे है। खुद कूपर ने लिखा है कि मैने जाकर देखा कि गुबद मे पैतालीस लाशे पडी है। वह आगे लिखता है—"बिना जाने हॉलवेल के ब्लैक होल का हत्या-काड दोहराया गया।"

हॉलवेल के ब्लैक होल की कथा कल्पना-मात्र थी, पर अजनाले के गुबद की पैशाचिक घटना सत्य थी।

रात को पानी और हवा न मिलने से ये अभागे सैनिक तडप-तडप-कर मर गए होगे। पास ही एक कुआ था। इसमे दोसौ बयासी लाशे घसीट-कर डाल दी गई और कुए को मिट्टी से पूर दिया गया। उस पर मिट्टी का ढेर लगा दिया, जो टीला-सा बन गया।

कूपर ने बडे गर्व से कहा है—"एक कुआ कानपुर मे है, किंतु एक अजनाले मे भी है।"

: ९ :

विभिन्न स्थानों की सरगर्मी

रुहेलखंड

रुहेलखड मे सौभाग्य से खानबहादुर खा जैसा योग्य और चतुर नेता क्रातिकारियो को मिला था। रुहेलखड को अग्रेजो ने अन्यायपूर्वक वीर पठानो से छीन लिया था। वे लोग इसे भूले नही थे। बदला लेने के उचित

अवसर की राह देख रहे थे। यही कारण था कि क्रातिकारियो के लिए यह भूमि अत्यत उर्वर सिद्ध हुई। रुहेलखड का क्रातिकारी संगठन बहुत ही दृढ और व्यवस्थित था।

बरेली रुहेलखड की राजधानी थी। इस समय यहा पर कोई गोरी सेना न थी। सभी सेना हिदुस्तानी सिपाहियो की थी। यहा पर १८ और ६८ नबर की पैदल सेना थी, ८ नबर की घुडसवार सेना थी और साथ ही एक तोपखाना भी था। जनरल रिबल्ड यहा का सैनिक अधिकारी था। यहा पर व्यापारी तथा अन्य अग्रेज भी काफी सख्या मे थे। मेरठ के समाचार आते ही बरेली मे घबड़ाहट पैदा हो गई। अग्रेजो ने अपनी रक्षा का प्रबध करना आरभ किया। स्त्रियो तथा बच्चो को नैनीताल रवाना कर दिया गया। सेना की अशाति से अग्रेज परिचित थे।

नगर तथा सेना से प्रतिदिन तरह-तरह के समाचार आते। अफवाहो का खडन करने के लिए १५ मई को समस्त सेना की एक परेड बुलाई गई। कमाडिग अफसर ने अपने भाषण द्वारा सैनिको को राजभक्ति का पाठ पढाया। साथ ही यह घोषित किया कि नये कारतूस, जिनका उपयोग करने मे सैनिको को एतराज है, बंद कर दिये गए है—अब केवल पुराने कारतूसो का ही उपयोग किया जायगा। इसी समय हिदुस्तान के प्रधान सेनापति ने भी घोषित किया कि नये कारतूस का भविष्य मे उपयोग नही किया जायगा। पर सेना की अशाति और विद्रोह का वास्तविक कारण केवल नये कारतूसो का उपयोग नही था, जैसाकि कुछ इतिहासकार कहते है। यही कारण है कि इस घोषणा के बाद भी अशाति मे कोई कमी नही हुई।

इसी समय दिल्ली के सेनापति का स्वातत्र्य-सग्राम मे भाग लेने का निमत्रण आया, जिसमे कहा गया था—"दिल्ली के सेनापति की ओर से रुहेलखड के सेनापतियो के नाम। दिल्ली मे फिरगियो के विरुद्ध युद्ध जारी है। ईश्वर की कृपा से पहली ही हार से वे इतने घबडा गए है कि अन्य अवसर की दस हारो से भी वे इतना न घबडाते। देशभाइयो की असख्य सेना यहा आ रही है। ऐसे अवसर पर अगर आप वहा भोजन कर रहे हो तो हाथ यहा

विद्रोहियो ने रात मुरादाबाद की सैनिक छावनी मे ही आराम से काटी थी !

३१ मई को प्रात-काल सैनिक लोग परेड के मैदान मे एकत्र हुए और उन्होने अपने अग्रेज अफसरों को नोटिस दिया कि दो घंटे के अंदर वे मुरादाबाद छोडकर चले जायं अन्यथा वे सब मार डाले जायगे। वहा की पुलिस ने भी क्रातिकारियो का साथ दिया। सभी अग्रेज वहां से भाग खडे हुए। कहते है, यहा का कमिश्नर पावेल अपने कुछ साथियो के साथ प्राण-रक्षा के लिए मुसलमान बन गया।

खजाने और सरकारी भवनों पर क्रातिकारियों का झडा फहराने लगा।

बदायूं

बरेली और शाहजहापुर के बीच बदायू का जिला है। यहा का कलक्टर था एडवर्ड्स। यहा लगान इतना अधिक था कि जमीदार तथा किसान दोनो ही इसे देने मे अपने को असमर्थ पाते थे। यहां भी असंतोष फैला हुआ था। अत: परिस्थिति क्राति के अनुकूल थी ही। गडबडी की आशका होने पर एडवर्ड्स ने बरेली से सहायता मागी। इधर बरेली की स्वाधीनता घोषित होते ही एक सवार बदायू आया। एडवर्ड्स ने समझा कि सहायता आ रही है, पर उस सवार ने तो आते ही पूछा—"बरेली तो स्वतत्र हो गई बदायू, का क्या हाल है ?"

पहली जून को शाम को नगर मे ढिढोरा पीटा गया—"अग्रेजी राज्य समाप्त हो गया है। मुगल सम्राट की ओर से खानबहादुर खा का राज्य आरंभ हो गया है।"

सिपाही, पुलिस, जनता सभी एक साथ उठ खड़े हुए। खजाने पर अधिकार कर लिया गया। सिपाही उसे लेकर दिल्ली रवाना हो गए।

इस प्रकार बरेली, मुरादाबाद, शाहजहापुर तथा बदायू के जिले अंग्रेजी शासन से स्वतंत्र हो गए। सारे रुहेलखड ने खानबहादुर खां को अपना नवाब स्वीकार किया।

खानबहादुर एक योग्य शासक था। उसने पहला ही प्रबंध जारी

रखा । पुराने हिदुस्तानी अफसर मुगल सम्राट के नाम पर पुनः नियुक्त किये गए । न्यायालयो ने भी अपना काम जारी रखा । मुगल सम्राट के नाम पर कर वसूल होने लगा । खानबहादुर ने निम्नलिखित घोषणा की :

"हिदुस्तान के बाशिदो ! जिस दिन की हम लोग बहुत दिनो से राह देख रहे थे, वह आजादी का पाक दिन आ गया है । आप क्या करेगे ? मंजूर या इन्कार ? इस बढिया मौके से आप फायदा उठाना चाहते है या इसे गवा देना चाहते है ? हिदू और मुसलमान भाइयो ! अगर फिरंगियो को हिदुस्तान मे रहने दिया गया तो वे हमे मार डालेगे और हमारे मजहब का खात्मा कर देगे । अग्रेज हिदुस्तानियो को हमेशा धोखा देते रहे है । हिदुस्तानियो ने अपनी ही तलवार से अपनी गर्दन काटी है । मुल्कफरोशी का हमे प्रायश्चित करना है । अंग्रेज हिदुओ को मुसलमानो के विरुद्ध उभाडेगे और मुसलमानो को हिदुओ के विरुद्ध । हिदू भाइयो ! उनके जाल मे मत फसना । हमे अपने चतुर हिदू भाइयों से यह कहने की आवश्यकता नही कि अग्रेज अपने वादे कभी पूरा नही करते । वे धोखे तथा चालबाजी मे बडे निपुण है । वे दुनिया मे अपने मजहब के सिवा और कोई मजहब जिदा नही रखना चाहते । क्या उन्होने गोद लिये हुए बच्चों के हक नही छीने ? क्या उन्होने हमारे राजाओं के राज्यो को नही हडपा ? नागपुर का राज्य किसने लिया ? लखनऊ का राज्य किसने लिया ? किन्होने हिदू और मुसलमान दोनो को पैरो के तले कुचला ? मुसलमानो ! अगर आप कुरान की इज्जत करते है, हिदुओ ! अगर आप गो-माता की इज्जत करते है, तो आपसी छोटे-छोटे मतभेदों को भूल जाइये और इस पाक जंग मे शामिल हो, एक झडे के नीचे लडाई के मैदान में उतरिये । खून की नदियो मे फिरंगियो को बहा दीजिये । अगर लडाई मे हिदू मुसलमानों का साथ देगे और उनके कधे-से-कधा भिडाकर अग्रेजो के खिलाफ लड़ेगे तो गो-हत्या बंद हो जायगी । जो इस युद्ध मे लडेगा, अथवा लडाई मे धन से मदद देगा, उसे इस दुनिया की तथा अगली दुनिया की आजादी मिल जायगी । पर अगर कोई हमारी लड़ाई की मुखालफत करेगा तो वह अपने ही हाथो से

आकर धोइये। शाहो का बादशाह, जहापनाह, दिल्ली का बादशाह आपका स्वागत करेगा और आपकी सेवाओ के लिए उचित पारितोषिक देगा। आपकी तोपो की गरजन सुनने के लिए हमारे कान व्याकुल है। हमारी आखे आपके दर्शन की प्यासी ह। आइये, शीघ्र आइये। बिना वसत के गुलाब कैसे खिलेगा ? बिना दूध के बच्चा कैसे जी सकेगा ?"

यहा के नेता खानबहादुर खा की नसो मे रुहेला सरदारो का खून बह रहा था। उसे अग्रेजो की ओर से दो पेशन मिलती थी—एक तो रुहेलखड के शासक हाफिज रहमान का वंशज होने के नाते और दूसरी न्यायाधीश पद से सेवा-निवृत्त होने के कारण। खानबहादुर खा पर अग्रेज बडा विश्वास करते थे। साथ ही रुहेलखड मे वह क्रातिकारियो का प्रमुख संगठनकर्ता था।

३१ मई को रात को ११ बजे तोप गरज उठी। यही विद्रोह का सकेत था। सैनिक अपनी-अपनी छावनियो से निकल पडे। उन्होने अग्रेजो पर आक्रमण कर दिया। अग्रेजो के बंगले जल उठे। अग्रेजो मे भगदड़ मच गई। "दीन-दीन", "मजहब पर कुरबान हो" आदि नारे सहस्रों कंठो से निकलकर आकाश को गुंजाने लगे। जनरल रिबल्ड, कैप्टन कर्बी, लेफ्टिनेट फ्रेज़र, सार्जेंट वास्टन, कर्नल टुप, कैप्टेन राबर्टसन आदि अनेक अग्रेज मार डाले गये। अग्रेज यहा से प्राण लेकर भागे। बहुत-से रास्ते मे मार डाले गए। केवल ३२ सही-सलामत नैनीताल पहुचे। बरेली पर क्राति का हरा झंडा फहराने लगा।

खानबहादुर खा रुहेलखंड का नवाब घोषित हुआ। दिल्ली के मुगल सम्राट की अधीनता मे वह यहा का शासन करने लगा। तोपखाने का सूबेदार बख्तखा रुहेलखंड का सेनापति घोषित हुआ।

शाम को खानबहादुर खा का एक विराट जुलूस नगर मे घूमा। स्थान-स्थान पर स्वतंत्रता की घोषणा की गई।

शाहजहांपुर

शाहजहापुर बरेली से कोई ४७ मील की दूरी पर है। यहा इस समय

२८ नबर की सेना थी। मेरठ का समाचार यहां १५ मई को पहुचा, पर यहा के सैनिको ने अपनी निश्चित योजना के अनुसार ही कार्य करने का निश्चय किया।

३१ मई, रविवार, को प्रात-काल जब सब अग्रेज गिरजाघर मे प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए, उसी समय विद्रोह का बिगुल बज उठा। सिपाहियो ने गिरजाघर पर हमला कर दिया। शोर सुनकर पादरी बाहर निकला। एक सिपाही ने उस पर तलवार से वार किया। इससे उसका हाथ कट गया। सिटी मजिस्ट्रेट रिकेट भागता हुआ मारा गया। लैबडोर की तो गिरजे मे ही हत्या की गई। डाक्टर बालिग ने बाहर निकलकर सिपाहियों को समझाने का प्रयत्न किया। उसने सिपाहियो को 'राजद्रोही' कहा। इस पर एक सिपाही ने उसे गोली से मार डाला।

शाहजहापुर मे ३१ मई को सायकाल स्वतन्त्रता का हरा झंडा फहराने लगा।

मुरादाबाद

बरेली से वायव्य दिशा मे कोई ४८ मील दूर मुरादाबाद बसा हुआ है। इस समय यहा पर २६ नबर की पलटन थी। यहा का मजिस्ट्रेट विल्सन बडा भला आदमी था। सभी उसका बडा सम्मान करते थे। सेना पर भी उसका प्रभाव था। मेरठ के समाचार आते ही विल्सन नगरवालो और सैनिको से मिला। सभी लोगो ने उसे सहायता देने का वचन दिया। इससे विल्सन निश्चित हो गया।

१८ मई को मुरादाबाद मे समाचार आया कि विद्रोहियों की एक टोली मुरादाबाद से ५ मील की दूरी पर ठहरी हुई है। सिपाहियो को उस पर आक्रमण करने की आज्ञा मिली। अंधेरी रात थी। विद्रोही जगल में सो रहे थे। एकाएक उन पर हमला हुआ। एक को छोडकर सब विद्रोही भाग गए। अग्रेज अफसरो ने विश्वास कर लिया कि अधेरे का फायदा उठाकर वे सब भाग गए हैं। पर वास्तविकता कुछ और ही थी। आक्रमण तो दिखावे का था। अब तो इस बात का भी सुबूत मिलता है कि इन

यहा के सैनिक अधिकारी कर्नल स्मिथ ने सुरक्षा की दृष्टि से कानपुर को फतेहगढ या निकट के ही नगर फर्रुखाबाद से अधिक सुरक्षित समझा। अंग्रेज स्त्रियो और बच्चो को उसने नावों द्वारा कानपुर भेज दिया। जून के तृतीय सप्ताह मे यहा के सैनिको ने कर्नल स्मिथ से स्पष्ट रूप से कह दिया था कि अगर अंग्रेज अपनी जान बचाना चाहते है तो उन्हे वहा से हट जाना चाहिए। स्मिथ के सामने किले के भीतर आश्रय ग्रहण करने के सिवा कोई चारा न था। शीघ्रतापूर्वक थोड़ी-सी खाद्य सामग्री एकत्र कर वह किले मे घुसकर बैठ गया। खजाना भी किले मे ले जाने का उसने प्रयत्न किया, पर असफल रहा।

फर्रुखाबाद

फतेहगढ के पास ही फर्रुखाबाद का जिला है। इस जिले में भी जून मास मे विद्रोह का झडा खडा कर दिया गया। यहा के क्रातिकारियो को तफज्जुलहुसैन नामक नेता मिला। फर्रुखाबाद का खजाना लूट लिया गया और जेल पर हमला कर कैदियों को मुक्त कर दिया गया। यही पर पंजाब केसरी रणजीतसिह के पुत्र दिलीपसिह के जब्त किये गए जवाहरात भी रखे हुए थे। ये जवाहरात भी क्रातिकारियो ने लूट लिये। तफज्जुलहुसैन यहा का नवाब घोषित किया गया।

२५ जून को इन क्रातिकारियो ने किले पर हमला किया। अंग्रेजों ने, जबतक उनके पास गोला-बारूद रहा, तबतक मुकाबला किया। अंत मे अंधकार का आश्रय लेकर ३ नावों में सभी अंग्रेज बैठ गए और कानपुर की ओर रवाना हुए। जब विद्रोही सिपाहियों को पता लगा कि वे भाग गए है तो उन्होने नावो द्वारा उनका पीछा किया। गंगा के दोनो किनारों से अंग्रेजो की नावो पर गोलिया चल रही थी। इधर नावों द्वारा उनका पीछा किया जा रहा था। कई अंग्रेज गोलियो के शिकार हुए। कई गंगा में कूद पडे और डूब गए। केवल कर्नल स्मिथ कानपुर तक आया, पर बाद मे उसका क्या हुआ, इसका कुछ पता नही।

आजमगढ़

आजमगढ मे १७ नंबर पलटन का कुछ भाग था। इस सेना में भी क्राति-केंद्र स्थापित हो चुका था। सेना उचित अवसर और सकेत की ओर आखे लगाये हुए थी। इसी समय समाचार आया कि लेफ्टिनेट पालिशर की सुरक्षा मे गोरखपुर का पाच लाख रुपये का खजाना आजमगढ आया हुआ है। वहा के खजाने मे इस समय तीन लाख रुपये थे। अंग्रेजों को यह स्थान सुरक्षित प्रतीत नही हुआ। अत: उन्होने यह रकम भी उसीके साथ बनारस के लिए रवाना करने का निश्चय किया। आजमगढ़ क्राति-केंद्र के नेता इतनी बडी रकम को कैसे छोडते ? ३ जून को परेड के मैदान मे बदूक गरज उठी। सभी जानते थे कि विद्रोह का यही संकेत है।

अंग्रेज घबड़ा उठे। उन्होने अवसर पडने पर अपनी रक्षा करने की व्यवस्था कचहरी मे की थी। अंग्रेज स्त्री, पुरुष तथा बच्चे कचहरी की ओर भागे। नगर के अन्य क्रातिकारी लोग सिपाहियों के साथ हो गए। लेकिन सिपाहियों ने केवल लेफ़्टिनेट हचिसन तथा क्वार्टरमास्टर-सार्जेंट लैविस को गोली के घाट उतारा। वे सिपाहियों मे अत्यंत बदनाम थे। अन्य किसी अंग्रेज पर वार नही किया गया। अंग्रेजों की दयनीय दशा पर तरस खाकर इन विद्रोही सिपाहियों ने उन्हे गाडियों की व्यवस्था कर बनारस की ओर रवाना किया। सात लाख रुपये यहां विद्रोहियों के हाथ आये।

बनारस

बनारस हिदुओं का परम पवित्र तीर्थ तो था ही, पर १८५७ मे यह क्रांति का भी महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। लार्ड डलहौजी ने अनेक राजवंशों को उनके राज्य से वचित किया था और अनेकों को यही लाकर रखा था। ब्रिटिश अन्याय के ये लोग साक्षात प्रमाण थे। हिदू, मुसलमान, सिख, मराठे आदि अनेक राजवंश अपने सरदारों के साथ इसी पवित्र भूमि पर अपने जीवन

अपना सिर कलम करेगा और खुदकशी के पाप का भागी होगा।"

अलीगढ़

दिल्ली के स्वतंत्र होने के समाचार ने जहां चारों ओर संतोष और प्रसन्नता का वातावरण उत्पन्न किया, वहा उसने क्रातिकारी नेताओ के सम्मुख एक समस्या भी खड़ी कर दी। वे निश्चित नही कर पाते थे कि उनको उसी समय उठ खडे होना चाहिए अथवा निश्चित तिथि तक राह देखनी चाहिए। यही हाल उस समय पश्चिमोत्तर प्रदेश के क्रातिकारियों का हुआ। इस भाग मे ९ नंबर की पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलंदशहर मे बंटी हुई थी। यह पलटन पूरी तरह से क्राति के लिए तैयार थी। इस पलटन मे अक्सर क्राति के प्रचारक आया-जाया करते थे। मई के आरंभ मे एक ब्राह्मण बुलंदशहर आया और उसने सैनिको को तैयार रहने को कहा। पर एक हिंदुस्तानी अफसर ने क्राति-द्रोह कर उसे पकड़वा दिया। ब्राह्मण अलीगढ़ लाया गया। यही २० मई को उसे समस्त सिपाहियों की उपस्थिति मे फासी पर लटका दिया गया। सिपाहियों का खून उबल उठा। एक वीर सिपाही अपनी भावनाओं को न रोक सका। वह आगे बढा और चिल्लाकर बोला—"भाइयो! यह शहीद हमारे लिए रक्त का स्नान कर रहा है।" उसके इन शब्दो ने बारूद के भंडार में चिन-गारी का काम किया। उपस्थित सभी सिपाही बिगड़ उठे। पर अत्यंत शांति से उन्होंने अंग्रेज अफसरों से कहा—"यदि आप अपने प्राण बचाना चाहते है तो अलीगढ छोड़ दीजिये।" भय से कांपते हुए अग्रेज, उनकी स्त्रिया और बच्चे अलीगढ से रवाना हो गए। अलीगढ पर बादशाह का हरा झंडा लहराने लगा। सिपाहियो ने बहुत-सा धन एकत्र किया और अस्त्र-शस्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना हो गए।

मैनपुरी के सिपाहियों ने भी अंग्रेजो को निकल जाने का अवसर प्रदान किया। फिर धन और शस्त्र लेकर वे दिल्ली की ओर चल पड़े।

इटावा

इटावा के कलक्टर एलेन ओ'ह्यूम ने जब मेरठ का समाचार सुना तो

उसने इटावा के चारो ओर की सडकों पर पहरा देने के लिए एक टुकडी तैयार की। सहायक मजिस्ट्रेट डेनियल ने उसकी बडी सहायता की । १९ मई को कुछ सिपाही मेरठ की ओर से आ रहे थे। पहरे की टुकडी ने उन्हे ललकारा। उन्होने आत्म-समर्पण कर दिया और शस्त्र भी रख दिये। इससे उनकी ओर से सदेह दूर हो गया । उचित अवसर पर इन सिपाहियो ने पुनः अपने शस्त्र उठा लिये । उन्होने अपने पकड़नेवालों को मार डाला और भागकर एक मंदिर मे शरण ली। यह समाचार सुनकर ह्यूम और डेनियल कुछ सिपाहियों के साथ उन्हे पकडने उस मंदिर मे पहुचे। डेनियल ने अपने साथ के सिपाहियों तथा पुलिस को मेरठ के सिपाहियो को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, पर उनके साथ का केवल एक सिपाही आगे बढा। मंदिर मे छिपे सिपाहियों ने गोलिया चलाई। डेनियल तथा उसके साथ आगे बढनेवाला सिपाही—दोनो—वही ढेर हो गए। यह देखकर ह्यूम साहब वहा से भाग खडे हुए । २२ मई को अलीगढ का समाचार पाकर यहा की सेना भी "हर हर महादेव" के नारो के साथ विद्रोह कर उठी। सिपाहियो के एक हाथ मे नगी तलवार थी, दूसरे मे मशाल । उन्होने अग्रेजी-कैप पर हमला कर दिया । खजाना लूट लिया, जेल के कैदियो को मुक्त कर दिया और शस्त्रास्त्रो पर अधिकार कर लिया। अंग्रेज अफसरो से उन्होने कहा कि अगर वे अपनी जान बचाना चाहते है तो उन्हें वहा से भाग जाना चाहिए। अग्रेज स्त्री-पुरुष-बच्चे सभी भाग खडे हुए। सिपाहियो की इस उदारता का लाभ उठाकर कलक्टर ह्यूम भी भारतीय स्त्री के वेश मे वहा से भागा तथा उसने किसी प्रकार अपनी जान बचाई। यही वह ह्यूम साहब है, जिन्होने आगे चलकर काग्रेस की स्थापना मे प्रमुख भाग लिया।

इटावा स्वतत्र घोषित किया गया। यूनियन जैक के स्थान पर हरा झडा लहराने लगा। सिपाही शस्त्रो से सज्जित होकर दिल्ली की ओर रवाना हो गए ।

फतेहगढ़

फतेहगढ मे ३ जून को बरेली तथा शाहजहापुर के समाचार पहुचे।

थोडी देर मे अंग्रेज संभल गए। उन्होने तोपो से घुडसवारों और सिखो पर गोले बरसाये। विद्रोही सिपाहियो को भागकर अपनी जान बचानी पडी। बनारस पर अंग्रेजो का अधिकार बना रहा। पर आस-पास क्राति की ज्वाला इस भयानक रूप से फैली कि अंग्रेजी राज्य का चिह्न भी मिटा दिया गया। टैक्स अलग वसूल होने लगे। अंग्रेजो के जमीदारो की जगह दूसरे जमीदार बनाये गए। देश के इस हिस्से मे बनारस को छोड सभी भाग स्वतत्र हो गए।

अब नील ने सेना की बागडोर अपने हाथों मे ली। जो सिपाही बैरको मे छिपे थे, वे बाहर निकाले गए और गोलियो से भून दिये गए। जिन सिपाहियो ने गावो मे झोपडियो मे शरण ली थी, वे झोपडियों-समेत जला दिये गए। अंग्रेजो की प्रतिहिसा की अग्नि विकराल रूप से जलने लगी। फौजियो के जत्थे गावो में घुस जाते। जो सामने आता, उसे गोली से उडा दिया जाता। गावो मे आग लगा दी जाती। जो लोग आग से बचने का प्रयत्न करते, वे गोरो की गोलियो के शिकार हो जाते। इतने अधिक लोगों को फासी की सजा दी गई कि उनके लिए फांसी का कटघरा खडा करना असभव हो गया। अब पेडो पर लटकाकर फासी दी जाने लगी। बनारस मे कुछ लडको ने खेल-खेल मे हरे रंग के झंडो के साथ जुलूस निकाला। ये अबोध बालक क्या जानते थे कि अंग्रेजों की दृष्टि मे वे कितना बडा अपराध कर रहे है? वे सब पकड़ लिये गए और उन सबको मृत्युदंड दिया गया। निर्दोष लोगो को पकड़कर हाथी पर बैठाया जाता और उनके गले मे फदा डालकर रस्सी का दूसरा सिरा पेड से बाध दिया जाता। इसके बाद हाथी हटा दिया जाता। अभागा व्यक्ति ऊंचे पर लटककर रह जाता। इतने जघन्य अत्याचारो से भी अंग्रेजो को संतोष नही हुआ। एक अंग्रेज ने अपने पत्र मे लिखा है—"मैने हिंदुस्तानियों को कलात्मक ढग से फासी दी—उनको अंग्रेजी आठ के आकार में फांसी पर लटकाया।"

इसी समय बनारस के कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा—"हमारे

सैनिक अधिकारी हर प्रकार के अपराधियो को ढूढ़-ढूंढकर मार रहे है। बिना दया-माया के उन्हे फासी पर लटका रहे है, मानो वे पागल कुत्ते, सियार या तुच्छ कीडे-मकोडे हो।"

आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन लोगों पर पहले अंग्रेजो ने अत्याचार किये थे, वे ही उनके इस समय सहायक हुए। द्वितीय सिख-युद्ध के बाद पंजाब के सरदार सूरतसिह को कैदकर अंग्रेजो ने बनारस मे रखा था। वही सूरतसिह इस समय अंग्रेजों का रक्षक सिद्ध हुआ। उसने सिखो का एक दल बनाकर अंग्रेजों की तथा उनके खजाने की रक्षा की। इस खजाने मे पंजाब-केसरी रणजीतसिह की पत्नी जिदाकुवर के जेवर भी थे।

लार्ड हेस्टिंग्ज ने बनारस के राजा चेतसिह पर जो अत्याचार किये थे, वे इतिहास प्रसिद्ध है, पर अंग्रेजो के इस संकट-काल मे उसी चेतसिह के वंशज ने अंग्रेजों को अपने देशवासियो के विरुद्ध सहायता दी।

काशी के पंडित गोकुलचद की गिनती बडे प्रतिष्ठित व्यक्तियो में होती थी। नगर मे उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। यह ब्राह्मण अंग्रेज सरकार की जजी मे नाजिर था। इसने भी नमक को धर्म से भी अधिक महत्वपूर्ण माना और अंग्रेजो की सहायता की।

जौनपुर

जौनपुर मे ३७ नंबर की सिख पलटन का कुछ भाग रहता था। पहले तो वे शात रहे, पर जब उन्हे पता चला कि गोरो ने ३७ नबर के अन्य सिपाहियों पर बनारस में गोलिया चलाई है, तो वे बिगड़ खड़े हुए। उन्होने अपने अंग्रेज अफसर को गोली से मार डाला। खजाना लूट लिया। यूरोपियनों से शस्त्र रखवा लिये तथा उनको भगा दिया। आजमगढ़ की तरह यहां भी हरा झंडा लहराने लगा।

प्रयाग

बनारस से ७० मील दूर गंगा और यमुना के सगम पर प्रयाग नगर बसा हुआ है। सम्राट अकबर ने इस संगम पर इस स्थान के सैनिक महत्व

के बचे दिन व्यतीत कर रहे थे। प्रत्येक मंदिर और मस्जिद मे अंग्रेजो के अन्याय और अत्याचारो की चर्चा होती थी और ईश्वर से प्रार्थना की जाती कि वह इन फिरगियो का नाश कर दे।

बनारस की भूमि क्राति के सगठनकर्ताओ के लिए अत्यत उपयुक्त सिद्ध हुई। सगठन दृढ हो गया। खुले आम आनेवाली क्राति की चर्चा होती। नगर मे महत्वपूर्ण स्थानों पर क्राति के घोषणा-पत्र चिपकाये जाते। हजारों की भीड इन्हे पढ़ती और सुनती। क्राति की अग्नि धीरे-धीरे सुलग रही थी। अग्रेजो तक उसकी आच पहुचे बिना न रह सकी। इससे यहा के अग्रेज घबडा उठे। कई अंग्रेजो ने बनारस खाली कर चुनार मे आश्रय ग्रहण करने की सलाह दी। पर वहा के जज ग्यूइन ने इसके विरुद्ध राय दी। अत मे अग्रेजो ने बनारस मे ही रहने का निश्चय किया।

इस समय बनारस के बाजारो मे वस्तुओ के भाव बहुत बढ गए थे। लोगो को बड़ा कष्ट होने लगा। असतोष और बढ़ने लगा। इसके लिए भी अंग्रेजों को ही खुलेआम दोषी कहा जाता था।

बनारस से तीन मील दूर सिकरौली मे अग्रेजों की छावनी थी। इस समय यहा ३७ नबर की तथा लुधियाने की सिख पलटन थी। तोपखाना भी था, पर यह गोरो के अधिकार मे था। ब्रिगेडियर जार्ज पासनबी सर्वोच्च सैनिक अधिकारी था।

जून मास के प्रथम सप्ताह मे कई अंग्रेज अफसरों के बंगलों में आग लगा दी गई। इसके सिवा यहा कोई विशेष घटना नही हुई।

२४ मई को बनारस मे स्थानीय अधिकारियों की सहायता के लिए कुछ गोरी फौज आई। इससे घबडाये हुए अंग्रेजो को थोडा धीरज मिला। अभीतक बनारस छोडकर भाग जाने का विचार करनेवाले अंग्रेजों के हृदयो मे गोरी फौज के आते ही प्रतिहिसा की आग भड़क उठी। मद्रास से आई हुई इस गोरी फौज का अधिकारी कर्नल नील था। नील बडा ही कठोर व्यक्ति था। उसने बनारस के लोगो को सबक सिखाने का निश्चय किया। इसके लिए उसने पहले बनारस की हिंदुस्तानी सेना के

हथियार रखा लेने का निश्चय किया ।

३७ नबर की पलटन परेड के मैदान मे बुलाई गई । तोपखाना तैयार खड़ा था । ३७ नंबर की पलटन के सिपाहियो को आज्ञा दी गई कि वे अपने शस्त्र रख दे । देशी सिपाहियों की संख्या दो हजार थी । गोरी फौज केवल ढाई सौ थी । लेकिन देशी सिपाहियों के आगे तैयार खड़ा तोपखाना था । इसलिए सभी सिपाहियो ने शस्त्र रख दिये । पर इसी समय सिपाहियो मे यह खबर फैल गई कि पहले उन्हे नि:शस्त्र करके गोरी फौज गोलिया चलाकर तथा तोपखाना उन पर गोले बरसाकर उन्हे नष्ट कर देगा । इतने मे गोरी फौज भी आती दिखाई दी । बस फिर क्या था ! सिपाहियो ने झपटकर अपनी बदूके पुन: उठा ली तथा अपने अफसरो और गोरी फौज पर गोलियो की बौछार कर दी । कई अग्रेज घायल हो गए । मेजर बारेट हिदुस्तानी सिपाहियो मे बहुत लोकप्रिय था । वह इस नि:शस्त्रीकरण का विरोधी था । अब वह आगे बढा । सिपाहियो ने अपने प्यारे अफसर को उठाकर एक सुरक्षित स्थान पर पहुचा दिया, ताकि उसे हानि न पहुचे ।

अंग्रेजो ने भी सिपाहियों पर तोपो से आग बरसानी शुरूकर दी । तोपो के सामने सिपाही कैसे टिकते ? वे भाग खडे हुए और आस-पास के गावो मे जाकर छिप गए । इसी समय सिख पलटन तथा घुडसवार फौज मैदान मे आई । यहा की परिस्थिति वह शीघ्र ही समझ गई । आत्म-रक्षा के लिए कुछ-न-कुछ करना उसने आवश्यक समझा । इन लोगो ने सर्व-प्रथम अपने-अपने अफसरों को गोली का शिकार बनाया । इस समय तोपखाने के लोग ३७ नंबर की पलटन के सिपाहियो का पीछा कर रहे थे । अगर यह सिख तथा हिदुस्तानी पलटन तोपखाने पर अधिकार कर लेती तो वहा की परिस्थिति ही बदल जाती । पर वे तो आज्ञा मानने-वाले सिपाही थे । आज्ञा देना अथवा सोचना उन्हे आता ही न था । अगर इस समय हिदुस्तानी सिपाही अरक्षित तोपो पर अधिकार कर लेते तो यह निर्विवाद है कि बनारस मे भी क्राति का हरा झंडा लहराने लगता ।

पर दूसरे ही दिन, अर्थात ७ जून को, यह सब लूट लिया गया ।

जनता ने विद्रोहियों का पूरा साथ दिया । ७ जून को क्रातिकारी हरे झडे का जुलूस निकाला गया । स्थान-स्थान पर लोग इसे सलामी देते थे । कोतवाली पर हरा झडा फहराने लगा । प्रत्येक गाव मे हरे झडे दिखाई देते थे । अग्रेजी राज्य की समाप्ति की घोषणा की गई ।

लोगो ने मौलवी लियाकतहुसैन को प्रयाग का शासक बनाया । वह सम्राट बहादुरशाह के प्रतिनिधि के रूप मे शासन करने लगा । मौलवी लियाकतहुसैन एक योग्य व्यक्ति था । लोग उसका बडा आदर करते थे । उसने योग्य व्यक्तियो को विभिन्न भागो का सूबेदार नियुक्त किया । शाति स्थापित करने का उसने बडा प्रयत्न किया ।

प्रयाग के किले पर अग्रेजी झडा फहरा रहा था । यह उसे बड़ा अपमानजनक मालूम होता था । उसने किले पर अधिकार करने के कई प्रयत्न किये, पर वह सफल न हो सका ।

११ जून को नील प्रयाग पहुचा । किले के सिवा सभी भागो पर हरा झडा फहराता देख उसका खून खौल उठा । उसने पूरा-पूरा बदला लेने का निश्चय किया । सबसे पहले उसने उन सिख सिपाहियों को किले के बाहर निकाला, जिनके बलपर अभीतक अग्रेजो ने किले पर अधिकार जमाये रखा था । फिर उसने विद्रोही सिपाहियो का पता लगवाया । जिस-जिस गाव मे ये विद्रोही सिपाही रहते, वह-वह गाव जला दिया जाता । जो सामने आता, मार डाला जाता । 'लदन टाइम्स' के सवाददाता सर विलियम रसेल ने अपने पत्र के सपादक जॉन डिलेन को लिखे हुए एक पत्र मे कहा है कि विद्रोहियो को पकडने का काम एक अग्रेज सौदागर को सौपा गया । यह सौदागर प्राय दिवालिया हो चुका था । अनेक भारतीय व्यापारियो का वह कर्जदार था । उसने अपने सभी ऋणदाताओ के नाम विद्रोहियो की सूची मे लिखकर उन्हे फासी पर लटकवा दिया और इस प्रकार अपने को ऋण-मुक्त कर लिया !

प्रयाग के चौक मे उस समय नीम के पेड थे । इनपर ८०० से भी अधिक

निरपराध नागरिको को फासी पर लटका दिया गया। इन वृक्षो मे से तीन वृक्ष आज भी खडे है और अग्रेजो की क्रूरता की साक्षी दे रहे है।

इस समय कर्नल नील ने प्रयाग और उसके आस-पास के गावों मे जो अत्याचार किये, वे रोगटे खडे करनेवाले है। केनिग ने इस भाग मे मार्शल ला घोषित कर सैनिक तथा मुल्की अग्रेज अधिकारियो को मुकदमे सुनने तथा फासी तक की सजा देने का अधिकार प्रदान कर दिया। इस अधिकार का जितना उपयोग किया जा सकता था, किया गया। इन अत्याचारो का वर्णन केनिंग के शब्दो मे ही सुनिये :

"मार्शल ला घोषित कर दिया गया—सिपाही और सिविलियन अफसर दोनो इन खूनी अदालतो मे मुकदमे करते थे। हिंदुस्तानियो की अन्याय-पूर्वक, बिना इस बात की चिता किये हुए कि वह स्त्री है अथवा पुरुष, हत्या की जाती।" इसके बाद तो अग्रेजो की खून की प्यास और बढ़ी।

लार्ड केनिग की रिपोर्ट मे लिखा है—"बूढ़ी स्त्रिया तथा बच्चे उसी प्रकार मार डाले जाते है, कि जिस प्रकार विद्रोही। तीन मास तक आठ गुरहे ढोनेवाली गाड़िया प्रात.काल से सायंकाल तक काम करती थी और इनपर पेड़ों पर फासी दिये गए लोगो के मुर्दे ढोये जाते थे। छः हजार लोग इस प्रकार फासी पर लटका दिये गए।"

नील ने अनेक भयंकर अत्याचार किये। इसका उसे बाद में पश्चात्ताप भी हुआ। उसीके शब्दो मे—"मै उस समय उदारता से व्यवहार करता तो अच्छा होता। मै जानता हूं कि मैने कठोरता का व्यवहार किया है, मगर उस समय की परिस्थिति देखते हुए मुझे विश्वास है कि ईश्वर की कृपा से मुझे क्षमा प्राप्त होगी। मैने सबकुछ अपने देश की भलाई के लिए तथा अंग्रेजो की प्रतिष्ठा की पुन.स्थापना के लिए और अत्यंत पाशविक तथा अमानुषिक विद्रोह को दबाने के लिए ही किया।"

को समझकर एक सुदृढ़ किला बनवाया था, जो आज भी महत्वपूर्ण सैनिक केंद्र है। कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रदेश मे जानेवाली सडके यहा मिलती हैं। यातायात की दृष्टि से भी इस स्थान को महत्व प्राप्त है।

मई १८५७ मे प्रयाग के किले मे बहुत बडे परिमाण मे युद्ध-सामग्री मौजूद थी। सरकारी खजाना भी किले मे ही था। इसमे तीस लाख रुपये थे। किले मे ६ नंबर पलटन का पहरा था। किले से चार मील की दूरी पर छावनी थी। इसमें ६ नबर की पलटन, कुछ गोलदाज तथा सिख पलटन की एक टुकडी थी। ६ नंबर पलटन की स्वामिभक्ति पर अंग्रेजो को बडा विश्वास था। इसमे अयोध्या तथा बिहार के रहनेवाले ही थे। एक बार इन सिपाहियो ने दो क्रातिकारी प्रचारको को पकड़कर अंग्रेज अफसरों के हवाले कर दिया था। इससे अंग्रेजो के वे और अधिक विश्वास-पात्र बन गए थे। जब मेरठ और दिल्ली की घटनाओ के समाचार यहा आये, तो ६ नंबर पलटन के सिपाहियो ने अपने अफसरो से कहा—"हम लोगो को दिल्ली भेजिये। हम विद्रोहियो को नष्ट कर डालेगे।" उनकी इस राजभक्ति से प्रसन्न होकर लार्ड केनिग तक ने उन्हे धन्यवाद का सदेश भेजा था। इसलिए ६ नंबर पलटन पर अंग्रेज बडा गर्व करते थे। पर उन्हे क्या पता था कि शीघ्र ही ये लोग उनके खून के प्यासे बन जायगे!

४ जून को एकाएक समाचार आया कि काशी के सिपाही अपने अंग्रेज अफसरों को यमलोक भेजकर प्रयाग आ रहे हैं। इससे अंग्रेजों मे भगदड़ मच गई। उन्होंने किले मे ही आश्रय लिया। काशी से आनेवाली सड़क पर ६ नंबर के सिपाहियो को दो तोपों के साथ पहरा देने के लिए नियुक्त किया गया। घुड़सवारों मे अधिकतर अवध प्रात के रहनेवाले थे। जब उन्होने सुना कि उनके देशभाइयों पर बनारस मे अंग्रेजों ने तोपो से गोले बरसा-कर उन्हे मार डाला है तो वे भड़क गए और उन्होने विद्रोह करने का निश्चय किया।

६ जून की रात को सभी सैनिक आराम कर रहे थे। इतने में गगा के तट पर काशी से आनेवाली सड़क पर पहरा देनेवाली सेना ने विद्रोह

कर दिया। विद्रोह का सकेत बिगुल बज उठा। सभी समझ गए कि सैनिकों ने विद्रोह कर दिया है। छावनी से भी बदूको की आवाजे आने लगी। वहा के सैनिको ने भी योजनानुसार विद्रोह कर दिया।

तोपो की रक्षा करनेवाले अंग्रेज या तो मार डाले गए या भाग खड़े हुए। सिपाही तोपों को छावनी के मैदान मे ले आये। इतने में कर्नल सिपसन वहा आया। उसने पूछा—"किसकी आज्ञा से तोपे यहा लाई गई हैं?" एक सिपाही की बंदूक ने गरजकर उसके प्रश्न का उत्तर दिया, पर वार खाली गया। सिपसन वहा से भाग खडा हुआ। किले मे पहुंचते ही उसने पहली आज्ञा यह दी कि सिपाहियों को निःशस्त्र किया जाय। यह काम उसने सिख सेना के अफसरों को सौपा। किले मे ६ नबर पलटन के सिपाही थे। उनके शस्त्र अत्यंत अपमानजनक ढंग से रखवा लिये गए और उन्हे किले से बाहर निकाल दिया गया।

इस समय अगर प्रयाग का किला अंग्रेजों के हाथों से निकल जाता तो निस्सदेह उत्तर भारत के विद्रोह को दबाना अंग्रेजो के लिए कठिन हो जाता। प्रयाग और काशी से अशातिग्रस्त क्षेत्रों मे गोरे सैनिक, रसद, युद्ध-सामग्री पहुचाई जाती थी। लेकिन प्रयाग का किला सिखों के देशद्रोह और उनकी अंग्रेज-भक्ति के कारण विद्रोहियों के हाथो मे नही आया। किले मे युद्ध-सामग्री विपुल मात्रा में थी। यह अगर विद्रोहियो को मिल जाती तो उत्तर भारत का विद्रोह और अधिक प्रबल हो उठता। किले के बाहर चारों ओर अशाति की ज्वाला भड़क उठी थी। किसी भी अंग्रेज को देखते ही लोग उसका पीछा करते और मार डालते। अंग्रेजों के मकान लूटे और बाद में जला दिये गए। कई अंग्रेज मार डाले गए। जेल से कैदी मुक्त कर दिये गए। गावो में भी लोगों ने अंग्रेजो द्वारा नियुक्त जमीदारों को भगा दिया। अंग्रेजी राज्य का कोई चिह्न भी रखना उन्होंने उचित न समझा।

प्रयाग का खजाना, जिसमें तीस लाख रुपये थे, लूट लिया गया। आरंभ में यह निश्चय हुआ कि यह धन दिल्ली मे सम्राट को नजर किया जाय।

: १० :

देशी राज्यों में विस्फोट

उत्तरी ब्रिटिश भारत मे क्राति का विस्फोट इतनी भयकरता और तेज़ी से हुआ कि वहा अग्रेजी शासन प्राय. नष्ट ही हो गया। अग्रेजो की प्रतिष्ठा सर्वसाधारण की दृष्टि मे बिल्कुल गिर गई। सब लोग समझने लगे कि अग्रेजी राज्य का अत दूर नही। अमीर-गरीब, हिंदू-मुसलमान, सभी जाति और वर्ण के लोग अग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिए उठ खडे हो गए। वर्तमान उत्तर प्रदेश का अधिकाश भाग उस समय के पश्चिमोत्तर प्रात मे था। इस विराट क्राति का यही केद्र था। काशी से लेकर दिल्ली तक के सारे भू-भाग मे क्राति की लपटें व्याप्त थी। पर इस प्रात के उत्तर-पश्चिम मे अनेक देशी रियासते थी। मध्य भारत एजेसी मे इदौर, ग्वालियर, धार, भोपाल, देवास और जावरा की रियासते थी। उसी प्रकार राजपूताना मे जयपुर, जोधपुर आदि १८ रियासते थी।

मध्य भारत एजेसी का केद्र-स्थान इदौर था। पोलिटिकल एजेट यही रहता था। राजपूताना का केद्र अजमेर था। देशी रियासतो मे अग्रेजो का प्रतिनिधि रहता था, जो रेज़ीडेट कहलाता था।

इन रियासतो मे दो प्रकार की सेना थी। एक तो राजा की खुद की, दूसरी उसकी रियासत की रक्षा के लिए सहायक संधि के अनुसार रखी गई सेना। पहली सेना पर उस रियासत के शासक का पूर्ण नियत्रण रहता था। दूसरी सेना का खर्च यद्यपि राजा के मत्थे ही था, तथापि इसका नियत्रण अग्रेज सरकार के हाथो मे था।

रियासतो मे रहनेवाली अग्रेजी सेना के देशी सिपाही देशव्यापी उथल-पुथल से पूर्णरूप से अवगत थे। इन सेनाओ मे भी क्राति-केद्र स्थापित हो चुके थे। इनमे विद्रोह करने का निश्चय हो चुका था। देशी राजाओ की सेनाओ मे भी अशाति बढ रही थी। इन सेनाओ मे अंग्रेज-

विरोधी भावना प्रबल रूप से विद्यमान थी । लेकिन फिर भी रियासतो मे विद्रोह का आरंभ अग्रेजी सरकार के सिपाहियो से ही हुआ । राजाओं की सेनाए बाद मे सम्मिलित हुई ।

देशी राजाओ ने क्राति मे साथ नही दिया । ये लोग अपने पूर्वजो के पराक्रम तथा स्वातत्र्यप्रियता को भूल चुके थे । अधिकाश रियासतो के शासक नाबालिग थे अथवा अनुभवहीन नौजवान थे । इनमे से किसीने भी युद्धक्षेत्र का कभी मुह नही देखा था । इन रियासतो मे एक भी राजा ऐसा नही निकला, जिसने क्रातिकारियो का साथ दिया हो ।

अन्य रियासतो की तरह ग्वालियर की सेना मे भी क्रातिकारी विचार फैल चुके थे । सैनिको ने महाराज से कहा—"हमे अग्रेजो पर आक्रमण करने की आज्ञा दीजिये । फिरगियो के विरुद्ध हमारा नेतृत्व कीजिये । हम आपको तथा सारे देश को अंग्रेजो की गुलामी से मुक्त करेगे ।" पर २३ वर्षीय राजा जयाजीराव शिदे की नसो मे तो ठडा पानी बह रहा था—उसमे गरमी कहा से आती ! इदौर के महाराज होल्कर को भी उसकी सेना ने अग्रेजो के विरुद्ध खडे होने को कहा, लेकिन वह भी तैयार नही हुआ ।

१६ जून १८५४ को राजस्थान के पोलिटिकल एजेट सर जॉन लारेस ने आबू से जो पत्र सर जॉन को लिखा, उसमे उसने राजपूत राजाओ के सबंध में लिखा—"आपका यह सोचना ठीक है कि राजपूत जाति असतुष्ट मदकचियो की जाति है । टॉड द्वारा राजपूतो का वर्णन भूतकाल के लिए भले ही सत्य हो, पर आज तो वह वर्णन हास्यास्पद लगता है। उनमे आज ईमानदारी तथा सत्यता अगर है भी तो, वह नाम-मात्र को ही है । उनमे पुरुषार्थ का तो सर्वथा अभाव है । हर रियासत मे कुछ-न-कुछ गड़बड़ी है ही ।"

राजपूतो के उपरोक्त स्तुति-स्तोत्र मे कितनी वास्तविकता थी ! पश्चिमोत्तर प्रात मे यद्यपि क्राति की ज्वाला अपने विकराल रूप से प्रकट हुई, तथापि पास की रियासतो पर इसका तत्काल कोई विशेष प्रभाव

पडता दिखाई नही दिया। तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रांत की राजधानी आगरा थी जहा गवर्नर रहता था। आगरा के पूर्व तथा उत्तर भागो मे अशाति फैलते ही गवर्नर कालविन ने मध्य भारत तथा राजपूताने की रियासतो की ओर दृष्टि फेकी। वह जानता था कि अगर कही विद्रोह की ज्वाला इन रियासतो तक पहुंच गई, तो फिर अंग्रेजो के सकटो की सीमा नही रहेगी। इसी कारण इन रियासतो पर कालविनसाहब की अत्यत सूक्ष्म दृष्टि लगी हुई थी।

कालविन ने इन रियासतो के शासको को सहायता के लिए लिखा। अनेक शासको ने बडे उत्साह से उसके आदेश का पालन किया। ग्वालियर और धौलपुर के राजाओ ने तत्काल सहायता भेजी, जिसके कारण कई अंग्रेजो की रक्षा संभव हुई।

ग्वालियर

ग्वालियर आगरा से ६५ मील दूरी पर बसा हुआ है। इस समय ग्वालियर के महाराजा जयाजीराव शिदे के पास दस हजार सैनिक थे। अंग्रेज अफसरो के अधिनायकत्व मे आठ हजार सैनिक तथा छब्बीस तोपें थी। जयाजीराव अंग्रेजो का बडा भक्त था। कालविन का सहायता का आदेश आते ही उसने अपने विश्वासपात्र अंग-रक्षकों की एक टुकड़ी आगरा भेजी।

इस समय ग्वालियर की सेना मे असतोप की आग भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। रात को क्राति के प्रचारक सेना मे आते और सिपाहियो को विद्रोह करने के लिए उकसाते। सिपाहियों पर इनका जादू चलता दिखाई दे रहा था। सैनिक हाथों मे गगाजल लेकर अंग्रेजो का नाश करने की प्रतिज्ञा करते।

सेना मे इस बढते असंतोष से महाराजा तथा रेजीडेट मैकफर्सन पूरी तरह परिचित थे। मेरठ और दिल्ली के समाचारो से अंग्रेजों की हिंदुस्तानी फौज मे विद्रोह की भावना भडक उठी। रेजीडेट घबड़ा

गया । अब उसे सेना पर विश्वास नही रहा । उसने गवर्नर कालविन को तार दिया कि महाराजा शिदे के अग-रक्षको को ग्वालियर शीघ्र वापस भेज दिया जाय ।

रियासतो मे रहनेवाली अग्रेजी सेना मे विद्रोह के चिह्न प्रकट होने लगे । ४ जून को नीमच छावनी मे विद्रोह हुआ । ७ जून को झासी की सेना ने विद्रोह कर दिया । ग्वालियर भी शिदे के लाख प्रयत्न करने पर भी अछूता न रह सका । १४ जून को प्रात काल जब अग्रेजी सेना का ब्रिगेडियर सडक पर जा रहा था तो किसी भी सिपाही ने उसे सलाम नही किया । वह समझ गया कि कुछ दाल मे काला है । १४ जून को ही एकाएक समाचार फैला कि अग्रेज सिपाही हिदुस्तानी सिपाहियो पर हमला करने आ रहे है । बस सिपाही सशस्त्र होकर सावधान हो गए । चारो ओर हलचल मच गई । अग्रेजो ने गडबडी देखी तो वे भी मुकाबले के लिए तैयार हो गए । अग्रेजो पर आक्रमण आरभ हुआ । ग्वालियर मे २० अंग्रेज मारे गए । अग्रेज स्त्रिया और बच्चे जान बचाने के लिए जगल मे छिप गए । मेजर ब्रेक को सिपाहियो ने काट डाला । कई अग्रेज भागकर रेजीडेसी अथवा महाराज के महल मे पहुचे और उन्होने वही आश्रय लिया । अंत मे महाराज और रेजीडेट ने अग्रेज पुरुष-स्त्रियो और बच्चो को आगरा रवाना करने का निश्चय किया । रेजीडेट मैकफर्सन ग्वालियर मे ही रहना चाहता था ताकि वह महाराज को विद्रोहियो से मिलने से रोक सके । पर महाराज ने उससे कहा कि अगर वह ग्वालियर मे रहेगा तो विद्रोही सिपाही अवश्य हमला करेगे । यह बात मैकफर्सन की समझ मे आ गई । इस प्रकार उसे भी महाराज ने आगरा रवाना कर दिया । अग्रेजो के इस दल पर रास्ते मे भी आक्रमण हुए । कई अग्रेज रास्ते मे मारे गए, पर किसीने भी स्त्रियो और बच्चो पर आक्रमण नही किया । महाराजा धौलपुर ने सकट मे पडे अनेक अग्रेजो की सहायता की । उसने कई हाथी भेजे, जिन पर बिठाकर अग्रेज धौलपुर पहुचाये गए । २२ जून तक ये सब आगरा पहुच गए ।

महाराजा शिदे को कई लोगो ने विद्रोह मे शामिल होने की सलाह दी । विद्रोह के नेता बनने, पेशवाई की पुन स्थापना का श्रेय लेने और देश तथा धर्म के रक्षक बनने की बात कही, पर महाराज ने एक न सुनी । उसने तथा उसके दीवान दिनकरराव राजवाडे ने इस समय अग्रेजो को सहायता दी, जो अग्रेजो के लिए अत्यत लाभदायक सिद्ध हुई । अग्रेजो के लिए यह जीवन-मरण का समय था । महाराजा शिदे के हाथो मे अग्रेजो का भविष्य खेल रहा था । के ने अपने इतिहास मे लिखा है—"चार मास तक अग्रेजी सरकार का भाग्य शिदे के हाथ मे रहा ।"

ग्वालियर से २०० मील दूर नसीराबाद मे एक छावनी थी । इसमे अग्रेजी सेना की दो पैदल पलटने थी । गोलदाजो की एक टुकडी भी थी । एक बबई की सेना थी । २८ मई को सिपाहियो ने तोपो पर अधिकार कर लिया और विद्रोह का झडा खडा कर दिया । बबई की सेना विद्रोहियो से नही मिली । पर जब अग्रेज अफसरो ने उसमे विद्रोहियो पर हमला कर तोपे छीन लेने की आज्ञा दी तो उसने इस आज्ञा को भी न माना । सिपाहियों ने अफसरो पर तोपे दागी । दो अफसर मारे गए । कई घायल हो गए । अग्रेज अपने बाल-बच्चो को लेकर वहा से भाग खडे हुए । इसके बाद यहा के सिपाही दिल्ली रवाना हो गए ।

नीमच की छावनी मे दो पैदल और एक घुडसवार सेना थी । पहले नीमच ग्वालियर मे था, पर अग्रेजों ने यहा अपनी छावनी स्थापित कर इसे अपने अधिकार मे ले लिया था । नसीराबाद के विद्रोह का यहा समाचार आया, तो यहां के सैनिको ने भी विद्रोह कर दिया । ३ जून को यहा के सिपाहियो ने अग्रेजों के बंगले जला दिये । लेकिन यहा किसी भी अग्रेज की हत्या नही की गई । इसके बाद यहा के सिपाही भी दिल्ली रवाना हो गए ।

इंदौर

मध्य भारत मे इदौर की रियासत को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है ।

उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलानेवाला आगरा-बबई मार्ग यही से होकर जाता है । इस प्रकार उत्तर और दक्षिण भारत के बीच यातायात और आवागमन का यह एक महत्वपूर्ण स्थान है । इदौर पर होल्कर वंश राज्य करता था ।

इंदौर से कोई १२ मील की दूरी पर अग्रेजो की एक छावनी महू नामक स्थान मे थी । मई के महीने मे इस छावनी मे २३ नंबर की हिदुस्तानी पैदल सेना थी । इसका बडा अफसर कर्नल प्लाट था । इसमे १६ अग्रेज और ११७६ हिदुस्तानी सैनिक थे । घुडसवार सेना मे १३ अग्रेज और २८२ हिदुस्तानी थे और जो तोपखाना यहा था, उसमे ६१ अग्रेज तथा ६८ हिंदुस्तानी थे ।

पहले राबर्ट हेमिल्टन इस रियासत का रेजीडेट था । पर अस्वस्थता के कारण उसने अवकाश ले लिया था तथा उसके स्थान पर कर्नल डूरेड रेजीडेट नियुक्त हुआ था। उसने ५ अप्रैल को कार्य-भार संभाला । कर्नल डूरेड अत्यत कडा व्यक्ति था । अनुशासन का कठोरता से पालन कराता था । नम्रता और व्यवहार-कुशलता तो उसे छू भी नही गई थी । हिदुस्तानियो को वह घृणा की दृष्टि से देखता था । महाराजा होल्कर तक से उसका व्यवहार अपमानजनक रहता था। महाराजा होल्कर उस समय २१ वर्ष का नवयुवक था । डूरेड हर समय उसे दबाने का प्रयत्न करता । इस प्रकार महाराजा और डूरेड के आपसी संबंध तनाव के थे ।

इंदौर मे रहनेवाली महाराजा होल्कर की सेना मे तथा महू मे रहनेवाली सेना मे संदेशो का आदान-प्रदान होता था । दोनो स्थानो की सेनाओं ने विद्रोह करने का निश्चय किया था । १ जुलाई को प्रातःकाल इंदौर मे क्राति का सदेश देनेवाली तोप गरज उठी । सादत खा नामक व्यक्ति सात-आठ सैनिको को साथ लेकर चारो ओर चिल्लाता हुआ घूमा— "भाइयो, अग्रेजो पर हमला करो । उन्हे मार डालो । यही महाराज की आज्ञा है ।" सेना के सिपाही उसके साथ हो लिये । विद्रोह आरभ हुआ । सिपाहियो ने रेज़ीडेसी पर आक्रमण कर दिया । रेज़ीडेंसी पर

तोपों के गोले बरसने लगे । भोपाल की कुछ पैदल तथा घुडसवार सेना रेज़ीडेंसी की रक्षा के लिए वहा पर थी । उसके अफसर कर्नल ट्रैवर्स ने अपनी सेना को विद्रोहियो पर आक्रमण करने की आज्ञा दी । पर सैनिको ने उसकी आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया । इतना ही नही, उन्होंने कर्नल पर ही आक्रमण किया । उसका घोडा घायल हो गया । उसकी तलवार टूट गई । खुद कर्नल किसी प्रकार प्राण बचाकर भागने मे सफल हुआ ।

हिंदुस्तानियो से घृणा करनेवाला, प्रत्येक हिंदुस्तानी—यहा तक कि होल्कर को भी तुच्छ गिननेवाला और वीरता की डीग हाकनेवाला डूरेंड परिस्थिति का सामना करने के बजाय वहा से भाग खडा हुआ । अंग्रेजो के बंगले जला दिये गए। डूरेंड ने अंग्रेज स्त्रियो और बच्चो को लेकर भोपाल की बेगम के यहा शरण ली ।

इसी दिन १० बजे रात को अंग्रेजो की छावनी महू मे सिपाहियो ने कई घरो को आग लगा दी । तोपखाने का अफसर कर्नल प्लाट घोड़े पर सवार होकर सिपाहियो को समझाने गया । एक सिपाही ने उस पर गोली चला दी, जिससे वही उसकी मृत्यु हो गई । इसी प्रकार घुडसवारो के अफसरो को भी सिपाहियो ने तलवार से मौत के घाट उतार दिया । अंग्रेजो ने इन सिपाहियो पर तोपो से हमला किया । विद्रोही महू से इदौर के लिए रवाना हो गए ।

तीन दिन तक इदौर मे पूर्ण अराजकता रही । रेजीडेंसी का खजाना और सभी ईसाइयो के मकान लूट लिये गए । होल्कर ने लोगो को समझाने का प्रयत्न किया । लोगो ने उसके सामने अंग्रेजो के अत्याचारों का वर्णन किया और प्रार्थना की कि वह नेतृत्व करके फिरगियो से देश और धर्म की रक्षा करे । पर होल्कर ने उत्तर दिया—"मै अपने पूर्वजो की तरह वीर और पराक्रमी नही हू । पर बच्चो और स्त्रियों की हत्या मुझे पसद नही ।" सिपाहियों ने लूट का धन तथा तोपे आदि लेकर दिल्ली का रास्ता पकडा ।

आगरा

जून मास के अंतिम सप्ताह मे एकाएक समाचार आया कि नीमच तथा नसीराबाद के विद्रोही सैनिक आगरे पर आक्रमण करने के लिए बढ रहे है। इससे आगरा के अंग्रेजो मे तहलका मच गया। गवर्नर कालविन ने सभी अंग्रेजो को आगरे के किले मे ले जाकर रखा। विद्रोही सैनिक आगरे पर बढते ही चले आ रहे थे। उनके साथ २६०० सैनिक तथा १६ तोपे थी। इसी समय कालविन को कोटा तथा भरतपुर से सैनिक सहायता मिली। नवाब सैफुल्ला अपनी सेना के साथ खुद आगरे मे था। भरतपुर से ३०० घुडसवार तथा २ तोपे भी अंग्रेजो के सहायतार्थ आई। कोटा के सैनिक विद्रोही सिपाहियो पर आक्रमण करने के लिए भेजे गए, पर वे सभी विद्रोहियो के साथ शामिल हो गए। सैफुल्ला के सैनिको ने भी रुख बदला। अंत मे ब्रिगेडियर पावेल आठसौ सैनिको के साथ विद्रोहियो का सामना करने पहुचा। विद्रोहियो ने बडे उत्साह और दृढता से आक्रमण किया जिससे अंग्रेजी सेना के पैर उखड गए और उसने भागकर किले मे शरण ली। अंग्रेजो की इस पराजय से उनकी रही-सही प्रतिष्ठा भी नष्ट हो गई।

आगरा मे अशाति आरंभ हुई। अंग्रेजो के मकान जला दिये गए। जो ईसाई बाहर रह गए थे, उन्हे मार डाला गया। विजयी सिपाहियो ने किले पर आक्रमण करना आवश्यक न समझा। वे सीधे दिल्ली की ओर रवाना हो गए।

: ११ :

झांसी की गौरव-गाथा

महारानी लक्ष्मीबाई से अंग्रेजो ने सभी-कुछ छीन लिया था। डलहौजी की सर्व-भक्षकारी नीति ने झांसी का राज्य हडप लिया था। किले से महारानी को बाहर कर दिया गया। वह नगर के अपने महल मे एक

हिंदू विधवा की तरह अत्यत सयम और तपस्या मे अपना जीवन बिता रही थी। अंग्रेजो द्वारा किये गए अपमान और अन्याय की टीस उसके हृदय मे सदा उठा करती थी, पर वह सभी बातो को पुराण-श्रवण, ईश्वराराधन और धर्म-कर्मो मे भुला देने का प्रयत्न करती थी। पर अग्रेजो की नीति ने उसे शातिपूर्वक काल-यापन नही करने दिया। वे समझते थे कि हिंदू विधवा बेचारी कर ही क्या सकती है ? उनके प्रत्येक अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहन करने के सिवा उसके पास चारा ही क्या था ? अग्रेजो ने तरह-तरह से उसका अपमान करना आरभ किया।

राज्य ले लेने के बाद अग्रेजो ने उसे पाच हजार रुपये मासिक पेशन देने का निश्चय किया था। आरभ मे महारानी ने इस पेशन को लेने से इन्कार कर दिया, पर गभीरतापूर्वक सभी परिस्थितियो पर विचार करने के बाद उसने पेशन लेना आरभ कर दिया। पर इतनी बडी (!) रकम एक विधवा रानी को देना पश्चिमोत्तर प्रात के गवर्नर कालविन ने उचित न समझा। उसने महारानी से कहा कि उसे अपने स्वर्गीय पति के कर्ज को इसी पेशन मे से अदा करना पडेगा। जबतक यह रकम अदा न होगी, तबतक उसे पेशन नही मिलेगी। महारानी ने उत्तर दिया—"तुम लोगो ने मेरे पति का राज्य हडप लिया। सारा खजाना जप्त कर लिया, अत कर्ज अदा करने का उत्तरदायित्व अग्रेजो पर है, मुझ पर नही। मेरे पति का उत्तराधिकारी न मुझे माना गया और न मेरे पुत्र दामोदर-राव को। अतएव कर्ज का दायित्व हम पर कैसे आ सकता है ?" कितना तर्कसगत और उचित उत्तर था, पर अग्रेजो के लिए तर्क हो ही क्या सकता था ? अत मे उसकी पेशन कर्ज का बहाना कर वद कर दी गई।

महारानी का गोद लिया हुआ पुत्र दामोदरराव जब सात वर्ष का हुआ तो उसका उपनयन-सस्कार करने की चिता हुई। भले ही अग्रेज उसे झासी का उत्तराधिकारी न मानते थे, पर महारानी लक्ष्मीबाई तो उसे झासी की गद्दी का सच्चा उत्तराधिकारी मानती थी। अतः वह उसका यज्ञोपवीत

उसके पद के अनुकूल ही करना चाहती थी। पर अंग्रेजो ने उसे निर्धन बना दिया था। उन्होंने उसके पति का राज्य ही नही, वरन उनकी व्यक्तिगत संपत्ति भी अत्यत निर्लज्जतापूर्वक हडप कर ली थी। महारानी लक्ष्मीबाई ने अग्रेजो को लिखा कि उसके पति गगाधरराव की सपत्ति से एक लाख रुपये दामोदरराव के यज्ञोपवीत के लिए दिये जाय। कालविन ने बडी कठिनाई से यह धन इस शर्त पर देना स्वीकार किया कि अगर वयस्क होने पर दामोदरराव इस धन को मागे तो वह धन उसे लौटाना पडेगा। इसके लिए महारानी को चार विश्वस्त जमानतदार देने पडे। महारानी के हृदय मे सुप्त वीरता को अग्रेज इस प्रकार ठोकर दे-देकर जगा रहे थे।

अंग्रेजो के अधिकार मे जाते ही झासी मे गो-वध आरभ हो गया। राजयोगिनी महारानी गोमाता की हत्या से विह्वल हो उठी। उसने अंग्रेज अधिकारियो को लिखा कि झासी मे वे पहले की तरह गो-वध बद कर दे, पर अग्रेज तो उसका अपमान करने पर तुले हुए थे। उन्होंने उसकी इस प्रार्थना को भी ठुकरा दिया।

इससे महारानी लक्ष्मीबाई का आत्माभिमान, धर्माभिमान और देशाभिमान जाग्रत हुआ। उसने अग्रेजो को लिख भेजा कि झासी मे हिंदू धर्म के विरुद्ध जो कार्य हो रहे है, वे उसके लिए असह्य है। अत वह काशी मे जाकर शातिपूर्वक अपने जीवन के रहे-सहे दिन काटना चाहती है। अग्रेजो ने जिस समय झासी पर अधिकार किया था, उस समय "मेरा झासी नही देगा"—कहनेवाली वीरागना ने जब खुद ही झासी छोडने का प्रस्ताव किया, तो उसके हृदय पर क्या बीत रही होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

नानासाहब पेशवा उसका माना हुआ भाई था। वह इस समय क्राति का नेतृत्व कर रहा था। नानासाहब और महारानी दोनों अग्रेजो के अन्याय के शिकार थे। अतएव महारानी के हृदय ने अगर इस क्राति में अपने भाई 'नाना' का साथ देने का निश्चय किया तो उसमे आश्चर्य

ही क्या है ! नानासाहब और उसका पत्र-व्यवहार तो होता ही होगा। दुर्भाग्य से इनमे से एक भी पत्र प्राप्त नही है। लक्ष्मीबाई ने अगर इस समय अग्रेजी सत्ता को नष्ट करने के प्रयत्न मे अपना सर्वस्व दांव पर लगा देने का निश्चय किया तो यह स्वाभाविक ही था।

इस समय झासी मे १२ नंबर की पैदल सेना थी। १४ नंबर के घुडसवारों का भी एक भाग यहा पर था। कुछ गोलदाज भी थे। इन सबका सेनाधिकारी था डनलप। इस सेना मे क्रातिकारी विचार फैल चुके थे। रोजाना तरह-तरह के समाचार आते थे। प्रत्येक सिपाही समझता था कि शीघ्र ही कुछ होनेवाला है। जब मेरठ और दिल्ली की घटनाओ के समाचार यहा पहुचे तो सेना की अशाति और बढी। सिपाही कुछ-न-कुछ करने के लिए उतावले होते जा रहे थे। जब कानपुर के विद्रोह का समाचार आया तो सिपाहियो की विद्रोहाग्नि और भडक उठी।

पर अंग्रेज अफसरो को इसका पता न था। १८ मई को कमिश्नर स्कीन ने आगरा के गवर्नर कालविन को पत्र लिखा था—"यहा अशांति की आशका नही है। यहां के सिपाही विश्वास के योग्य है। मेरठ और दिल्ली की घटनाओ को वे घृणा की दृष्टि से देखते है।" जून मास मे दो-एक अग्रेज अफसरो के बंगले जले। अब अग्रेज चौके। उन्होने इन अग्निकाडों को विद्रोह की पूर्व-सूचना माना। अब वे आत्मरक्षा का प्रयत्न करने लगे।

सकट की इस घडी मे सैनिक अफसर कैप्टन गार्डन ने महारानी से सहायता मागी। महारानी के पास थोडी-सी सेना थी। उसने अपनी सेना को बढाने की आज्ञा मांगी। अग्रेजो ने आज्ञा दे दी। सभी अंग्रेज स्त्रियो और बच्चों को महारानी ने अपने महल मे लाकर रखा। उनकी रक्षा के लिए पहरेदार नियुक्त किये गए। पर यहा से वे सभी किले मे पहुंचा दिये गए। अग्रेजो ने रानी के महल की अपेक्षा किले को अधिक सुरक्षित समझा।

७ जून को झासी की सेना ने विद्रोह कर दिया। सबसे पहले कैप्टन गार्डन उनकी गोली का शिकार हुआ। इसके बाद सार्जेंट मेजर न्यूटन

तथा कैपवेल मारे गए । किले मे अग्रेजो की सख्या, स्त्रिया और बच्चे मिलाकर, ५५ थी । अग्रेज समझते थे कि किले के भीतर वे सुरक्षित रह सकेगे और उनको किसीकी सहायता की आवश्यकता नही होगी । महारानी ने मुशी अयोध्याप्रसाद द्वारा अग्रेजो को सदेश भेजा कि अगर वे चाहे तो महारानी ठाकुरो को बुलाकर उनकी सहायता की व्यवस्था कर दे । अग्रेजो ने इसका उत्तर दिया—"हम अपनी रक्षा कर लेगे । आप चिता न करे ।" इस पर भी जब महारानी को यह पता लगा कि किले मे अग्रेजो के पास भोजन-सामग्री नही है, तो वह तीन दिनो तक रात मे विद्रोहियो से छिपाकर दो मन आटे की रोटिया भेजती रही ।

किले मे अग्रेजो की स्थिति अत्यंत निराशाजनक थी । वे बाहर चारो ओर से अपनी ही सेना के विद्रोही सिपाहियो से घिरे थे तथा भीतर भी जो सैनिक थे, वे भी उनके शत्रु बन गए थे । कई बार उन्होने किले का फाटक खोलने का भी प्रयत्न किया, पर अग्रेज सावधान थे, अत वे सफल न हो सके । अत मे अग्रेजो के पास न खाने को रह गया और न गोली-बारूद ही । इसलिए उन्होने आत्म-समर्पण कर दिया ।

किले से बाहर आते ही विद्रोही सैनिको ने उन्हे पकड लिया और जोकनबाग ले गए । वहा इन्हे तीन पक्तियो मे खडा किया गया । प्रथम पंक्ति में पुरुप थे । दूसरी मे अग्रेज स्त्रिया और तीसरी मे बच्चे । घुडसवार सेना के काले खा ने इनको मार डालने की आज्ञा दी और जेल के दारोगा ने इस आज्ञा का पालन किया । इस अवसर पर यहा ७५ अग्रेज पुरुष १९ स्त्रिया और २३ बच्चे मार डाले गए ।

बाद मे अग्रेजों ने इस काड का दोष रानी पर लगाया, लेकिन यह बात झूठी है । इस हत्याकांड से दो अंग्रेज पुरुष और एक महिला किसी प्रकार बचकर आगरे पहुंचे । उनमे से एक मार्टिन था । उसने दामोदर-राव को इस बारे मे एक पत्र मे लिखा—"आपकी माता के प्रति अग्रेजो ने बहुत अन्याय किया । उन पर झूठे आरोप लगाये गए। मेरे सिवा किसीको सच्ची बात मालूम नहीं । १८५७ के हत्याकाड मे आपकी माता का जरा

भी हाथ न था। जब अग्रेज किले मे गए तो उन्होने तीन दिन तक खाना भेजा। करेरा से सौ आदमी बुलाकर बदूको से सुसज्जित कर आपकी माता ने उन्हे हमारी सहायता के लिए किले मे भेजा। पर अग्रेजो ने इन्हे एक दिन किले मे रखकर बाहर भेज दिया। इसके बाद रानी ने अग्रेजो से कहा कि वे दतिया मे शरण ले। पर अग्रेजो ने यह भी न माना। अत मे अपनी ही पुलिस और सिपाहियो के हाथो वे मारे गए।"

इतिहासकार के ने लिखा है—"विश्वस्त आधार पर मुझे सूचना मिली है कि इस हत्याकाड के समय रानी का कोई कर्मचारी उपस्थित नही था। यह सारा कार्य हमारे ही भूतपूर्व कर्मचारियो द्वारा किया गया था। अनियमित घुडसवारो के अफसर ने यह खूनी आज्ञा निकाली और हमारा जेल का दारोगा इसको पूरा करने मे सबसे आगे था।"

इस हत्याकाड के बाद विद्रोहियो ने खजाना लूटा। जेल के कैदियो को मुक्त किया। फिर ये विद्रोही महारानी के महल के सामने पहुचे और दो लाख रुपये मागने लगे। उन्होने रानी से कहा कि अगर वह इन्हे यह धन न देगी तो वे झासी की गद्दी पर दूसरे उत्तराधिकारी—सदाशिव नारायण-राव—को बैठा देगे। महारानी ने परिस्थिति को समझकर अपने अलकार विद्रोहियो को सौप दिये। इसके बाद विद्रोही सेना दिल्ली के लिए रवाना हो गई।

उस समय उत्तर भारत की यात्रा करनेवाले वरसईकर गोड्से ने "माइना प्रवास" नामक अपने मराठी ग्रथ मे उस समय की इस घटना के सबध मे लिखा है—"विद्रोह की निश्चित तिथि से एक दिन पहले छावनी के अग्रेज घबडाकर गार्डनसाहब के साथ बाईसाहब (महारानी) से मिले और बोले—'कल हम लोगो पर सकट आना निश्चित है। अच्छा यही हो कि आप अपने राज्य की व्यवस्था करे। झासी के दक्षिण मे २५ लाख रुपये की आमदनी का जो भू-भाग है, उसकी भी व्यवस्था अग्रेजी राज्य पुन. स्थापित होने तक आप ही करे और अगर आप हमारी रक्षा करेगी तो हम आपके बडे उपकृत होगे।' साथ ही राज्य के सब कागजात रानी

के सामने रख दिये । उस समय बाईसाहब ने उत्तर दिया—‘जब शांति थी, तब मैंने राज्य मागा था, पर वह मुझे न मिला। अब दगे मे आप उसे न रख सकेंगे । इसीलिए उसे आप मुझे सौप रहे हैं । कलकत्ता मे सभा हुई, पर मैं नही बुलाई गई । मेरे पति ने मृत्यु के समय प्रार्थना की थी कि उनके गोद लिये पुत्र के नाम पर राज्य चलाने का मुझे अधिकार मिले, पर वह भी नही मानी गई और मुझसे यह कहा गया कि कानून के अनुसार गोद लिया ही नही जा सकता, और अगर लिया भी जाय तो वह व्यक्तिगत सपत्ति का तो उत्तराधिकारी हो सकता है, पर राज्य का वारिस नही हो सकता । इसके बाद मैंने सरकार से केशवपन (शिर के बाल मुडाने) के लिए प्रयाग जाने की आज्ञा मागी, वह भी मुझे नही दी गई । इन हालतो मे तो यही उचित है कि अब आप अपनी व्यवस्था आप करे । अगर मैं आपको आश्रय देती हू तो देशी पलटन हमें जलाकर खाक कर देगी । अतएव आप जिस प्रकार सभव हो, उस प्रकार अपनी रक्षा करे ।’ यह कहकर बाईसाहब उठकर चल दी । साहब लोग भी वहा से चल दिये ।”

इस प्रकार झासी मे अंग्रेजी राज्य की समाप्ति हो गई । जनता को कष्ट से बचाने के लिए महारानी ने शासन-सूत्र अपने हाथो मे लिया । गोडसे के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि महारानी ने अग्रेजो को आश्रय देने से इन्कार कर दिया था । भारतीय इतिहासकार अक्सर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि महारानी लक्ष्मीबाई स्वेच्छा से क्राति मे नही पडना चाहती थी, मगर परिस्थितियों ने उसे बाध्य किया और इसलिए उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध क्रांति का नेतृत्व ग्रहण करना पडा । पर यह बात सत्य नही है। महारानी के स्वभाव और चरित्र को समझ लेने पर यह कौन कह सकता है कि उसके जैसी आत्माभिमानिनी और वीर स्त्री अपने अपमान और अन्याय को शातिपूर्वक सहन कर लेती ? यह कहना कि वह अपने प्रति किये गए अपमान को भूलना चाहती थी, उसका अपमान करना है । उसने अपने भाई “नाना” की तरह खूब सोच-

समझकर क्रांति का पथ चुना था। उसी पथ पर वह एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह बढ रही थी। इसी कारण जब उसने झासी मे एक भी अग्रेज न रहने पर, शासन-व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया, तो उसने घोषणा कराई—"खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुकुम रानी लक्ष्मीबाई का।" इस घोषणा मे क्राति की योजनानुसार महारानी ने मुल्क को मुगल सम्राट का ही कहा। इस घोपणा मे अग्रेज सरकार का कही उल्लेख नही।

सबसे पहले महारानी ने मृत अग्रेजो की लाशो को इकट्ठा करवाया तथा उनको प्रथानुसार दफन करवाया।

महारानी लक्ष्मीबाई ने राज्य की सुदर व्यवस्था की। उसने विभिन्न विभागो के अधिकारियो की नियुक्ति की। कर-वसूली तथा न्याय-विभाग का सगठन किया। सिपाही स्थान-स्थान पर गश्त लगाते और चोर-डाकुओ से प्रजा की रक्षा करते। उसके इन प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप शीघ्र ही झासी मे शाति स्थापित हो गई।

रानी का एक दूर का रिश्तेदार था, सदाशिव नारायण। उसने सोचा कि झासी पर अधिकार कर राजा बनने का यह सर्वोत्तम अवसर है। महारानी स्त्री होने के कारण विरोध नही कर सकेगी। उसने थोडी सेना इकट्ठी कर ली और झासी की ओर बढने लगा। उसने झासी से तीस मील दूर करेरा नामक किले पर अधिकार कर लिया और 'महाराजा झासी' की पदवी धारण की। महारानी ने भी उसका सामना करने के लिए नई फौज भरती की। पुरानी तोपो की सफाई की गई। नगर मे बारूद और गोलिया तैयार करने के कारखाने खोले गए। महारानी ने पूरी तैयारी करने के बाद आक्रमण कर दिया। महारानी की तलवार के सामने सदाशिव नारायण कितने दिन टिकता? उसे हारकर भागना पडा।

इसके थोडे ही दिन बाद ओरछा के दीवान नत्था खा ने दतिया की सेना की सहायता से झासी पर आक्रमण किया। नगर को घेर लिया गया।

नत्था खा ने सोचा कि महारानी स्त्री है। अत उससे राज्य छीन लेना कुछ कठिन नही होगा। लेकिन महारानी ने मर्दाना वेश धारण कर किले के बुर्ज पर खड़ी होकर युद्ध का सचालन किया। बुदेलखड के वीर ठाकुर भी उसकी सहायता को आ गए। नत्था खा को मुह की खानी पडी और रण-क्षेत्र से भागना पडा।

इन सकटो मे भी महारानी ने अपनी शासन-व्यवस्था शिथिल नही होने दी। प्रजा की भलाई और उसे सुखी बनाना उसका एकमात्र ध्येय था। वह रोज पुरुष-वेश मे दरबार मे उपस्थित होती। राज-काज स्वत: देखती। उसके राज्य-काल मे प्रजा को बहुत सुख मिला। चोर-डाकू कही भी सिर उठाने का साहस नही कर सकते थे। कर्नल मालिसन ने, जो महारानी का कटु आलोचक था, इस बात को इन शब्दो मे स्वीकार किया है—"उसने अपने को एक अत्यत योग्य शासक सिद्ध किया।"

: १२ :

कानपुर की अल्पकालिक स्वतंत्रता

कानपुर नगर गगा के दक्षिणी तट पर बसा हुआ है। यह कोई प्राचीन नगर नही है। इसका इतिहास मे मुगल काल तक कोई उल्लेख नही है। इसका सर्व-प्रथम उल्लेख अग्रेजी राज्यकाल ही मे मिलता है। उस समय यह एक छोटी आबादीवाला गाव था। अग्रेजो ने इस स्थान को अपने लिए अत्यत आवश्यक समझा। यह कलकत्ता-दिल्ली राजपथ (ग्राड ट्रक रोड) पर ही बसा हुआ है। यातायात की सुरक्षितता के लिए तथा अवध के नवाब पर दृष्टि रखने के लिए इस स्थान पर अग्रेजो ने अपना एक सैनिक अड्डा सन १७७५ मे स्थापित किया। सन १८०१ की सधि के अनुसार इस स्थान पर अग्रेजो का पूर्ण अधिकार हो गया।

आजकल कानपुर एक विराट नगर बन गया है। इस समय इसकी जनसंख्या लगभग नौ लाख है। उत्तरी भारत का यह प्रमुख औद्योगिक शहर

है । चमडा, कपडा, ऊन आदि के यहा कई कारखाने है । शक्कर, अनाज, आदि की भी यह एक बहुत बडी मडी बन गया है । पर इस नगर की यह सब उन्नति १८५७ के बाद ही हुई है ।

सन १८५७ तक कानपुर की छावनी हिंदुस्तान की एक महत्वपूर्ण छावनी बन चुकी थी । उस समय यहा पर पहले ५३ और ५६ नंबर की पैदल सेना थी तथा घुडसवारो की भी एक पलटन थी । कुल मिलाकर तीन हजार हिंदुस्तानी सैनिक और साठ गोलंदाज गोरे थे । पैदल तथा घुड-सवार सेना मे अंग्रेजो की संख्या सड़सठ ही थी । कुल मिलाकर तीनसौ गोरे यहा रहते थे । यहा का प्रमुख सैनिक अधिकारी था सर ह्यूग ह्वीलर । उसकी उम्र ७४ वर्ष की थी । ५४ वर्ष तक भारत की सेना मे कार्य करते रहने के कारण हिंदुस्तानी सिपाहियो के स्वभाव, आचार और विचार से वह पूर्णत परिचित था । सिपाही भी अपने वृद्ध सेनापति को प्यार करते थे ।

१८५७ के मई मास मे कानपुर की सेना मे अशाति फैलने लगी । चारो ओर यह समाचार फैल गया कि अग्रेज भारतीयो का धर्म लेना चाहते है । इसी समय कानपुर मे नावो द्वारा आटा बिकने आया । यह आटा सडे गेहूं का था ।'अत' इससे दुर्गंध आना स्वाभाविक था । सेना मे यह अफवाह फैली कि इस आटे मे गाय और सूअर की चरबी मिलाई गई है । सिपाही समझने लगे कि इस प्रकार अग्रेजो द्वारा जान-बूझकर उनका धर्म भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

इसी समय नये कारतूसो की बात भी उठी । कुछ सैनिक अबाले से इन नये कारतूसों का प्रयोग सीखकर आये थे । उन्होने, विशेषकर ५३ नंबर की सेना के सिपाही मान खा ने, कहा कि इन कारतूसों मे चरबी नही है, पर सिपाहियो ने उनका विश्वास नही किया । इन नये कारतूसो से बदबू आती थी । सिपाही कहते थे कि यह गाय तथा सूअर की चरबी की ही बदबू है । अंग्रेजों के प्रति अविश्वास बढता जा रहा था और सिपाहियों मे अपने धर्म की रक्षा करने की विकलता भी बढ़ रही थी ।

इसी समय यह अफवाह फैली कि हिंदुस्तानी सिपाही जिस मैदान मे कवायद करते है, उसे नीचे से खोखला कर उसमे बारूद भर दी गई है, ताकि परेड करते समय सारी भारतीय सेना उडा दी जा सके। सिपाहियो मे इस समाचार से सनसनी फैल गई। इस प्रकार के समाचारो, अफवाहो तथा घटनाओ से सिपाहियो का भय तथा क्रोध बढता जा रहा था।

थोडे दिनो तक तो अशाति की अग्नि भीतर-ही-भीतर सुलगती रही, पर धीरे-धीरे यह बाहर प्रकट होने लगी। सिपाही अपने अफसरो से उद्दडता का व्यवहार करने लगे। उनकी आज्ञा का पालन करने मे भी वे हीला-हवाला करने लगे। इसी समय एक अंग्रेज ने शराब के नशे मे चूर होकर एक सिपाही पर गोली दाग दी। सौभाग्य से वह बच गया। अग्रेज पर मुकदमा चला, पर अंत मे उसे यह कहकर छोड दिया गया कि नशे मे उसकी बंदूक धोखे से चल गई थी।

भारतीय सैनिक इससे बिगड गए। उन्होने खुले आम यह कहना आरभ किया कि हमारी भी बंदूके धोखे से चलनेवाली है।

कानपुर तो क्रांति का प्रमुख केंद्र ही था। क्राति-प्रचारक सैनिको मे घुसकर क्राति की तैयारी मे लगे थे। बडी-बडी सभाए होती थी। इनमे हजारो हिंदू और मुसलमान इकट्ठे होते थे। सिपाहियो ने अपने गुप्त केंद्र स्थापित कर लिये थे। जनता मे खुलेआम भावी क्राति की चर्चा होती थी। सिपाहियो के हृदयो मे क्राति की ज्वाला प्रज्वलित होती जा रही थी।

जनरल ह्वीलर को सिपाहियों की मनोदशा के समाचार मिले तो वह चिंतित हो उठा। आरभ मे तो उसने समझा कि थोडे दिनो मे सब ठीक हो जायगा, पर धीरे-धीरे वह इसकी गंभीरता का अनुभव करने लगा। इसी समय मेरठ और दिल्ली की घटनाओ के समाचार आये। इनका समाचार सबसे पहले देशी सैनिको को मिला। तार टूट जाने के कारण अंग्रेजो को यह समाचार हिंदुस्तानी सिपाहियो से ही मिला। सभी अंग्रेज परेशान थे। इन समाचारो ने ह्वीलर के हृदय का रहा-सहा संदेह भी दूर कर दिया। उसने समझ लिया कि कानपुर मे भी किसी भी समय विद्रोह हो

सकता है ।

उसने इस आनेवाले सकट से अग्रेजो की रक्षा करने का प्रबंध आरंभ किया । सबसे पहले उसने संकट-काल के समय अग्रेजो के लिए सुरक्षित स्थान निश्चित किया । सिपाहियो की बैरको के पास ही एक अस्पताल था । इसमे दो लबी बैरके थी । एक पक्की थी और दूसरी कच्ची । इनके चारो ओर बरामदे थे । जनरल ने इसी स्थान को संकट-काल में आश्रय लेने के लिए चुना । इन बैरको के चारो ओर कच्ची दीवार का एक घेरा बनाया गया । यह घेरा ४ फुट से अधिक ऊंचा था । इस घेरे में आवश्यक सामग्री शीघ्रतापूर्वक जमा की गई । सभी अग्रेजो को आदेश दिया गया कि अशाति के समय वे शीघ्र-से-शीघ्र इस घेरे मे आ जायं ।

जनरल ह्वीलर ने लखनऊ मे रहनेवाले सर हैनरी लारेंस को पत्र लिखकर उसे कानपुर की परिस्थिति से अवगत कराया । साथ ही सहायता भेजने के लिए भी लिखा । लारेस ने बयासी अंग्रेजो की एक टुकड़ी भेजी और कानपुर-आगरा मार्ग की रक्षा के लिए घुडसवारो का एक जत्था भी भेजा ।

इस समय अग्रेज अत्यत भयभीत हो गए थे । वे रात मे भी विद्रोह के स्वप्न देखकर चौक उठते थे । आनेवाले सकटों की काली छाया उन्हें विकल किये हुए थी । एक बार रात को घोडो की टाप की आवाज आई । अंग्रेजो ने समझा कि सिपाही विद्रोह कर उन पर आक्रमण करने आ रहे है । उनमे भगदड मच गई । स्त्रियो और बच्चों के चीत्कार से वायुमंडल गूज उठा । फिर पता लगा कि अग्रेज गोलदाजों की ही एक टुकडी थी । तब कही अग्रेजो को शाति मिली ।

कई अग्रेजो ने नौकरों की सहायता से अपने लिए हिदुस्तानी वस्त्र तैयार करा लिये थे, ताकि सकट-काल मे इन्हे पहनकर भारतीयो के वेश मे अपने को बचा सके ।

जनरल ह्वीलर ने अपनी परिस्थिति को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए बिठूर के नानासाहब पेशवा से भी सहायता मागी । यद्यपि अंग्रेजों ने

उसकी पेंशन जप्त कर उसके साथ अन्याय किया था, तब भी नानासाहब ने अंग्रेजो से अपने मैत्री-पूर्ण संबंध बनाये रखे । ब्रह्मावर्त के महल मे अक्सर अंग्रेज अफसर सपत्नीक जाते और नानासाहब का उदारतापूर्ण आतिथ्य ग्रहण करते । अंग्रेजो के विरुद्ध नानासाहब के हृदय मे द्वेषाग्नि जल रही थी, पर उसे उसने प्रकट नही होने दिया । अंग्रेज जानते थे कि सैनिक विद्रोह करते ही सबसे पहले खजाने तथा शस्त्रागार पर हमला करेगे । अत कानपुर के कलक्टर ने नानासाहब से शस्त्रागार और खजाने की रक्षा का भार लेने की लिखित प्रार्थना की । इस समय खजाने मे बारह लाख रुपये थे । कानपुर का तत्कालीन कलक्टर हिलर्सडन नानासाहब पर बहुत विश्वास करता था । उसकी पत्नी ने इसी समय इग्लैड मे रहने-वाले अपने रिश्तेदारो को एक पत्र मे लिखा था—"यहा विद्रोह होने की पूरी सभावना है । ऐसा होने पर मै यहा से ६ मील दूर बिठूर चली जाऊगी । वहा पेशवा रहते है, जो साहब के मित्र है । बहुत धनवान भी है । उन्होने आश्वासन दिया है कि मै निश्चिततापूर्वक वहा रहूं । पहले मै छावनी मे रहना चाहती थी, पर मेरे पति ने मुझे बिठूर मे रहने की ही सलाह दी है ।"

इससे प्रकट होता है कि अंग्रेज नानासाहब पर कितना विश्वास करते थे । कलक्टर की प्रार्थना पर नानासाहब ने दोसौ सशस्त्र सिपाही और दो तोपे बिठूर से कानपुर भेज दी । खजाने की रक्षा के लिए उसने अपने आदमी नियुक्त किये ।

इस समय कानपुर मे क्रातिकारी प्रचारक बड़े कार्य-क्षम थे । क्राति-समिति के यहा प्रमुख नेता थे—घुड़सवारो के सूबेदार टीकासिह तथा सिपाहियो के नेता शमशुद्दीन । नानासाहब के प्रतिनिधि ज्वालाप्रसाद तथा मुहम्मद अली इस क्राति-केद्र के सदस्य थे । टीकासिह तथा शमशुद्दीन के घर पर उनकी गुप्त बैठके हुआ करती थी । इनका प्रचार इतना प्रभाव-कारी तथा व्यापक था कि कानपुर की सेना का एक-एक हिदुस्तानी सिपाही रक्त कमल हाथ मे लेकर क्राति की शपथ ले चुका था ।

मेरठ और दिल्ली की घटनाओ ने पूर्व नियोजित क्राति के कार्यक्रम

मे गडबडी पैदा कर दी। नई परिस्थितियो पर विचार करने के लिए इन्ही दिनो क्राति की गुप्त समितियो की कई बैठके हुई। कई दिनो के वाद-विवाद के वाद भावी कार्यक्रम निश्चित किया गया। नानासाहब से अतिम स्वीकृति लेना आवश्यक था। नवाबगंज मे क्रातिकारियो तथा नानासाहब की एक गुप्त बैठक हुई। इसमे सूबेदार टीकासिह और कानपुर मे क्राति के प्रमुख नेताओ का नानासाहब से वार्तालाप हुआ। कई घटे तक विचार-विमर्श के बाद एक और गुप्त बैठक करने का निश्चय किया गया। यह बैठक १ जून को गगा की गोद मे एक नाव पर हुई ताकि इसका भेद गुप्त रह सके। एक नाव मे टीकासिह तथा उसके साथियो और नाना-साहब, वालासाहब तथा उनके सलाहकार अजीमुल्ला मे गुप्त मत्रणा हुई। इस मंत्रणा से क्या-क्या निश्चित हुआ, इसका कोई लिखित हाल उपलब्ध नही है।

अंग्रेज इतिहासकारो ने भी इन बैठको का उल्लेख किया है। कर्नल मैलीसन द्वारा संपादित सर जॉन के की 'भारतीय विद्रोह' नामक पुस्तक मे लिखा है—"नानासाहब के आदमियों और २ नंबर की घुडसवार सेना मे विचार-विनिमय हुआ करता था। यह कहा जाता है कि घुडसवारों के सूबेदार, जो राजद्रोह का प्रमुख सचालक था, तथा नानासाहब की शीघ्र भेट करने की व्यवस्था की गई थी—विद्रोह के पूर्व ही प्रत्येक सिपाही जानता था कि नाना उनके साथ है। वे यह भी जानते थे कि नाना की सारी शक्ति और साधन आनेवाले संघर्ष मे विद्रोहियो के साथ होगे।"

कई इतिहासकार यह कहते है कि नानासाहब को अपनी इच्छा के विरुद्ध विद्रोहियो ने नेता बनाया था। वह इस झगडे मे पड़ना नही चाहता था, पर परिस्थितियों ने उसे मजबूर कर दिया। वास्तविकता यह है कि विद्रोह के लिए आवश्यक परिस्थिति का निर्माण करने मे नानासाहब का प्रमुख हाथ था। क्राति का सगठन उसीके आदेश से होता था, पर उसके कार्य इतने गुप्तरूप से होते थे कि किसीको भी इसकी खबर नही लगती थी। इसी कारण इतिहासकार अक्सर उसके सबंध मे धोखा खा

जाते है। १८५६ मे नानासाहब के नाम अग्रेजी बैक मे पाच लाख पौड जमा थे, पर धीरे-धीरे उसने वे सब निकाल लिये। कानपुर की क्राति के समय उसमे केवल तीन हजार पौड रह गए थे।

इस प्रकार कानपुर मे भय, आशका और अविश्वास का वातावरण था। अग्रेज समझते थे कि किसी भी समय हिदुस्तानी उन पर आक्रमण कर सकते है। अत वे सदा सशस्त्र रहते थे। सभी हिदुस्तानियो को शका की दृष्टि से देखते थे। ग्रात्म-रक्षा के लिए वे हर तरह की तैयारी मे जुटे थे। इधर सिपाही समझते थे कि अग्रेज मेरठ और दिल्ली का बदला कानपुर मे लेना चाहते है। जब सिपाहियो ने अग्रेजो को छावनी मे दीवार का घेरा बनाते हुए और उस पर तोपे लगाते देखा तो उन्हे विश्वास हो गया कि अंग्रेज अवश्य उन्हे मारना चाहते है। जब लखनऊ से अतिरिक्त गोरी सेना आई तो सिपाहियो को निश्चय हो गया कि गोरी फौज उन पर आक्रमण करनेवाली है। इस प्रकार वे और भी भयभीत और आशकित हो गए।

इधर अग्रेज भी कम भयभीत न थे। अभी तक सिपाही अग्रेजो को वीर और अजेय समझते थे, पर अब उनको डर से कापते देख वे मन-ही-मन हंसते थे। २४ मई को ईद का त्यौहार आया। अग्रेजो मे खबर फैली कि विद्रोह इसी दिन आरभ होगा। जनरल ह्वीलर ने लारेस को तार भेजा—"आज निश्चित रूप से विद्रोह आरभ हो जायगा।" पर शाम तक कुछ भी नही हुआ। लोगों ने आपस मे एक-दूसरे को ईद की मुबारकवाद दी।

२२ मई को ही सभी अग्रेज स्त्रिया और बच्चे घेरे मे पहुचा दिये गए। लखनऊ से आई हुई गोरी सेना के अफसर फ्लेचर हेईज ने उस समय का जो वर्णन किया है, वह बडा ही वास्तविक है, "जब मै कोट में गया तो मैनें बग्घियो, पालकियो और गाडियो पर लेखकों, व्यापारियो तथा अन्य अनेक लोगो का सामान लदकर आते देखा। प्रत्येक व्यक्ति काल्पनिक शत्रु से थर्रा रहा था। बैरक मे पडे हुए भोजन के भद्दे मेज़ के निकट महिलाए बैठी हुई थी। दुधमुहे बच्चो के साथ स्त्रिया, दाइया, बच्चे और अफसर

चारो ओर फैले हुए थे। ऐसी स्थिति मे अगर विद्रोह होता है तो इसके लिए हमारे सिवा और कोई दोषी नही होगा। हमने हिदुस्तानियो को दिखा दिया है कि हम कितनी जल्दी डर जाते है और डर जाने पर कितने असहाय हो जाते है।"

मई मास का अतिम सप्ताह तो बडा भयकर था। रोज तरह-तरह की अफवाहे फैलती। कोई कहता, विद्रोह आरभ हो गया है। बस फिर क्या था, अग्रेजो मे भगदड मच जाती। इसी सप्ताह मे महारानी विक्टोरिया का जन्म-दिवस था। प्रत्येक वर्ष यह दिवस अत्यत धूमधाम से मनाया जाता था। तोपो की सलामी दी जाती थी। नाच-गान, भोजन आदि कार्य-क्रम होते थे। पर इस वर्ष अग्रेजो को यह दिवस मनाने की हिम्मत न पडी। न तो सलामी दी गई, न तोप छुटी और न कोई कार्यक्रम हुआ। अंग्रेज डरते थे कि कही सिपाही भडक न जायं। वे कोई ऐसा कार्य नही करना चाहते थे, जिससे हिदुस्तानियो को उनके विरुद्ध कुछ करने का अवसर मिले।

इसी समय एक अग्रेज महिला बाजार गई। वहा स्वभाव के अनुसार उसका व्यवहार अत्यत अभिमानपूर्ण रहा। पर समय बदल चुका था। एक सिपाही उसके पास आया और बोला—"क्यो व्यर्थ अभिमान करती हो, तुम्हारा जीवन अब केवल एक सप्ताह का रह गया है।" वह घबड़ाई हुई वापस आई। उसने सब हाल अग्रेजो से कहा। एक दिन एकाएक एक अग्रेज अफसर के घर मे आग लग गई। सिपाहियो को आग बुझाने की आज्ञा दी गई। उन्होंने आज्ञा का पालन किया। एक दिन अजीमुल्ला खा अग्रेजो की किलेबंदी देखने गया। उसके साथ लेफ्टिनेट डेनियल था। अज़ीमुल्ला ने उससे पूछा—"आप लोग जो यह किलेबदी खड़ी कर रहे है, उसका नाम क्या होगा ?' डेनियल ने कहा—"हम लोगो ने इस पर विचार नही किया है।" अज़ीमुल्ला ने कहा—"इसका नाम तो निराशा का दुर्ग होना चाहिए।" इस पर डेनियल बोला—"नही, इसका नाम 'विजय दुर्ग' होगा।" अजीमुल्ला जोर से हँसा।

१ जून तक कोई विशेष घटना नही हुई। इसी दिन जनरल ह्वीलर ने सर हेनरी लारेस को लिखा—"मेरा विश्वास है कि अब कानपुर का संकट शीघ्र ही दूर हो जायगा। फिर मै आपको भी सहायता भेज सकूगा।" मई के अत मे उसने कई गोरे सिपाही लखनऊ भेज दिये।

४ जून की मध्यरात्रि को कानपुर का विद्रोह आरंभ हुआ। बदूक के तीन फायर हुए और एक अग्रेज अफसर का बगला जल उठा। क्रातिकारियो ने यही संकेत निश्चित किया था। २ नबर की घुडसवार पलटन सूबेदार टीकासिह के नेतृत्व मे अपनी बैरको से निकली। बुड्ढे सूबेदार-मेजर ने, जो हिदुस्तानी था, उन्हे रोकने का प्रयत्न किया तो वह एक तलवार के वार से मार डाला गया। टीकासिह ने दो घुडसवारो द्वारा पैदल सेना को सदेश भेजा—"सूबेदार टीकासिह का पहली नबर की पैदल सेना के सूबेदार को सलाम पहुचे। जब घुड़सवार सेना फिरंगियो के विरुद्ध उठकर खडी हो गई है तो फिर पैदल सेना क्यो देर कर रही है?" इस संदेश ने जादू का काम किया। पैदल सेना ने भी विद्रोह कर दिया। शस्त्रो से सुसज्जित होकर सिपाही बाहर निकल आये। उनके अफसर कर्नल इवार्ट ने उन्हे, "बाबा लोग! यह क्या कर रहो हो?" कहकर समझाने की चेष्टा की, पर सिपाहियो ने उसकी एक न सुनी। यह घुडसवार तथा पैदल सेना सीधे नवाबगज पहुची।

नानासाहब के आदमियो ने इनका स्वागत किया। खजाना लूट लिया गया। जेलखाने के फाटक खोल दिये गए। शस्त्रागार पर भी सिपाहियो ने अधिकार कर लिया। यद्यपि घुडसवारो तथा एक नबर की पैदल सेना ने विद्रोह कर दिया था तथापि अब भी दो सेनाएं छावनी मे ऐसी थी, जिन्होंने अभी विद्रोह का झडा ऊचा नही किया था। उनके अफसरो को ज्यो ही विद्रोह का आभास मिला, उन्होने अपनी सेना को परेड के मैदान मे ही रात-भर खड़ा रखा। अंग्रेज अफसरो को विश्वास हो गया कि यह सेना राज-भक्त है। अतःउन्होने सिपाहियो को अपनी बैरको मे जाने की आज्ञा दे दी। वहां पहुंचते ही उन्होंने विद्रोह कर दिया। शस्त्रो से सुसज्जित

होकर वे नवाबगंज की ओर रवाना हुए । अंग्रेजो ने उन पर तोपो से हमला किया, पर वे तोपो की मार के बाहर निकल चुके थे ।

विद्रोही सैनिक नानासाहब के यहा पहुचे और उसका जय-जयकार करने लगे । सभी सिपाहियो ने नाना से सेना का नेतृत्व गृहण करने की प्रार्थना की । इस प्रकार नानासाहब पेशवा विद्रोह का नेता बना । यहीं कानपुर का प्रसिद्ध विद्रोही नेता सूबेदार टीकासिह सेनापति घोषित किया गया । नानासाहब राजा घोपित किया गया तथा उसीके नाम से सब काम होने लगा ।

लूट का सारा माल लेकर यह विद्रोही सेना नानासाहब को साथ लेकर दिल्ली के लिए रवाना हुई । अजीमुल्ला को यह बात पसद न थी । उसने नानासाहब से कहा--"दिल्ली मे आपका कोई महत्व न रहेगा । वहा तो सब काम मुगल सम्राट की आज्ञा से होगा । आपस के झगड़ो के कारण वहा आप कुछ कर न सकेंगे । अतः आप यही रहकर क्राति का सगठन कीजिये ।" नानासाहब ने उसकी सलाह मान ली । पहली रात को कल्याणपुर के पास पडाव था । नानासाहब अपनी सेना को समझा-बुझाकर कानपुर वापस ले आया । विद्रोही सेना ने नानासाहब से कहा--"अगर आप खुले रूप से हमारा नेतृत्व करे तो हम पुन· कानपुर वापस जाने को तैयार है ।" नानासाहब ने इसे स्वीकार किया ।

कानपुर की क्राति की बागडोर नानासाहब ने अपने हाथो मे ली । उसके पास धन की कमी न थी । अग्रेजो का खजाना भी हाथ आ चुका था, शस्त्रागार मे बहुत बड़ी मात्रा मे युद्ध-सामग्री भी मिल गई थी । सहायक भी अत्यंत प्रतिभावान व्यक्ति थे । भाई बालासाहब, बाबा भट्ट, भतीजा रावसाहब, तात्याटोपे, अज़ीमुल्ला आदि अनेक योग्य व्यक्ति उसके सहायक थे । इस प्रकार कानपुर मे इस समय नाना साहब की स्थिति काफी सुदृढ़ और बलवान थी ।

नानासाहब ने विद्रोही सिपाहियो के अलग-अलग जत्थे बनाये तथा उनपर योग्य अफसरो की नियुक्ति की । सारी सेना को संगठित करने का

भार जनरल टीकासिह को सौपा । दलगजनसिह ५३ नबर की सेना का अधिकारी बनाया गया तथा उसे कर्नल का पद प्रदान किया गया । ५६ नबर की सेना का अफसर सूबेदार गगादीन को बनाया गया । उसे भी कर्नल का पद दिया गया ।

अब नानासाहब का ध्यान अग्रेजो की ओर गया । कानपुर मे अग्रेजो के रहते उसे स्वतत्र राजा कैसे कहा जाता ? अत उसने अग्रेजो पर आक्रमण करने का निश्चय किया । ६ जून को नानासाहब ने जनरल ह्वीलर के नाम पत्र लिखा कि वह शीघ्र ही अग्रेजो के कोट पर हमला करनेवाला है । यह पत्र आते ही ह्वीलर चौक उठा । उसने सुना था कि विद्रोही सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हो चुके है, अतः वह कुछ नि शक-सा हो गया था । उसे आशा होने लगी थी कि वह अग्रेजो को साथ लेकर प्रयाग पहुच जायगा । पर इस पत्र के आते ही सभी घबडा गए और आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गए ।

नानासाहब की सेना छावनी की ओर रवाना हुई । रास्ते मे उसे जितने ईसाई मिले वे सब मार डाले गए। सिपाहियो ने मोर्चे पर तोपे लगा दी । कोट को घेर लिया । अग्रेजो के किले पर सिपाहियो ने गोले बरसाना आरभ कर दिये । इससे अग्रेजो की बहुत हानि हुई । पहले-पहल जब गोले बरसने लगे तो अग्रेज महिलाएं और बच्चे घबडा कर इधर-उधर भागने लगे । पर धीरे-धीरे वे इसके आदी हो गए । इस समय अग्रेजो ने बडे कष्ट मे दिन काटे । दिन-भर गरम लू चलती थी । धूप इतनी तेज होती थी कि मानो आकाश से आग बरस रही हो । आश्रय के लिए टूटी-फूटी दीवारो तथा जर्जर छप्पर के सिवा कुछ न था । तोप के गोले किसी भी समय प्राण ले सकते थे । तोपे और बदूके इतनी गरम हो जाती कि उन्हे हाथ लगाना आग को छूना था ।

ह्वीलर ने भी आत्म-रक्षा की व्यवस्था मे कुछ कसर न उठा रखी थी । उसकी तोपे गोले बरसाकर विद्रोही सिपाहियो को पास नही आने देती थी । प्रत्येक अग्रेज को, चाहे वह सैनिक हो अथवा असैनिक, ड्यूटी करनी

पडती । जो निशानेबाज थे, उनकी सहायता के लिए दो-तीन असैनिक अग्रेज दिये गए थे । ये लोग बदूके भरकर तैयार रखते और निशानेबाज की बदूक खाली होते ही उसे दूसरी दे देते ।

घेरे के अदर कई अग्रेज बीमार थे । कई घायल हो गए थे । पर इनकी सेवा-शुश्रुषा करनेवाला कोई न था । कैप्टन टामस, जो इस घेरे के अदर से लड रहा था, अपने सस्मरण मे लिखता है--"आर्मस्ट्राग घायल पडा था, लेफ्टिनेंट पोल उसे देखने गया। उसने उसे धीरज बधाने के लिए कुछ शब्द ही कहे होगे कि किसी सिपाही की गोली उसकी जाघ मे लगी और वह वही पर गिर पडा। मैने उसे उठाकर सार्जेंट के पास ले जाना चाहा। इतने मे एक गोली मेरे कधे मे आकर लगी । मै और पोल दोनो गिर पडे । यह देख गिलबर्ट मेरे पास दौडा आया । एक गोली उसके शरीर से आर-पार हो गई और वह वही ढेर हो गया ।" इतनी हृदय-विदारक परिस्थिति मे अग्रेजो ने २१ दिन तक अपनी रक्षा की ।

कानपुर नगर मे गडबड मची हुई थी । ७ जून को नानासाहब की ओर से हिंदी तथा उर्दू मे एक घोषणा-पत्र निकला, जो नगर मे तथा सिपाहियो मे बाटा गया । इसमे लिखा था कि हिंदुओ और मुसलमानो को एक होकर धर्म की रक्षा करनी चाहिए । नगर मे गुडो ने लूटमार आरभ कर दी । ईसाई ढूढ-ढूढकर मारे जाने लगे । शहर मे मुगल सम्राट का हरा झडा फहराया गया ।

जनरल ह्वीलर ने चारो ओर सहायता के लिए लिखा, पर आग तो देश-भर मे लगी हुई थी । कौन किसकी सहायता करता ? उसे बडी आशा थी कि प्रयाग से कर्नल नील उसकी सहायता को आयगा, पर ऐसा कुछ न हुआ । ह्वीलर बडा निराश हो गया । विद्रोही सेना की भी कुछ कम हानि नही हुई । कई सिपाही अग्रेजो की तोपो और बदूको से मर गए । कई घायल हो गए । पर उनके पास जन-शक्ति असीम थी । एक जाता, दूसरा उसकी जगह लेता । इधर मोर्चे लगे हुए थे, पर नानासाहब का ध्यान नगर की शासन-व्यवस्था की ओर था । उसने सबसे पहले

न्याय-विभाग का सगठन किया। जनता की रक्षा करना अत्यत आवश्यक था। उसने नगर के प्रमुख लोगो को एक सभा बुलाई और उनसे नगर मे शाति रखने की प्रार्थना की। हुलासराय मजिस्ट्रेट नियुक्त हुआ। उसे यह आज्ञा थी कि वह चोर-डाकुओ से नागरिको की तो रक्षा करे ही, पर सिपाही भी अगर उनके साथ अन्याय करे तो उन्हे भी दड दिया जाय। सेना को सामान पहुचाने का काम मुल्ला नामक व्यक्ति को सौपा गया। दीवानी और फौजदारी मामलो की सुनवाई के लिए न्यायालय स्थापित किये गए। ज्वालाप्रसाद और अज़ीमुल्ला जज नियुक्त हुए और बाबासाहब पेशवा को न्याय-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस प्रकार नगर मे शाति और सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया गया।

२३ जून को प्लासी के युद्ध की सौवी सालगिरह थी। सिपाहियो ने इस दिन १०० वर्ष पुराने अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। घुड़सवार, पैदल, तोपखाना आदि पूरी सेना ने अग्रेजों पर आक्रमण किया। उन्होंने निश्चय-सा कर लिया था कि आज अंग्रेजो को घुटने टेकने के लिए बाध्य किया जायगा।

नागरिकों ने अपनी पूरी शक्ति से सैनिको का साथ दिया। स्त्रिया भी बाहर निकल पड़ी। कानपुर की एक नर्तकी अजीजन बड़ी सुदर तथा देशभक्त थी। वह अग्रेजो से बहुत घृणा करती थी। उसने स्त्रियो का एक दल तैयार किया था। यह दल वीरवेश धारणकर घोडे पर सवार होकर युद्ध के मोर्चे पर घूमता। लडनेवाले सिपाहियो को दूध तथा मिठाई बाटता और युद्ध के लिए उत्साहित करता।

उस दिन घमासान युद्ध हुआ। सिपाही "बदला" के नारे के साथ आक्रमण कर रहे थे। उधर अग्रेज भी आत्म-रक्षा के लिए लड़ रहे थे। तीन सप्ताह तक तो अंग्रेज किसी भाति टिक गए, पर अब अधिक दिनों तक लड़ते रहना असंभव था। इतिहासकार के ने लिखा है—"उनकी सहायता को कोई सेना नही आई। प्रयाग से सहायता की उम्मीद था, पर वह भी मृग-तृष्णा सिद्ध हुई। उनकी (अग्रेजो की) सख्या बहुत कम रह गई

थी। तोपे भी अनुपयोगी हो गई थी। बारूद समाप्त हो गई थी। भुखमरी का राक्षस उनके सामने खड़ा था।"

अंत मे २५ जून को जनरल ह्वीलर को अपने किले पर सुलह का सफेद झंडा लहराना पडा। नानासाहब ने उसी समय लडाई बंद करने की आज्ञा दी। नानासाहब की आज्ञा से अजीमुल्ला ने एक पत्र लिखा—"रानी विक्टोरिया के प्रजा-जनो को, जिनका डलहौजी की नीति से कोई सबध नही है, और जो अपने शस्त्र रखकर आत्म-समर्पण करने को तैयार है, सुरक्षितता-पूर्वक प्रयाग पहुचाया जायगा।"

२६ जून को दोनो ओर के प्रतिनिधियों की बैठक हुई। नानासाहब की ओर से ज्वालाप्रसाद तथा अजीमुल्ला थे तथा अग्रेजो की ओर से मूर, ह्विटलिग तथा रोशे। इस सयुक्त बैठक मे यह तय हुआ कि सभी शस्त्र तथा धन अंग्रेज नानासाहब के हवाले कर देगे तथा वह उन्हे प्रयाग भेजने की व्यवस्था करेगा। नानासाहब की इच्छा थी कि उसी रात को वे वहा से चले जायं। पर अग्रेज अंधेरे मे नही जाना चाहते थे। वे २७ जून को प्रात.काल जाना चाहते थे। निदान नानासाहब को मनाने के लिए उसका शिक्षक टाड भेजा गया। नानासाहब ने अपने शिक्षक का बहुत सम्मान किया और अग्रेजो के जाने के लिए दूसरे दिन प्रात.काल का समय ही स्वीकार कर लिया।

तीन अंग्रेज अफसर हाथी पर बैठकर कुछ घुडसवारो के साथ गगा तट पर सत्तीचौरा पहुंचे। वहा उन्होने ४० नावे तैयार देखी। उन नावो मे उनकी सलाह के अनुसार परिवर्तन कर दिया गया। उनके बैठने के लिए जगहे बना दी गई। बास की छत बना दी गई। खाने-पीने का आवश्यक सामान भी रखा गया।

दूसरे दिन प्रात.काल अग्रेज पुरुष, स्त्रिया और बच्चे हाथी पर तथा पालकी मे बैठाकर गगा तट पर पहुचाये गए। जनरल ह्वीलर अपनी कन्या के साथ पैदल ही रवाना हुआ। रास्ते मे विद्रोही सिपाही उनके साथ सच्ची सहानुभूति प्रकट करते रहे। सिपाहियों की वहा भीड लग गई थी।

मैनिक अफसर इवार्ट घायल हो गया था । अत वह डोली मे धीरे-धीरे गंगा की ओर अपनी पत्नी-सहित लाया जा रहा था । एक सिपाही ने डोली रोककर कर्नल से पूछा—"आज की परेड कैसी है ? यूनीफार्म तो ठीक है ?" यह कहकर उसने कर्नल को पालकी के नीचे घसीटकर यमलोक पहुचा दिया । दूसरे सिपाही ने आगे बढकर, अन्य सिपाहियों के रोकने पर भी, उसकी स्त्री की हत्या कर डाली ।

जब सब अग्रेज सत्तीचौरा घाट पहुच गए तो वे नावो मे बैठने लगे । गरमी होने के कारण पानी उथला था । दूर तक उथले पानी में पैदल जाकर नाव मे बैठना पडता था । सत्तीचौरा के हरदेव के मदिर के सामने राव-साहब, तात्याटोपे तथा अजीमुल्ला खडे थे । जब सब नावों मे बैठ गए तो तात्याटोपे ने हाथ हिलाकर नाव रवाना करने का इशारा किया । इतने मे सिपाहियों की भीड मे बिगुल बज उठा । चारो ओर से नावो मे बैठे अग्रेजो पर गोलियो की वर्षा होने लगी । मल्लाह नावो से कूदकर भाग गए । तोपे भी गरज उठी । नावो मे आग लग गई । अनेक अग्रेज महिलाए अपने प्राणो की रक्षा के लिए दुधमुहे बच्चों को छाती से चिपटाये गगा मे कूद पडी और उसकी गोद मे सदा के लिए लुप्त हो गईं। वह कितना भयकर दृश्य होगा ! घुड़सवारो ने आगे बढ़कर उनपर हमला किया । कई अग्रेज मार डाले गए । जनरल ह्वीलर भी यही समाप्त कर दिया गया ।

नानासाहब ने अपने डेरे मे तोपों की आवाज सुनी । वह विकल हो इधर-उधर घूमने लगा । इतने मे एक आदमी ने आकर सत्तीचौरा मे जो हो रहा था, उसका हाल बताया । औरतो और बच्चो की हत्या से नानासाहब को बडा दु.ख हुआ । उसने हत्याकाड रोकने की तथा सभी अंग्रेज स्त्रियो को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी । इस प्रकार वहा १२५ अंग्रेज महिलाएं और बच्चे गिरफ्तार किये गए ।

केवल एक नाव बच गई थी । उसमें बैठे हुए अग्रेजों ने इस नाव को गगा के प्रवाह में ढकेल दिया । नाव बहने लगी । इस नाव मे कर्नल टामसन, मूर, डीलाफोस आदि थे । नाव पर खेने के लिए न डाड थे

और न बल्ली। किनारे खडे सिपाही उन पर गोली चला रहे थे। एक अग्रेज गोली लगने से मर गया। उसके साथियो ने उसका शव गगा मे बहा दिया। २८ जून को यह नाव नजफगढ पहुची। किनारे के लोगो ने नाव पर गोलिया चलाईं। कानपुर मे एक नाव इनका पीछा कर रही थी। नाव के अग्रेजों ने विद्रोहियो की नाव पर गोलिया बरसाई और उस नाव पर अपना अधिकार कर लिया। इस नाव मे उन्हे बदूके और गोलिया मिली।

दूसरे दिन प्रात काल फिर सकट आया। गगा के किनारे लोग खडे होकर इनपर आक्रमण के लिए उद्यत थे और विद्रोहियो की एक नाव फिर उनका पीछा करने लगी थी। अत मे नाव के अग्रेजो ने अपने दो दल बनाये——एक तो किनारे खड़े लोगो का सामना करने के लिए जमीन पर उतरा और दूसरा दल नाव मे ही रहा। वह पीछा करनेवाली नाव का सामना करने को तैयार हो गया। जो दल किनारे पर उतरा, उसमे सात अग्रेज थे। कर्नल टामसन भी इनके साथ था। इन्होने उतरकर किनारे पर खडे लोगो पर गोलिया चलाईं, जिससे वे पीछे हट गए। जब ये लोग विद्रोहियो को भगाकर नाव मे बैठने के लिए वापस किनारे पर आये तो इन्होने वहा अपनी नाव न देखी। इससे वे बडे परेशान हुए। इतने मे उनपर बक्सर (उन्नाव) के जमीदार रावरामबख्शसिह ने हमला किया। सब तरफ यह समाचार फैल गया था कि अग्रेजी राज्य उठ गया है, अत लोगों ने अग्रेजो को छोडना ठीक न समझा। अग्रेजो ने भागकर एक मंदिर मे शरण ली। पर जब मदिर मे लोगो ने आग लगानी चाही तो ये लोग मंदिर से निकलकर गगा की ओर भागे। रास्ते मे तीन अग्रेज मारे गए। चार अग्रेज गगा मे कूद पडे। तैरते हुए वे आगे निकल गए। अवध के ताल्लुकेदार दिग्विजयसिह ने उन्हे शरण दी और उनकी रक्षा की। अत मे वे पुनः अग्रेजो से जा मिले।

जिस नाव से टामसन और उनके साथी किनारे उतरे थे, वह विद्रोहियो ने पकड ली थी। इसमे ८० अंग्रेज स्त्री-पुरुष थे। वे पुन कानपुर ले

जाये गए । ३० जून को पुरुषो को फासी दे दी गई । स्त्रिया और बच्चे गिरफ्तार कर जेल मे बद कर दिये गए ।

कानपुर मे अग्रेजी राज्य के सभी चिह्नों को नष्ट करने के बाद नानासाहब पेशवा ने एक विराट दरबार २८ जून को साय ५ बजे किया । समस्त सेना बडे उत्साह और उमग के साथ उपस्थित थी । आरंभ मे सैनिक कवायद हुई । इसमे ६ पैदल और घुडसवार सेनाओ ने भाग लिया । सहस्रो क्रातिकारी उपस्थित थे । तोपखाने का तो विशेष सम्मान किया गया । इसीके बल पर कानपुर मे अग्रेजी-शक्ति नष्ट हुई थी । आरंभ मे दिल्ली के मुगल सम्राट के सम्मान मे १०१ तोपो की सलामी दी गई । नानासाहब पेशवा के स्वागत मे २१ तोपो की सलामी दी गई । नानासाहब के भाई बाबासाहब और भतीजे रावसाहब को ७-७ तोपो की सलामी दी गई । सेनापति टीकासिह और तात्याटोपे का ११ तोपो से स्वागत किया गया । नानासाहब ने परम प्रसन्नता के इस अवसर पर सैनिकों को एक लाख रुपयें का पारितोषिक देना घोषित किया ।

एक जुलाई को ब्रह्मावर्त मे नानासाहब के महल में वैदिक विधि से उसका राज्याभिषेक हुआ । सैकडो ब्राह्मणो के मुख से निकले वेद-घोष से वहां का वायु-मंडल गूज उठा । नानासाहब के मस्तक पर तिलक लगाया गया । सिर पर बहुमूल्य मुकुट रखा गया । सहस्रों कंठो ने उसका जय-जयकार किया । ६ दिन तक ब्रह्मावर्त में यह उत्सव चलता रहा । नाच-गान हुए । बड़े-बडे भोज हुए । सहस्रो ब्राह्मणो को भोजन कराया गया । कानपुर और ब्रह्मावर्त मे उस दिन रोशनी की गई । इस प्रकार पूना मे नष्ट की गई पेशवाई ब्रह्मावर्त मे पुन: जीवित की गई ।

: १३ :

अवध में क्रांति

अवध की क्राति क्या थी, एक जनयुद्ध था। नवाब, जमीदार, ताल्लुकेदार, व्यापारी, साहूकार, किसान तथा साधारण जनता, सभी ने इस क्राति मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। अवध की घटनाए क्राति के गौरव-पूर्ण पन्नो मे लिखी जाने योग्य है। अवध के राज्यो को अग्रेजो ने समाप्त कर इस अत्यत उपजाऊ भूमि को अपने राज्य मे मिला लिया था। नवाब वाजिदअली शाह के साथ अग्रेजो ने जो व्यवहार किया, वह उनके अनेक कुकृत्यो मे से एक था। लखनऊ के नवाब को गद्दी से उतारे जाने की बात अवध की जनता कभी नही भूली और न उसने इसके लिए अग्रेजो को क्षमा ही किया।

नवाबी की समाप्ति के साथ वश-परपरागत अधिकारियों को कोई काम न रह गया। कारीगरो का कोई पुरसा-हाल न रहा। नवाब की सेना के भग कर दिये जाने के कारण साठ हजार सिपाही बेरोजगार हो गए। ताल्लुकेदारो पर भी प्रहार किया जा रहा था। अतएव वे भी अग्रेजों से क्रुद्ध थे। बेरोजगारी इतनी बढ गई थी कि लोग अग्रेजी राज्य को अभिशाप समझने लगे थे। किसान लगान बढ जाने से अग्रेजी राज्य को अपने लिए घातक समझते थे। इसीके साथ-साथ चारो ओर से समाचार आ रहे थे कि अग्रेज हिदुओ और मुसलमानो के धर्म को नष्ट करना चाहते है। ईसाई पादरी खुलेआम हिंदू और मुसलमानी धर्म की निदा करते थे। इससे समस्त जनता अग्रेजों से घृणा करने लगी थी।

क्रातिकारियो के लिए ऐसा वातावरण अत्यंत अनुकूल था। मौलवी, पडित, ज्योतिषी आदि अनेक लोग क्राति का सदेश घर-घर पहुचाते थे। वे प्रचार करते थे कि अग्रेजी राज्य को समाप्त किये बिना हमारी भलाई नही। यहा के क्रातिकारियो के नेता थे शाहगज के ताल्लुकेदार मानसिह

और मौलवी अहमदशाह । जिन सभाओ मे अहमदशाह का भाषण होता, वहा जनता टूट पड़ती, अग्रेजो द्वारा किये गए अत्याचारो की कथाए क्रुद्ध होकर सुनती और अग्रेजी राज्य की समाप्ति करने की शपथ लेकर घर लौटती । सेना, पुलिस, सरकारी विभागो के कर्मचारी, सभी क्राति की शपथ ले चुके थे । सभी क्राति के सैनिक बन चुके थे ।

इस समय अवध प्रात का गवर्नर था सर जॉन लारेस का भाई सर हेनरी लारेस। वह अत्यत योग्य और विचारवान व्यक्ति था । चतुर राजनीतिज्ञ होने के कारण वह परिस्थिति की गभीरता समझ गया। अत उसने लोगो मे फैली अशाति को दूर करने का प्रयत्न करना आरंभ किया। पुराने नौकरो को पुन. काम दिया जाने लगा । सिपाहियो का वेतन बढाया गया । अपराधियो को तत्काल दड और राजभक्तो को तत्काल इनाम दिया जाने लगा ।

१२ मई को सर हेनरी लारेस ने एक बडा दरबार लखनऊ मे किया। उसमे उसने हिदुस्तानी भापा मे भाषण दिया । इस भाषण मे उसने हिदुओ और मुसलमानों के आपसी वैमनस्य को उभारने का प्रयत्न किया । उसने हिदुओ को औरगजेब के अत्याचारो की याद दिलाई और मुसलमानों से कहा कि रणजीतसिंह ने तुम लोगों के धर्म पर कितना आघात किया है । अंत मे उसने कहा कि केवल अग्रेज ही दोनो की रक्षा कर सकते है । साथ ही उसने राजभक्ति के महत्व पर भी प्रकाश डाला ।

इसीके साथ-साथ लारेस ने समय पडने पर आत्म-रक्षा करने की भी व्यवस्था की । इसके लिए लखनऊ मे मच्छी भवन तथा रेजीडेंसी को चुना । उसने इन दोनो स्थानों की आवश्यक मरम्मत कराई । भोजन-सामग्री, शस्त्र, गोला-बारूद आदि उसने काफी मात्रा मे यहा एकत्र किये ताकि समय पडने पर उनका उपयोग किया जा सके ।

सिपाहियों मे अशाति बढती जा रही थी । मेरठ और दिल्ली की घटनाओ ने सिपाहियों को विद्रोह के लिए उत्साह प्रदान किया था । वे तो उचित अवसर की राह देख रहे थे । लारेंस उनकी मनोदशा से अपरिचित न

न था, उसके पास सब खबरे पहुंचती थी। ३० मई को लारेंस छावनी के भोजनालय मे अपने मित्रो के साथ भोजन कर रहा था। इतने मे कैप्टन विलियम्स ने खबर दी कि आज रात को ९ बजे विद्रोह आरंभ हो जायगा। सभी लोग बडी आशका से घड़ी की ओर देख रहे थे। घडी ने नौ बजाये। ९ बजे की तोप भी दगी। सर हेनरी ने विल्सन से कहा—"मालूम होता है तुम्हारे मित्रों ने ठीक समय पर कार्य आरभ नही किया।" वह इतना ही कह पाया था कि गोलियो के छूटने की आवाज सुनाई पडी। चारो ओर कोलाहल मच गया।

सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया था। अग्रेजों के बगले जल रहे थे। बदूके गरज रही थी। क्रातिकारी नारे लगाये जा रहे थे। विद्रोही सिपाहियो को शहर मे जाने देना उचित नही था। अत लारेंस ने ३२ नवर की पलटन को रास्ते पर पहरा देने के लिए नियुक्त किया। ७१ नबर की पलटन ने अपने ब्रिगेडियर को मार डाला। सैनिको की बैरको मे गडबडी मच गई। कई सैनिक घर भाग गए। कई विद्रोहियो से जा मिले।

दूसरे दिन, ३१ मई को, ७ नबर की पलटन लेकर सर हेनरी ने विद्रोहियो पर आक्रमण किया, पर रास्ते मे ही यह सेना विद्रोह कर बैठी। उसने यूनियन जैक फेक दिया और क्राति का हरा झडा फहरा दिया। इसी दिन लखनऊ की समस्त सेनाओ ने भी विद्रोह कर दिया।

फैजाबाद अवध का एक प्रमुख नगर है। यहा के अनेक ताल्लुकेदारो के इलाके अंग्रेजों ने अत्यत अन्यायपूर्वक छीन लिये थे। अहमदशाह भी इन्ही ताल्लुकेदारो मे था। उसने अवध मे क्रातिकारी सगठन खडा करने मे दिन-रात एक कर दिया। अग्रेज अफसरो ने उसे पकडना चाहा, पर पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया। अत मे फौज भेजी गई। अहमदशाह पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उसे फासी [illegible] दंड दिया गया।

अहमदशाह की गिरफ्तारी से फैजाबाद के इलाके मे आग लग गई। [illegible]ा की सेना पहले ही क्राति करने की शपथ ले चुकी थी। सैनिक अपने

प्यारे नेता को फासी के तख्ते पर कैसे झूलने देते ? उन्होने विद्रोह कर दिया। अग्रेज गिरफ्तार कर लिये गए। अहमदशाह जेलखाने से बाहर लाया गया। उसने क्राति की बागडोर हाथ मे ली। सबसे पहले अहमदशाह ने अंग्रेजो को नावो मे बैठाकर फैजाबाद से रवाना कर दिया। शहर मे शाति की स्थापना की गई। नगर मे घोषणा की गई कि कंपनी सरकार की हुकूमत खतम हो गई है और वाजिदअली शाह की हुकूमत फिर से कायम हो गई है।

शाहगंज का ताल्लुकेदार राजा मानसिह क्रातिकारियो का तो नेता था ही, पर उसने २९ अग्रेज स्त्रियो और बच्चों को अत तक अपनी रक्षा में रखा। तीन जून को सीतापुर मे विद्रोह हुआ। २४ अग्रेज मार डाले गए। वहा का खजाना लूटा गया। कुछ अंग्रेजो ने पास के जमीदारो के यहा शरण ली। सीतापुर मे क्राति का झंडा फहराकर विद्रोही सैनिक फर्रुखाबाद पहुचे। अंग्रेजो ने वहा के नवाब तफ़ज्जलहुसेन को गद्दी से उतार दिया था। उसीको फिर नवाब बनाया गया। वहा के अंग्रेज भी मौत के घाट उतारे गए तथा किले पर हरा झंडा लहराया गया।

कालाकाकर के राजा हनुमंतसिह ने कई अग्रेजो को अपनी गढ़ी दर्याबाद मे आश्रय दिया। कई दिनों तक उन्हे वही आराम से रखा और उचित अवसर देखकर उन्हे प्रयाग रवाना कर दिया। बिदाई के समय कैप्टन बरो ने उसे धन्यवाद दिया। राजा की उदारता और विशाल-हृदयता को उसने राजभक्ति समझा और प्रार्थना की कि वह विद्रोह दबाने मे अग्रेजों की सहायता करे। राजासाहब ने सीधे खडे होकर कहा—"आपके देशवासी इस देश में आये और उन्होने हमारे राजा को निकाल दिया। आपके अफसरो ने ताल्लुकेदारो के अधिकार-पत्र छीन लिये। एक ही बार मे आपने मेरी वश-परंपरागत भूमि को भी छीन लिया। मैंने सब सहन किया। अब अकस्मात आप पर संकट आ पड़ा। इस देश के लोग आपके विरुद्ध खड़े हो गए। ऐसी हालत में जिसको आपने लूटा था, उसीके पास आप आये। शरणागत की रक्षा मेरा धर्म

था। इसलिए मैंने आपकी रक्षा की। अब मैं अपनी सेना एकत्र कर आपको इस देश से भगाने के लिए लखनऊ जा रहा हूं।"

राजा हनुमंतसिह के शब्दों मे अवध की वीरता, उदारता और पुरुषार्थ गूंज रहा था।

अवध के अनेक लोगो ने प्राण लेकर भागनेवाले अग्रेजो को कई स्थानो पर आश्रय दिया। अवध मे अग्रेजी सत्ता समाप्त हो चुकी थी। अग्रेजो के लिए भागकर अपनी जान बचाना कठिन हो रहा था। प्रात-भर के क्रातिकारी लखनऊ मे आकर इकट्ठे हो रहे थे। बस लारेंस अपनी चतुरता से लखनऊ मे अपनी सत्ता बनाये हुए था। पर जब कानपुर की स्वतत्रता का तथा अग्रेजों की हत्या का समाचार लखनऊ पहुचा तो लारेस और अन्य अग्रेज अफसर चिंतित हो उठे। क्रातिकारियो को इस समाचार ने बडा उत्साह प्रदान किया और वे अग्रेजो पर आक्रमण करने के लिए बढने लगे। लारेस ने इनका सामना करने के लिए २९ जून को लोहे के पुल पर अपनी सेना एकत्र की और विद्रोहियो का सामना करने चल पडा। अग्रेजी सेना मे ४०० गोरे थे। इसके अलावा ४०० देशी सिपाही तथा १० तोपे थी। चीनहद मे दोनो सेनाओ का सामना हुआ। आरभ मे अग्रेजी सेना के तोपखाने ने विद्रोहियो को बहुत हानि पहुचाई, पर क्रातिकारियो ने इस्माइलपुर पर अधिकार कर अग्रेजी सेना पर बाई ओर से आक्रमण कर दिया। इससे अंग्रेजी सेना के पैर उखड़ गए। इस युद्ध में १५० अंग्रेज मारे गए। दो तोपे तथा एक लबी मार की तोप क्रातिकारियों के हाथ लगी।

क्रातिकारी भागती हुई अंग्रेजी सेना का पीछा करने लगे। अंग्रेजी सेना ने रेजीडेसी मे शरण ली। मच्छी भवन मे बहुत-सी युद्धोपयोगी सामग्री थी। वह अगर क्रातिकारियो के हाथ में आ जाती तो नि.सदेह उनकी शक्ति बहुत बढ जाती। अग्रेजो ने इस सामग्री को जलाकर नष्ट कर दिया।

अवध मे नवाब वाजिदअली शाह के पुत्र बिरजिस कदर को नवाब

घोषित किया गया। उसके अल्पवयस्क होने के कारण उसकी प्रतिभाशाली माता बेगम हज़रतमहल राजकाज सभालने लगी।

'रैड पैफलैट' के लेखक के शब्दो मे—"समस्त अवध हमारे विरुद्ध उठ खडा हुआ था। हमारे सैनिक ही नही, वरन् भूतपूर्व नवाब के साठ हजार सैनिक, जमीदार और उनकी सेना, तोपो से सुसज्जित ढाई सौ किले, सब हमारे विरुद्ध कार्य कर रहे थे। उन्होने कपनी सरकार के शासन की तुलना की और सर्व-सम्मति से यह निर्णय किया कि नवाब का शासन कही अच्छा था। हमारी सेना के सेवा-निवृत्त पेशन-प्राप्त लोगो ने भी अपने को हमारे विरुद्ध घोपित किया और उनमे से प्रत्येक विद्रोह मे शामिल हुआ।"

: १४ :

अंग्रेजों का प्रत्याक्रमण

फतेहपुर

कानपुर और प्रयाग के बीच ग्राड ट्रंक रोड पर फतेहपुर नामक स्थान है। यातायात की दृष्टि से इस नगर की स्थिति अत्यत महत्व-पूर्ण है। यह स्थान पहले अवध के नवाब के अधीन था, पर १८०१ मे अग्रेजो ने इसे नवाब से ले लिया। यहा पर ईसाई प्रचारक अपने धर्म का प्रचार बडे उत्साह से करने लगे। यहा के लोगो ने इसे पसंद नही किया। इन प्रचारको का यहा के डिप्टी मजिस्ट्रेट हिकमत उल्ला ने विरोध करना आरभ किया। ईसाई धर्म के प्रचार से इस नगर मे असतोष का वातावरण पैदा हो गया था।

१८५७ के मई मास मे ७० सिपाही यहां खजाने की रक्षा के लिए नियुक्त किये गए थे। प्रयाग के कुछ विद्रोही सैनिकों ने यहा आकर अशाति फैलाने का प्रयत्न किया। उन्होने फतेहपुर के खजाने पर आक्रमण किया, पर खजाने पर पहरा देनेवाले सिपाहियो ने उन्हे वहा से भगा दिया। पर ज्यो-ही प्रयाग तथा कानपुर की घटनाओ का समाचार आया, यहां भी अशाति

फैल गई। सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया। नगर के सभी लोगो ने उनका साथ दिया। खजाना लूट लिया गया। जेलखाने से कैदी मुक्त कर दिये गए। न्यायालय जला दिया गया। इस समय यहा पर दस अग्रेज थे। नौ तो वहा से भाग गए। पर वहा का जज राबर्ट टकर बड़े साहस के साथ वही बना रहा। वह नगर मे शाति बनाये रखने मे प्रयत्नशील रहा। पुलिस को साथ लेकर वह नगर मे घूमता और लोगो को समझाता।

टकर ने हिकमत उल्ला को अपने पास बुलवाया। वह क्राति का हरा झडा लेकर पुलिस के सिपाहियो के साथ टकर के सामने पहुंचा और टकर वही मार डाला गया।

५ सप्ताह तक फतेहपुर पर क्राति का झडा लहराता रहा। नाना-साहब पेशवा को राजा घोषित किया गया।

प्रयाग पर अपना अधिकार कर लेने के बाद नील की दृष्टि कानपुर की ओर गई। फतेहपुर की घटनाओ का समाचार प्रयाग पहुंच चुका था। नील ने रेनाड को ४०० गोरे, ३०० सिख, १०० घुडसवार तथा २ तोपो के साथ फतेहपुर के विद्रोहियो को दड देने तथा बाद मे कानपुर की ओर बढने के लिए रवाना किया। नील ने रेनाड को लिखा—"रास्ते में जहा-कही विद्रोहियो ने आश्रय लिया हो, उस गांव पर आक्रमण करो और उसे जला डालने की धमकी दो। अगर आवश्यक हो तो गांव को जला भी डालो। जो सिपाही अपनी निर्दोषिता सिद्ध न कर सके, उन्हे फासी पर लटका दो। फतेहपुर मे लोगो ने विद्रोह किया है। उनपर आक्रमण करना अत्यत आवश्यक है। वहा जिस भाग मे पठान रहते है, उसे नष्ट कर डालो। अगर डिप्टी कलक्टर (हिकमत उल्ला) हाथ लगे तो उसे फासी दे दो और उसका सिर काटकर मस्जिद पर लटका दो।" नील की इस क्रूर आज्ञा का रेनाड की सेना ने बडी निर्दयतापूर्वक अक्षरश. पालन किया।

प्रयाग से फतेहपुर तक कई गाव जला दिये गए। स्त्री-पुरुष और

बच्चे उसीमे जल जाते थे। जो आग से बचने के लिए बाहर भागते, वे हँसते हुए गोरे और सिख सिपाहियो की गोलियो के शिकार होते। नील ने कानपुर के घिरे हुए अग्रेजो की सहायता के लिए गगा के रास्ते स्टीमर द्वारा स्पजिन के नायकत्व मे एक दल रवाना किया। यह दल भी गगा के किनारे के गावो पर गोलिया बरसाता हुआ और निर्दोष लोगो की हत्या करता हुआ कानपुर की ओर बढ रहा था।

३० जून को हैवलॉक प्रयाग पहुचा। गवर्नर जनरल केनिग ने उसे पश्चिमोत्तर प्रात का सेनापति नियुक्त किया था। ३ जुलाई को उसके पास समाचार आया कि कानपुर के सभी अग्रेज मार डाले गए है और स्त्रिया तथा बच्चे कैद कर लिये गए है। इस अनपेक्षित और दु खद समाचार के पहुचने पर प्रयाग मे अग्रेजो को बडा धक्का लगा। कानपुर हाथ से निकल जाने के कारण हैवलॉक चितित हो उठा। नील ने रेनाड के साथ कानपुर की ओर जो थोडी-सी सेना रवाना की थी, वह उसे इतनी अपर्याप्त लगी कि उसकी सुरक्षितता के सबध मे भी वह सशकित हो उठा। अतएव वह खुद एक बड़ी सेना लेकर कानपुर की ओर रवाना हुआ। फतेहपुर के पास रेनाड तथा हैवेलॉक की सेनाए मिली। इस समय अंग्रेजी सेना मे १४०० गोरे, ६०० सिख और हिंदुस्तानी सिपाही तथा ८ तोपे थी।

कानपुर पर चढ़ाई

इधर जब नानासाहब को पता चला कि एक बड़ी अंग्रेजी सेना कानपुर की ओर बढी चली आ रही है तो उसने अपने सलाहकारो की एक सभा की। अंग्रेजी सेना का सामना करने की योजना बनाई गई। सेनापति टीकासिह, नानासाहब के भाई बाबाभट्ट और ज्वालाप्रसाद के नेतृत्व मे १५०० पैदल, १२ तोपे, ५० घुडसवार तथा १५०० अन्य सैनिको के साथ एक सेना अग्रेजो को मार भगाने फतेहपुर की ओर रवाना हुई। फतेहपुर मे ज्वालाप्रसाद ने अपनी सेना को एक सुदृढ़ व्यूह मे खडा किया। लेकिन ज्वालाप्रसाद को यह पता न था कि हैवलॉक भी एक बडी सेना लेकर आ पहुंचा है।

उसे तो यही मालूम था कि रेनाड के नेतृत्व मे एक छोटी-सी फौज आ रही है। इधर हैवलॉक भी इस सेना को देखकर चकित हो गया। जिस बुद्धिमत्ता और चतुरता मे व्यूह की रचना की गई थी, उसे देखकर वह भी आश्चर्य मे पड गया। दोनो ओर से तोपे आग उगलने लगी। अग्रेजी तोपे लबी मार की थी। उनका निशाना ठीक बैठता था। ज्वालाप्रसाद की सेना की तोपे पुरानी और निकट का निशाना ही लगानेवाली थी. अत. ज्वालाप्रसाद ने सोचा कि तोपो से काम न चलेगा। इसलिए उसने अपने घुडसवारो को आक्रमण करने की आज्ञा दी।

हैवलॉक ने भी पालिशर के नेतृत्व मे अपने घुडसवारो को आगे बढने की आज्ञा दी। ज्वालाप्रसाद के सवारो ने पालिशर को घेर लिया, पर वह भी कम वीर न था। वह इन घुडसवारो की पंक्ति तोडकर बाहर निकल गया। पुन तोपो का युद्ध आरंभ हुआ। अग्रेजी तोपखाने के सामने हिदुस्तानियो का टिकना कठिन हो गया। ज्वालाप्रसाद की सेना भाग खडी हुई। इस युद्ध मे यद्यपि अंग्रेजो की ही जीत हुई, तथापि उनको हानि भी बहुत पहुची। अग्रेजों को १२ तोपे भी मिली।

फतेहपुर पर अग्रेजो की सत्ता पुन स्थापित की गई। फतेहपुर के मार्ग पर अग्रेजो ने कितने अत्याचार किये, इसका वर्णन मजिस्ट्रेट सेरार के शब्दो मे ही सुनिये—"रास्ते मे हमे जितने गाव मिले, वे सब जलकर राख हो गए थे। चारो ओर सन्नाटा था। कही भी कोई दिखाई न देता था। जहा सुदर घर थे, बडी-बड़ी इमारते थी, वहा अब राख के ढेर लगे हुए थे। मनुष्य का तो कही नाम ही न था। चारो ओर श्मशान-सा दिखाई देता था। दिन मे भी मेढको की बोली तथा रात को बोलनेवाले कीडो के स्वर सुनाई देते थे। हवा चलने पर शवो की दुर्गंध असह्य हो उठती थी। यह दृश्य कभी भी भूल न सकूगा।" फतेहपुर की भी यही हालत हुई। अग्रेजो ने फतेहपुर लूटा। नगर मे आग लगा दी गई। बड़ी-बडी इमारते ढहा दी गईं।

जब नानासाहब को फतेहपुर की हार का पता चला तो वह चिंतित

हो उठा। अंग्रेजो की प्रगति रोकना आवश्यक था। उसने पुन एक सेना अपने भाई बालाराव के अधिनायकत्व मे भेजी। कानपुर से २२ मील दूर औंय नामक स्थान मे युद्ध हुआ। यहा भी अंग्रेज विजयी हुए। जब बालाराव ने देखा कि युद्ध में टिकना कठिन है तो वह अपनी सेना को पास ही की पाडु नदी के इस पार निकाल लाया। वर्षा ऋतु होने के कारण नदी मे बाढ आ गई थी। बालासाहब ने अपनी सेना के साथ जिस पुल द्वारा नदी पार की थी, उसे तोडने के लिए दो तोपे पुल पर लगवादी। अंग्रेजी सेना के आते ही उसने तोपो से उनपर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजो ने भी तोपो से प्रत्याक्रमण किया। बालासाहब की तोपे बद हो गईं। अब सवारो का युद्ध आरभ हुआ। बालासाहब पुल उडा देने मे असफल रहा। रेनाड ने पुल पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध मे बालासाहब के कधे मे गोली लगी। रेनाड भी घायल हुआ। बालासाहब की सेना बडी वीरता से लडी थी, पर अनुशासन की कमी होने के कारण वह अंग्रेजो के सामने टिक न सकी।

नानासाहब ने युद्ध-समिति की बैठक बुलाई। बहुत समय तक वाद-विवाद होता रहा। सभी घबडा उठे थे। अत मे यही निश्चय किया गया कि अंग्रेजो का डटकर सामना किया जाय।

बीबीघर का हत्याकांड

इसी समय एक शर्मनाक बात भी हुई। कानपुर की नहर के पास एक छोटा-सा घर था। कहते है कि एक अंग्रेज अफसर ने यह मकान अपनी हिदुस्तानी प्रेमिका के लिए बनवाया था। इस मकान मे बीस फुट लबे तथा दस फुट चौडे दो कमरे थे। सामने एक छोटा-सा आगन था। इसकी लबाई छः गज थी। कानपुर के अंग्रेज स्त्रियो-पुरुषो और बच्चो को इसी मकान मे बंद कर दिया गया था। सत्तीचौरा घाट में बचे अंग्रेज स्त्री-पुरुप-बच्चे भी यही लाकर रखे गए थे। इसी प्रकार बिठूर के पास फतेहगढ़ से भागकर आश्रय लेने कानपुर आनेवाले अंग्रेज भी इसी घर मे लाकर रखे गए थे।

प्रयाग से फतेहपुर आती हुई अग्रेजी सेना ने आसपास के गावों पर जो अत्याचार किये, उससे कानपुर के लोग क्रुद्ध हो उठे । सैकडों निर्दोषो को फासी पर लटका देना, गाव-के-गाव को, उसमे रहनेवाले पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो के साथ जला देना, आदि घटनाओ के समाचार जब कानपुर आये तो लोगो के हृदयो मे प्रतिहिसा की अग्नि भभक उठी । इधर हैवलॉक की विजय के समाचार से लोग आतकित हो उठे । कहते है कि बीबीघर के अत्याचारो मे अजीमुल्ला का विशेष हाथ था । कानपुर की नर्तकी अजीज़न ने भी इस जघन्य काड मे भाग लिया । जब बीबीघर के पहरेदारो को सभी अग्रेजो को मार डालने की आज्ञा दी गई, तो उन्होने इसे मानने से इन्कार कर दिया । पेशवा के घर की स्त्रियो ने भी इनकी हत्या का विरोध किया । इसपर पहरेदारो को तोप से उडा देने की धमकी दी गई, पर वे टस-से-मस न हुए । अंत मे नर्तकी अजीजन पाच कसाइयो को लेकर आई । उन्होने दोसौ-दस स्त्रियो-बच्चो को मार डाला । सभी शव पास के कुए मे डाल दिये गए । इसी स्थान पर आगे चलकर कानपुर का 'मैमोरियल वेल' नामक स्मारक बनाया गया । अग्रेज पुरुष पहले ही तोप से उडाये जा चुके थे ।

कई अंग्रेजो ने इस हत्याकाड की आड मे और भी अनेक कल्पित अत्याचारो के समाचार यहा से लिखकर इग्लैड भेजे । इग्लैड के समाचार-पत्र ऐसे कपोल-कल्पित अत्याचारो के वर्णनों से रगे रहते थे । कुछ लोगो ने लिखा कि यहा स्त्रियो पर अत्याचार हुआ, उनका सतीत्व भग किया गया, आदि-आदि । पर ये सब बातें असत्य है । अग्रेज इतिहासकार खुद इन बातो का खडन करते है ।

इस हत्याकाड मे नानासाहब का कोई हाथ न था । अज़ीमुल्ला के मित्र मुहम्मदअली के कथन से यह बात सिद्ध होती है । मुहम्मदअली एक जबरदस्त देशभक्त था । उसने रुड़की कॉलेज से इजीनियरिग की परीक्षा पास की थी । वह नेपाल के महाराजा का सलाहकार भी रह चुका था । बाद मे वह अग्रेजी छावनी मे जासूसी करने के अपराध मे पकडा

गया । उसे फासी का दड दिया गया । फासी के पूर्व रात मे उसने फोर्बस माइकेल से वार्तालाप किया था । उसमे उसने कहा था––"नानासाहब स्त्रियो और बच्चो को बचाना चाहते थे । उन्होने इसके लिए बहुत प्रयत्न भी किये । पर उनकी एक न चली । बेगम (अजीजन) और अजीमुल्ला पर ही इसका उदरदायित्व है ।"

कानपुर पर अंग्रेजों का कब्जा

१६ जुलाई को नानासाहब खुद पाच हजार सैनिक, जिनमे पैदल, घुडसवार तथा गोलदाज सभी थे, साथ लेकर हैवलॉक का सामना करने रवाना हुआ । कानपुर से ४ मील दूर ही रवा नामक स्थान पर उसने अपना पडाव डाला । सेना का अर्ध-चक्राकार व्यूह बनाया गया । दोनो ओर तोपखाने लगाये गए । नानासाहब ने अत्यत कुशलता से अपनी सेना की मोर्चेबदी की थी । हैवलॉक की सेना मे भी एक हजार गोरे और तीन-सौ सिख सिपाही थे । पहले तोपो का युद्ध आरंभ हुआ । इस दिन नानासाहब के गोलंदाजो ने जिस कुशलता का परिचय दिया, वह अत्यंत प्रशसनीय है । हैवलॉक की सेना की प्रगति रुक गई । उसके लिए आगे बढना कठिन हो गया । हैवलॉक समझ गया कि जबतक नानासाहब की तोपे बद नही की जाती, तबतक लडाई का फल उसके पक्ष मे नही हो सकता । अतः उसने स्काटलैंड की हाइलैंडर सेना को सगीनो से हमला करने की आज्ञा दी । वीर हाइलैडर तोपो के गोलो की परवाह न कर आगे बढे । वे गोलदाजो पर टूट पडे और उन्होने तोपो पर अधिकार कर लिया । अब नानासाहब की सेना को पीछे हटना पडा । उसने फिर अग्रेजी सेना को तीन ओर से घेरकर आक्रमण कर दिया । इस समय अगर उसकी सेना थोडी देर भी रुकती तो नि.सदेह अग्रेजो के पैर उखड जाते । पर यह हुआ नही । हैव-लॉक की अनुशासित फौज ने आक्रमण जारी रखा । परिणामस्वरूप हिदुस्तानी भाग खडे हुए ।

अब हैवलॉक की सेना कानपुर पर अधिकार करने के लिए आगे बढी । इसी समय बीवीघर के हत्याकाड का समाचार मिला । सभी अग्रेज क्रोध

से पागल हो उठे। प्रतिहिसा की भावना प्रबल हो उठी। विद्रोही सिपाहियो ने शस्त्रागार मे आग लगाकर उसे नष्ट कर डाला। १७ जुलाई को कानपुर पर फिर यूनियन जैक फहराने लगा। कानपुर मे घोषणा की गई—"खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल अग्रेज सरकार का।"

कानपुर के युद्ध मे पराजित होकर नानासाहब बिठूर पहुचा। स्त्रियो को उसने जल्दी ही भागने के लिए तैयार होने को कहा। एक दुपट्टे मे उसने रत्न-अलकार बाधे। छत्रपति शिवाजी को स्वामी रामदास ने जो गेरुए वस्त्र प्रदान किये थे और जिनके कारण मराठो के झडे का रग भगवा था, वे वस्त्र चदन की एक छोटी पेटी मे थे, वे भी उसने साथ लिये। गगा के तट पर एक नाव तैयार खडी थी। उसमे बाजीराव पेशवा का पत्नी, उसकी कन्या, नानासाहब, बालासाहब तथा रावसाहब अपनी स्त्रियो के साथ बैठे। राघोबा नामक सेवक बार-बार मना करने पर भी उनके साथ हो लिया। रावसाहब और बालासाहब ने नाव को खेना आरंभ किया। रात्रि का समय था। गगा के तट पर पेशवा-कुटुब के दर्शनार्थ लोगो की भीड लगी थी। रावसाहब ने छः मोमबत्तिया जलाईं। मध्य धार मे पहुंचते ही नानासाहब ने अपने दुपट्टे की गाठ खोली और सभी रत्न-अलकार गगा को अर्पित कर दिये। रामदास स्वामी के वस्त्र भी उसने गंगार्पण कर दिये। नानासाहब ने मोमबत्तिया बुझा देने को कहा। चारो ओर अंधेरा छा गया। किनारे खडे लोगो ने समझा कि नाव डूब गई और पेशवा कुटुब भी उसके साथ गंगा के गर्भ मे विलीन हो गया। लोग चीत्कार कर उठे। उधर अधेरे मे ही नाव गंगा के पार जाकर लगी। वहा से नानासाहब अवध पहुंचा। अवध की बेगम ने उसका स्वागत किया और आश्रय दिया। वहा पहुंचने पर उसे ११ तोपो की सलामी दी गई।

कानपुर मे अंग्रेजो ने जिस निर्दयता तथा पाशविकता से बदला लिया, उसकी तुलना नही की जा सकती। नील ने कानपुर पहुचकर प्रतिहिसा को अत्यत विकराल रूप प्रदान किया। बीबीघर मे अब भी अग्रेज स्त्रियो और बच्चो का रक्त फैला पडा था। जिस किसी भी हिदुस्तानी

को नील पकड पाता, उसे वह रक्त चाटकर साफ करने के लिए बाध्य करता। जो इन्कार करता, उसे बेतो से पीटा जाता। जो अपनी सफाई देने मे जरा भी चूक जाता, वह फासी पर लटका दिया जाता। सैकडो निरपराध लोग सूली चढाये गए। फासी पर चढ़ाने के पहले हिदुओ के मुह मे गो-मास तथा मुसलमानो के मुह मे सूअर का गोश्त ठूसा जाता था, जिससे धर्म-भ्रष्ट होने की भावना उनके कष्टो को और बढाये। नील खुद लिखता है—"जिस दड से हिदुस्तानियो को सबसे अधिक दु ख होता था, जिस काम के करने मे उन्हे सबसे अधिक वेदना होती थी, वही दड उन्हे दिया जाता, वही काम उनसे कराये जाते। इस प्रकार का दड भले ही उनके धर्म के विरुद्ध हो, पर ऐसे अवसर के लिए यही उपयुक्त है।"

गोरी तथा सिख फौजो ने कानपुर को खूब लूटा। बाद मे नील ने लूट बंद करने का प्रयत्न किया। कानपुर पर अग्रेजो का अधिकार होते ही कई देशद्रोही अग्रेजो को प्रसन्न करने के लिए नानासाहब के सबध मे तरह-तरह के झूठे समाचार देने लगे। नारायण रामचद्र सूबेदार नील से मिला और उसने नाना के विरुद्ध अनेक बाते कही। इस समय उसने अग्रेजो की बडी सहायता की और इस नमकहरामी के उपलक्ष मे जागीर प्राप्त की। नानासाहब के विरोधी नानकचद वकील तक ने सूबेदार की बातो को अविश्वसनीय और झूठी कहा।

: १५ :

दिल्ली का पतन : लखनऊ पर आक्रमण

१२ जून को अंग्रेजी फौज ने दिल्ली पर आक्रमण किया। आरभ मे अग्रेज समझते थे कि दिल्ली पर अधिकार करना कठिन नही होगा। क्राति-कारी सेना की शक्ति का उन्हे ठीक अनुमान न था। वे सोचते थे कि गोरी फौज को देखते ही दिल्ली की सेना भाग खडी होगी। पर जब अग्रेज फौज दिल्ली के निकट पहुंची तो अग्रेजो को अपनी भूल मालूम हुई। दिल्ली की सेना की दृढ़ता और साहस देखकर वे दंग रह गए। १३४ दिन तक दिल्ली

के सामने अग्रेज सेना पडी रही । पर घेरे के बावजद लाल किले पर मुगल सम्राट का हरा झडा फहराता रहा ।

इस समय दिल्ली क्राति का प्रमुख केद्र था । दूर-दूर से विद्रोही सिपाही तथा क्रातिकारी यहा आकर एकत्र हो रहे थे । अनेक स्थानो पर अग्रेजो के जो खजाने लूटे गए थे, वे दिल्ली मे मुगल सम्राट को भेट किये जा रहे थे । मुगल सम्राट ने बख्तखा को प्रधान सेनापति बनाया था । इस समय दिल्ली मे तीस हजार सिपाही थे । बख्तखा ने इनको एक अनुशासित सेना बनाने का प्रयत्न किया, पर आपसी भेदभाव, वैमनस्य और व्यक्तिगत स्वार्थो ने उसे सफल नही होने दिया । कुछ लोग बख्तखा के सेनापति बनाये जाने से असतुष्ट थे । हिदू-मुसलमानो का भेद-भाव भी प्रबल था । विद्रोही सिपाही बार-बार बाजारो को लूटते थे । इससे बाजार प्राय. बद ही रहते थे । बादशाह वृद्ध था । परिस्थिति को सभालने की न उसमे क्षमता थी, और न दृढता । दिल्ली मे अराजकता-सी छाई हुई थी । मुगल-सम्राट के नाम पर विभिन्न सरदार फरमान निकालते । उसके नाम से आज्ञाए निकलती, पर सम्राट को उसका कुछ भी पता न लगता । मुगल सम्राट विद्रोही सेना के हाथो की कठपुतली था ।

बख्तखा योग्य व्यक्ति था । उसने अग्रेजो का सामना करने की तैयारी आरंभ की । बारूद बनाने के कई कारखाने खोले गए । सिपाहियो के विभिन्न दल बनाये गए तथा उन्हे विभिन्न कार्य सौपे गए ।

जून मे दिल्ली की सेना ने कई बार अग्रेजी सेना पर आक्रमण किया । २३ जून को प्लासी के युद्ध की शताब्दी थी । १०० वर्ष पूर्व ठीक इसी दिन अंग्रेजी सेना ने बगाल मे प्लासी के रणक्षेत्र मे सिराजुद्दौला को हराकर इस देश मे ब्रिटिश साम्राज्य की नीव डाली थी । दिल्ली की सेना ने इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने का निश्चय किया । इस दिन अग्रेजी सेना पर जोरदार आक्रमण किया गया । पर अग्रेजो की अनुशासित सेना के सामने दिल्ली की सेना कुछ न कर सकी ।

अग्रेज दिल्ली पर जल्दी-से-जल्दी अधिकार करना चाहते थे । दिल्ली

से अंग्रेजी सत्ता के हटने से देश मे अंग्रेजो की प्रतिष्ठा बहुत गिर गई थी। ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते थे, उनकी प्रतिष्ठा और भी गिरती चली जाती थी। यही कारण था कि केनिग और लारस दिल्ली पर विजय प्राप्त करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा रहे थे। पर दिल्ली पर सीधे आक्रमण करने का उन्हे साहस नही होता था।

दिल्ली नगर से थोडी दूर एक पहाडी है। इसीके पास अंग्रेजी सेना ने अपना पडाव डाला था। इस स्थान से चारो ओर मार्ग जाते थे। अत: यातायात की दृष्टि से भी यह स्थान बडा उपयुक्त था। अंग्रेजी सेना मे बारहसौ गोरे और कोई पाच हजार सिख तथा गुरखे थे। बाईस तोपे इस सेना के साथ थी। जिस प्रकार दिल्ली मे चारो ओर से विद्रोही आकर एकत्र हो रहे थे, उसी प्रकार अंग्रेजी सेना की सहायता के लिए भी चारो ओर से सेनाए और सामान आ रहा था। ६ सितबर को मेरठ से सेना पहुंची। अंग्रेजो की सहायता के लिए काश्मीर के महाराजा ने भी अपने पुत्र के साथ एक बडी सेना भेजी। दिल्ली पर आक्रमण करने की तैयारिया पूरी होने लगी। पधान इजीनियर बेयर्ड स्मिथ ने आक्रमण का नकशा तैयार किया।

५ जुलाई को सेनापति बरनार्ड की मृत्यु हो गई। अब जनरल रीड ने कमान सभाली, पर वह भी बीमार होकर छुट्टी पर चला गया। इसके बाद ब्रिगेडियर विल्सन को दिल्ली के मोर्चे का सेनापति बनाया गया। पर दिल्ली का आक्रमण कर्नल निकल्सन के सेनापतित्व मे आरभ हुआ। निकल्सन छत्तीसवर्षीय वीर नवयुवक था। उसने आते ही दिल्ली के आक्रमण की योजना को अतिम रूप दिया और आक्रमण आरभ कर दिया। इसी समय अंग्रेजो को जिंद के राजा से भी सहायता प्राप्त हुई। साथ ही फिरोजपुर का तोपखाना भी उनकी सहायता के लिए आ रहा था। दिल्ली के सेना-नायकों को इसका पता चल गया। बख्तखा ने तोपखाने पर अधिकार करने की योजना बनाई। अंग्रेज अफसरो को भी पता चल गया कि दिल्ली की सेना मार्ग मे ही इस तोपखाने पर आक्रमण करेगी। इसे रोकने

के लिए उन्होने अपनी फौज भेजी। इस प्रकार दोनो ओर की सेनाए रवाना हुई। नजफगढ मे नदी के दोनो किनारो पर दोनो सेनाए आकर डट गई। वर्षा के कारण नदी गहरी हो गई थी। बहाव भी जोरदार था। अग्रेजी सेना ने किसी प्रकार प्रातः ५ बजे नदी पार की और दिल्ली की सेना पर तोपो से आक्रमण कर दिया। दिल्ली की सेना भाग गई। १३ तोपो पर अग्रेजी सेना ने अधिकार कर लिया।

१४ सितबर से दिल्ली पर सीधा आक्रमण आरभ हुआ। निकलसन ने अग्रेजी सेना को कई भागो मे बाटकर कई तरफ से दिल्ली पर एक साथ आक्रमण कर दिया। दिल्ली के विभिन्न दरवाजो पर हमले हुए। एक दल ने काबुली दरवाजे पर जोरदार चढाई की। दिल्ली की सेना ने इसका जबरदस्त विरोध किया। उसकी गोलियो की बौछार से अग्रेजी सेना को बहुत हानि उठानी पडी। पर अग्रेजी सेना ने कडे विरोध के बावजूद इस दरवाजे पर अधिकार कर लिया। काश्मीरी दरवाजे की रक्षा मे सिपाहियो ने अग्रेजी सेना के छक्के छुडा दिये। सीधे आक्रमण से इसपर अधिकार करने मे असफल होने पर इस दरवाजे को अग्रेजो ने सुरग लगाकर उडा दिया।

लाहौरी-दरवाजे के लिए सबसे भयकर युद्ध हुआ। किशनगज से सिपाहियो को हटा देने पर भी अग्रेज इस दरवाजे पर अधिकार न कर सके। दिल्ली की सेना ने इस वीरता से मुकाबला किया कि अग्रेजी सेना को रुकना पडा। सिपाहियो ने यहा के मोर्चे पर तोपे लगा दी थी। उनकी मार के सामने अग्रेजी सेना आगे न बढ सकी। अग्रेजो की तरफ से सबसे पहले जम्मू की सेना ने आक्रमण किया, पर उसे तोपो के सामने से हटना पडा। फिर मेजर रीड के नेतृत्व मे गुरखे आगे बढे, पर उन्हे भी मुह की खानी पडी। अत मे होप ग्राट का दल आगे बढा। उसने बडे साहस और वीरता से आगे बढकर दिल्ली की तोपों को शात कर दिया।

इस प्रकार दिल्ली मे घुसने के रास्ते अग्रेजी सेना के लिए खुल गए। अब विजयी सेना ने दिल्ली मे प्रवेश किया। १३४ दिन बाद दिल्ली पर

यूनियन जैक फिर फहराया गया ।

दिल्ली में आतंक का राज

इस तरह लडाई समाप्त हुई । अब प्रतिहिसा आरभ हुई । जो सामने आता, वही गोली से उडा दिया जाता । सिखो ने दिल्ली के लोगो को अपनी किरचो मे मारा । हजारो निर्दोष और निरपराध लोग अग्रेजो और सिखो की क्रूरता के शिकार हुए ।

अग्रेजो और सिखो ने शहर को खूब लूटा । इस प्रकार दिल्ली लूटने का सिखो का स्वप्न पूरा हुआ । दिल्ली की ससार-प्रसिद्ध सपत्ति लूटी गई । कहते हैं कि प्रत्येक अग्रेज सिपाही हजारो की सपत्ति अपने साथ इग्लैड ले गया ।

दिल्ली मे हुए अत्याचार वर्णनातीत है । माटगुमरी मार्टिन लिखता है—"हमारी सेना ने जब नगर मे प्रवेश किया तो हमे जो मिला वह सगीनो से मार डाला गया । एक-एक मकान मे चालीस-चालीस व्यक्ति छिपे थे । वे विद्रोही नही थे और हमारी भलमनसाहत पर उन्हे विश्वास था । मुझे खुशी है कि उनका भ्रम दूर हो गया ।" राबर्ट्स ने लिखा है कि दिल्ली की सड़के लाशो से पटी थी ।

लार्ड एलफिन्स्टन ने सर जॉन लारेस को एक पत्र मे लिखा था—'हमारी सेना ने जो अयाचार किये, उसे सुनकर हृदय फट जाता है । बिना मित्र या शत्रु के भेदभाव के सबसे बदला लिया गया । लूट मे तो हमने नादिर-शाह को भी मात कर दिया ।"

रसेल अपनी डायरी मे लिखता है—"कभी-कभी मुसलमानो को मारने के पहले उन्हे सूअर की खाल मे सी दिया जाता था । उनपर सूअर की चरबी मली जाती थी । फिर वे जलाये जाते थे । इसी प्रकार हिदुओ को मारने के पहले उन्हे भी धर्म-भ्रष्ट किया जाता था ।"

दिल्ली के पतन के बाद सेनापति बख्तखा ने बहादुरशाह से कहा कि दिल्ली तो चली गई, पर अभी भी ऐसे स्थान है, जहा से फिरगियो के विरुद्ध युद्ध जारी रखा जा सकता है । पर बादशाह को और अधिक सकटमय

जीवन व्यतीत करने की इच्छी न थी। बहादुरशाह के बडे लडके दाराबख्त का विवाह मिर्जा इलाहीबख्श की पुत्री के साथ हुआ था। इलाहीबख्श बादशाह को अपने यहा ले गया। वहा मे बादशाह अपनी बेगम के साथ हुमायू के मकबरे पहुंचा। अग्रेजो के गुप्तचर विभाग के अफसर हडसन को उसके कर्मकारी रज्जबअली ने सब समाचार दे दिये। दिल्ली के कई लोग अग्रेजो को प्रसन्न करने मे लगे हुए थे ही। खुद इलाहीबख्श तक अग्रेजो से मिल चुका था। हडसन ने सेनापति विल्सन से बादशाह और उसके कुटुब को गिरफ्तार करने की आज्ञा मागी। पहले तो वह हिच-किचाया। पर अंत मे उसने आज्ञा दे दी। हडसन पचास सैनिको और रज्जबअली को साथ लेकर हुमायू के मकबरे पहुंचा। बादशाह तथा बेगम ने हडसन के इस आश्वासन पर कि उन्हे कोई हानि न पहुचाई जायगी, आत्म-समर्पण कर दिया। चारो ओर से बंद एक पालकी मे जीनतमहल अपने पुत्र जवाबख्त के साथ बैठी और दूसरी पालकी मे खुद मुगल सम्राट। हडसन हाथ मे नंगी तलवार लिये फाटक पर खडा था।

हडसन ने सम्राट से शस्त्र रखदेने के लिए कहा। सम्राट ने हडसन से कहा कि वह वचन दे कि उसकी, उसकी बेगम तथा पुत्र की जान की रक्षा होगी। हडसन ने वचन दे दिया। तब बादशाह ने शस्त्र रख दिये।

अब हडसन को रज्जबअली ने यह समाचार दिया कि हुमायू के मकबरे मे अभी भी सम्राट के पुत्र खादिर सुलतान, मिरज़ा मुगल और मिरज़ा अबूब-कर छिपे हुए हैं। सेनापति से आज्ञा लेकर हडसन फिर हुमायू के मकबरे पहुचा। राजकुमारो ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। बंद रथ मे तीनो शहजादे बैठाये गए। रथ रवाना हुआ। उपस्थित लोगो ने यह करुणा-पूर्ण दृश्य आखो मे आसू भरकर देखा। जब रथ शहर के निकट पहुंचा तो हडसन ने उसे रोक लिया और शहज़ादो को नीचे उतरने के लिए कहा। महान मुगल वंश के अतिम प्रतिनिधि कापते हुए नीचे उतरे। हडसन ने कहा—"तुमने हमारी स्त्रियो और बच्चो की हत्या की है। इसका बदला लिया जायगा।" शहजादो से अपने कपडे उतारने के लिए कहा गया।

इसके बाद हडसन की बदूक तीन बार गरजी और तीनो शहजादे वही ढेर हो गए। फिर वह तीनो लाशो को कोतवाली के सामने ले गया। वहा उसने उन लाशो को रखा ताकि लोग उन्हे देख सके।

हडसन खुद लिखता है—"चौबीस घटे के भीतर मैने बाबर और तैमूर के वश को समाप्त कर दिया। मै क्रूर नही हू। पर यह स्वीकार करता हू कि पृथ्वी से इन नर-पशुओ को उठा देने मे मुझे प्रसन्नता ही हुई।"

भारत मे ईसाई धर्म के प्रचार के महान समर्थक जी० आर० माटगुमरी ने इस सिलसिले मे एक पत्र लिखा था। यह पत्र उस समय के कई अग्रेजो की भावनाओ का प्रतीक है, अत. उसे यहा देना असगत न होगा। माटगुमरी लिखता है .

"प्रिय हडसन,

बादशाह को गिरफ्तार करने और उसके पुत्रो को मार डालने के उपलक्ष मे मै तुम्हे और तुम्हारी घुडसवार सेना को साधुवाद देता हू। विश्वास है कि तुम इसी प्रकार और भी अधिक लोगो को मौत के घाट उतारोगे।

"जल्दी मे हू।

हमेशा तुम्हारा
आर० माटगुमरी"

यही माटगुमरी आगे चलकर सर जॉन लारेस के बाद पजाब का लेफ्टीनेट गवर्नर नियुक्त हुआ। इतने जिम्मेदार व्यक्ति के ये विचार उस समय के अग्रेजो की मनोवृत्ति के परिचायक है।

लखनऊ पर आक्रमण

१८५७ की क्राति मे अवध ने जो भाग अदा किया, वह नि.सदेह इस क्राति के इतिहास का एक श्रेष्ठ तथा गौरवपूर्ण परिच्छेद है। अंग्रेज लेखक रसेल ने माना है कि "कम-से-कम अवध मे यह स्वातन्त्र्य-युद्ध था।" समस्त अवध एक व्यक्ति की तरह ब्रिटिश सत्ता को मिटा देने के लिए उठ खड़ा हुआ। दिल्ली के पतन के बाद भी छ: मास तक क्राति का झंडा

अवध मे शान से लहराता रहा। उत्तर अवध मे मम्मूखा, फिरोजशाह, नरपतसिह, राव रामबख्शसिह तथा दक्षिण अवध मे बेनीमाधव, हनुमतसिह, हरिहर आदि अनेक क्रातिकारी नेताओ ने ब्रिटिश शासन का चिह्न भी नही रहने दिया। ये सभी महानता ने अपने-अपने दलो के साथ ब्रिटिश सेना पर टूट पडने के लिए सदा तैयार रहते थे और इन्होने शत्रु सेना को अवध की तलवारो मे कितना पानी है, इसका अनुभव कराया।

अवध मे अंग्रेजी राज्य खत्म हो चुका था। उसके स्थान पर वाजिदअली शाह का पुत्र बिरजिस कदर नवाब घोषित हुआ। उसके नाबालिग होने के कारण उसकी प्रतिभावान माता हज़रतमहल ने शासन का भार सभाला। सबसे पहले उसने दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह के पास नजराना भेजा तथा उसकी ओर से राज्य करने की घोषणा की।

चीनहट की पराजय के बाद सभी अंग्रेजो ने लखनऊ की रेज़ीडेसी मे आश्रय लिया। अवध के चीफ कमिशनर सर हेनरी लारेस ने भी इसी स्थान को आत्मरक्षा के लिए चुना था। इस स्थान की रक्षा करने की पूरी व्यवस्था की गई। स्थान-स्थान पर तोपे चढाई गई। बदूकधारी पहरेदारो की नियुक्ति की गई। सिख सिपाही अग्रेजो की हर प्रकार से सहायता कर रहे थे।

२० जुलाई, १८५७ को क्रातिकारियो ने रेज़ीडेसी को घेर लिया तथा उसपर आक्रमण आरंभ कर दिया। भयकर गोलाबारी से भीतर के अंग्रेजों को बहुत हानि पहुंची। रेजीडेसी पर लगे यूनियन जैक को क्रातिकारियो ने चुनौती माना। गोलदाजो ने कई बार इस यूनियन जैक के डडे को झंडे सहित उडा दिया। अग्रेज हरबार दूसरा झडा लहरा देते थे। इस प्रकार प्रति दिन रेजीडेसी पर आक्रमण होते रहे। चीनहट की लडाई मे क्रातिकारियो ने अंग्रेजो से एक लंबी मार की तोप छीन ली थी। उसी तोप का एक गोला सर हेनरी लारेस को लगा। इससे वह बुरी तरह से घायल हो गया और ४ जुलाई को उसकी मृत्यु हो गई। हेनरी लारेस एक अत्यत योग्य तथा वीर पुरुष था। मृत्यु के समय उसने जो अतिम आदेश दिया,

वह उसकी वीरता के अनुकूल ही था। उसने कहा—"मेरे शव को विशेष सम्मान के साथ गाडने की आवश्यकता नही। कर्त्तव्य करते हुए मरनेवाले एक साधारण सिपाही की तरह ही मुझे दफनाया जाय। आत्म-समर्पण कभी न करना, अपमानजनक शर्तो पर सधि न करना। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए वीरो की तरह रणागण मे प्राणो का बलिदान कर देना।"

रेजीडेसी मे ६२७ गोरे तथा ७६५ हिदुस्तानी थे। इनकी स्थिति बड़ी निराशाजनक थी। हिदुस्तानी नौकर भाग खड़े हुए थे। पानी भरना, खाना बनाना, रेजीडेसी की रक्षा करना आदि सभी काम गोरो को खुद करने पडते थे। अग्रेज स्त्रिया घायलो की सेवा-सुश्रुषा करती थी। रहने के लिए स्थान की भी कमी थी। गोरो को अस्तबल रहना मे पडता था। यहा के अंग्रेजो ने कानपुर के अग्रेज अफसरो के पास सदेश-पर-सदेश भेजे कि उन्हे तुरंत सहायता भेजी जाय। रसद समाप्त हो रही थी। लोग आधा पेट खाकर रहने के लिए बाध्य हो गए थे।

कानपुर मे शाति स्थापित करने के बाद नील को वहां की रक्षा का भार सौपकर हैवलॉक लखनऊ के लिए रवाना हुआ। उसे आशा थी कि उसकी फौज ४ दिनो मे लखनऊ पहुच जायगी। अवध के क्रातिकारियो से दृढता, वीरता या कडे विरोध की तो उसे कल्पना ही न थी। डेढ़ हजार सैनिक तथा तेरह तोपो को लेकर वह अवध-विजय के लिए चल पडा।

कानपुर मे गंगा पार करते ही उसपर आक्रमण आरभ हुए। उन्नाव के पास क्रातिकारियों से प्रथम सघर्ष हुआ। दूसरा संघर्ष बशीरतगंज में हुआ। इसमें अंग्रेज सैनिकों का सामना जिस वीरता और दृढता से हुआ, उससे अंग्रेजो के छक्के छूट गए। हैवलॉक जैसा वीर और अनुभवी सेनापति भी आगे न बढ़ सका। उसे वापस आना पडा। तीन बार उसने आगे बढने का प्रयत्न किया, पर क्रातिकारी दलो ने उसे आगे न बढने दिया। अंत मे हारकर उसे लखनऊ की ओर बढने का विचार छोड़ना पडा। इतने में समाचार आया कि नानासाहब की सेना कानपुर पर पुनः अधिकार करने एकत्र हो रही है। अतः हैवलॉक लौटकर पुनः कानपुर चला गया।

हैवलॉक इतना घबडा उठा था कि उसने कलकत्ते समाचार भेजा—"हम लोग भयकर संकट मे हैं । यदि शीघ्र सहायता न पहुंची तो हमे लखनऊ की ओर बढने के बजाय प्रयाग की ओर लौटना पडेगा ।"

कलकत्ते से सर जेम्स आउटरम के नेतृत्व मे एक बडी गोरी पलटन आई। लखनऊ से हैवलॉक की वापसी के कारण अग्रेजो की प्रतिष्ठा बहुत गिर गई थी । अवध मे लोग समझने लगे थे कि अग्रेज सदा के लिए अवध से बिदा हो चुके हैं । ये घटनाएं पुनः घटित न हों, इसके लिए कानपुर से एक विशाल सेना हैवलॉक, नील, आउटरम, कूपर और आयर जैसे महारथियो के अधिनायकत्व मे आगे बढी ।

गगा पार होते ही पुन. इसका विरोध आरंभ हुआ । पर अब की वार यह विशाल सेना उन्नाव और बशीरतगज मे क्रातिकारियो के आक्रमणों की परवाह किये बिना आलमबाग पहुच गई । वहा क्रातिकारियो का पडाव था । प्रबल सघर्ष हुआ । सीधे लखनऊ पहुचना कठिन था । अतएव अग्रेजी सेना चक्कर खाकर रेज़ीडेसी की ओर बढी । क्रातिकारी सेना ने भी इसपर गोले बरसाये । चारबाग के पुल पर पुनः संघर्ष हुआ । दोनो ओर के अनेक सैनिक मारे गए । भूमि लाशो से पट गई । हैवलॉक के पुत्र ने यहा बडी वीरता दिखलाई । अंत मे विरोध को कुचलकर अग्रेजी सेना आगे बढी । खास बाजार मे अग्रेजी सेना पर पुन. आक्रमण हुआ । यही जनरल नील गोली का शिकार हुआ । अत में अग्रेजी सेना रेजीडेसी पहुंची । ८७ दिन से घिरे हुए ७०० अग्रेज मारे जा चके थे ।

हैवलॉक अपनी सेना के साथ रेजीडेसी पहुंच तो गया, पर अब वह खुद वहा घिर गया । रेजीडेसी का घेरा अब भी वैसा ही सुदृढ था । हैवलॉक अपनी सेना के साथ रेजीडेसी मे एक तरह से कैद हो गया। बाहर निकलना मृत्यु को आमंत्रित करना था । लखनऊ-विजय की महत्वाकाक्षा लेकर आनेवाले हैवलॉक को खुद कैदी बनना पडा !

१३ अगस्त को भारत का नवीन सेनापति सर कालिन कैंपबेल कलकत्ता पहुचा। दो महीने तक उसने देश की परिस्थिति का अध्ययन किया और

क्राति को नष्ट करने की पूर्ण तैयारी की। कासिमबाजार के कारखाने मे नई तोपे बनाई गईं। शस्त्र और गोला-बारूद तैयार किया गया। यातायात की व्यवस्था ठीक की गई। इस प्रकार क्राति का विरोध करने के लिए शक्ति और साधनों से लैस होकर नवीन सेनापति कैपबेल २७ अक्तूबर को कलकत्ते से रवाना हुआ। साथ ही गगा द्वारा नावो मे भरकर एक सेना कर्नल पावेल तथा कैप्टन विलियम पील के अधिनायकत्व मे रवाना हुई। रास्ते मे स्थान-स्थान पर इनपर क्रातिकारियो के दलों ने आक्रमण किये। कर्नल पावेल रास्ते मे ही गोली का शिकार हो गया।

कैपबेल को रास्ते मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। कोई हिंदुस्तानी सहायता देने को तैयार न था। रसद प्राप्त करना कठिन था। एक स्थान पर तो वह करीब-करीब क्रातिकारियो के हाथ मे ही पड़ गया, पर भाग्य ने उसका साथ दिया।

इधर दिल्ली-विजय के बाद जनरल विल्सन ने दोआब मे शाति और अंग्रेजी सत्ता फिर से स्थापित करने के लिए कर्नल ग्रिथेड के अधिनायकत्व मे ७९० गोरो तथा १९०० हिंदुस्तानी सिपाहियो की सेना भेजी। यह सेना सबसे पहले बुलदशहर पहुची। यहा अंग्रेजो की विजय हुई। मालघर मे नवाब वलीदाद खा मुगल सम्राट के नाम पर शासन चला रहा था। ज्यों ही उसने सुना कि अंग्रेज-सेना आ पहुची है, वह भाग खडा हुआ। इसी प्रकार अलीगढ पर भी इस सेना ने अधिकार कर लिया। आगरे में इस सेना का हिंदुस्तानियो से सामना हुआ। घनघोर सग्राम हुआ। तलवारे और संगीनें खूब चलीं। पर यहा भी अंग्रेजो की ही विजय हुई। फिर यह सेना मैनपुरी पहुची। यहा होप ग्राट ने ग्रिथेड से कार्य-भार सभाल लिया। २६ अक्तूबर को यह सेना कानपुर पहुची। ३१ तारीख को लखनऊ के पास आलमबाग मे इसने पडाव डाला। १३ नवंबर को कैंपबेल इस सेना से आ मिला। इस सयुक्त सेना ने रेज़ीडेंसी को मुक्त कराने के लिए कूच किया। शहनफज पर अधिकार करने मे अंग्रेजो को लोहे के चने चाबने पडे। इधर रेजीडेंसी मे फसे हुए अंग्रेजो ने जब यह सुना कि सेना-

पति कैंपवेल सेना लेकर आया है तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

१४ नवबर से २४ नवंवर तक लखनऊ मे जो घनघोर सग्राम हुआ, वह इतिहास की एक उल्लेखनीय घटना है। सिकदराबाद की दीवार फादने मे कई अग्रेजो ने अपना बलिदान कर दिया। जरनल कूपर तथा जनरल लैम्सडन इसी दीवार पर मारे गए। क्रातिकारियो ने भी अपनी जान पर खेलकर युद्ध किया। लखनऊ का सिकंदराबाद तो 'रक्त की झील' ही बन गया था। दिलखुशबाग, आलमबाग तथा शहनफज मे भी घनघोर समर हुआ। मोतीमहल मे भी बडी जबरदस्त टक्कर हुई।

रेजीडेसी के सामने अग्रेज सेना के आते ही हैवलॉक तथा आउटरम ने बाहर निकलकर क्रातिकारियो पर आक्रमण कर दिया। दिल्ली के पतन के समाचार ने अग्रेजो के उत्साह को द्विगुणित कर दिया था।

रेजीडेसी मे फसी अग्रेज स्त्रियो और बच्चो को दिलखुशबाग पहुंचाया गया। २४ नवबर को हैवलॉक की मृत्यु हुई। लखनऊ के इस युद्ध में नेपाल के राणा जगबहादुर के नेतृत्व में आई हुई गुरखा सेना ने भी अग्रेजो की बडी सहायता की।

इस प्रकार रेजीडेसी मे घिरे अग्रेजो की रक्षा हुई। पर अब भी लखनऊ नगर क्रातिकारियो के हाथो मे ही था। इतने मे समाचार आया कि कानपुर को तात्या टोपे ने पुन. जीत लिया है। अत. कैंपबेल ने आउटरम को ४००० सैनिको के साथ आलमबाग मे छोडा और वह खुद शीघ्रता से कानपुर के लिए रवाना हो गया।

: १६ :

कानपुर की पुर्नविजय

कानपुर के युद्ध के बाद क्राति के सभी सूत्र तात्या टोपे ने अपने सुदृढ हाथो मे ले लिये। कानपुर की पराजय के साथ अजीमुल्ला खा लुप्त हो गया। बाद की घटनाओ मे कही भी उसका नाम नही सुनाई पड़ता।

पता नही इस चतुर राजनीतिज्ञ का क्या हुआ ।[1]

कानपुर मे क्राति के प्रारभिक काल की घटनाओ मे विद्रोही सिपाहियो का प्रमुख हाथ था । ब्रिटिश सत्ता की समाप्ति पर सेना का सूत्र-सचालन इन्ही सिपाहियो के अफसरो के हाथो मे आ गया । सेनापति टीकासिंह आदि अपने को सैनिक-विशेषज्ञ समझते थे । सेना-संबधी बातो में नानासाहब अथवा तात्या टोपे की सलाह लेना उन्हे कभी आवश्यक नही मालूम हुआ ।

तात्या टोपे का पिता दक्षिण मे अहमदनगर मे येवळे नामक स्थान का रहनेवाला था । अतिम पेशवा बाजीराव के साथ वह बिठूर आ गया और उसके दान-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त हो गया । तात्या टोपे के पिता का नाम था पांडुरंगराव यैवळेकर । पाडुरगराव के आठ पुत्र थे । सबसे बडा था रामचंद्र । यही इतिहास मे तात्या टोपे के नाम से प्रसिद्ध है । एक बार बाजीराव पेशवा ने नवरत्नो से जडा हुआ एक टोप इसे इनाम दिया था । तभी से यह 'टोपे' कहलाने लगा ।

तात्या टोपे अत्यत वीर और स्वाभिमानी व्यक्ति था । देखने मे सुदर और आकर्षक था । मन का उदार था । बातचीत करने मे बडा चतुर था । उसकी बोली मे माधुर्य था, आत्मविश्वास की दृढता थी, ज्वलत देशप्रेम का आकर्षण था । यही कारण है कि जब वह किसीसे बात करता, तो उस पर उसकी छाप पडे बिना न रहती ।१८५७ मे उसकी आयु ५० वर्ष की थी ।

तात्या नानासाहब का बचपन का साथी था । उसका इसपर बडा विश्वास था । तात्या टोपे भी नानासाहब से बहुत प्रेम करता था । उसकी भलाई के लिए प्रत्येक त्याग करने को वह सदैव उद्यत रहता था ।

कानपुर के युद्ध मे अनेक सैनिक मारे गए । जो बचे, उनमे से कई भाग गए । सभी क्रातिकारी नेताओ को उस समय कानपुर छोड देना पड़ा । तात्या टोपे भी यहा से चला गया था । पर वह चैन से नही बैठा ।

---

१. अजीमुल्ला की मृत्यु के वर्णन के लिए अध्याय २४ देखिये ।

कानपुर की पराजय को उसने राष्ट्र का अपमान समझा। वह बदला लेने की तैयारी मे लग गया। कानपुर छोडकर वह कालपी पहुचा। इस नगर को उसने अपने कार्य का केद्र बनाया। कानपुर से लेकर ग्वालियर तक उसने अपनी सत्ता स्थापित की। स्थान-स्थान पर चौकियो की व्यवस्था की। ग्वालियर की सेना को भी वह समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया।

सर कालिन कैंपबेल जब लखनऊ की ओर रवाना हुआ तो तात्या टोपे ने कानपुर पर पुन. अधिकार कर लेने का यह उत्तम अवसर समझा। १० नवबर को तात्या टोपे ने जमुना पार की और भोगनीपुर, अकबरपुर, सिवली और शिवराजपुर पर पुन. अधिकार कर लिया। तात्या टोपे के इन कार्यो से कानपुर की रक्षा का भार सभालनेवाला कर्नल विडहम घबडा उठा। उसने सेनापति कैंपबेल को लिखा—"अगर शीघ्र ही परिस्थिति हमारे पक्ष मे नही बदलती, तो सेना को पुन घेरे मे आश्रय लेना पड़ेगा। लड़ाई अत्यंत विकराल हुई है और शत्रु अति प्रबल है—विशेषकर उसका तोपखाना बडा शक्तिशाली है।"

तात्या टोपे ने बडी बुद्धिमत्ता से प्रयाग और लखनऊ के बीच के मार्ग को काट दिया। लखनऊ की अग्रेज सेना को सहायता पहुचाना कठिन हो गया। तात्या ने सीधे कानपुर पर वार नही किया। विडहम यह न समझ सका कि तात्या टोपे अवध मे जाकर कैंपबेल की सेना के मार्ग को काटनेवाला है या कानपुर पर आक्रमण करनेवाला है। तात्या टोपे ने सोचा था कि जिस क्षण यह समाचार आयगा कि कैंपबेल और अवध के क्रांति-कारियो मे युद्ध आरभ हो गया है, उसी क्षण वह कानपुर पर आक्रमण कर देगा ताकि विंडहम को कही से सहायता न प्राप्त हो सके।

विडहम को चुपचाप बैठना उचित न लगा। वह भी अपनी सेना लेकर आगे बढा। २६ नवबर को पाडु नदी के किनारे दोनो सेनाओं मे संघर्ष हुआ। विडनम ने तात्या टोपे की तीन तोपे छीन ली। वह समझने लगा कि अब विजय दूर नही, पर उसे क्या पता था कि उसका सामना तात्या टोपे जैसे चतुर सेनापति से है! तात्या ने अपनी सेना को थोड़ा पीछे हटा

लिया। अंग्रेजी सेना समझी कि हिंदुस्तानी भाग रहे है। अग्रेजो ने टोपे की सेना का पीछा करना आरंभ किया। तात्या ने एकाएक मुडकर अग्रेज सेना के दाये और बाये भाग पर आक्रमण किया। यह आक्रमण इतनी चतुरता तथा शीघ्रता से किया गया कि अग्रेजी सेना के पैर उखड गए। विडहम अपनी सेना लेकर अपने घेरे मे पहुचा, जो समय पडने पर आश्रय के लिए बनाया गया था। तात्या टोपे ने अपने अपूर्व पराक्रम से पुन. कानपुर पर अधिकार किया। नानासाहब फिर कानपुर आया। वह बिठूर भी गया। तात्या टोपे को इस युद्ध मे पाच लाख रुपये, ग्यारह हजार कारतूस, पाचसौ तबू और बहुत-सा युद्धोपयोगी सामान मिला। यह सब लखनऊ की अंग्रेज सेना की सहायता के लिए भेजा जानेवाला था।

विडहम की सहायता करने के लिए सेनापति कैंपबेल दौडता हुआ लखनऊ से २० नवबर को कानपुर आया। उसके साथ लखनऊ की अग्रेज स्त्रिया, बच्चे तथा घायल सैनिक भी थे। सबसे पहले उसने इनको प्रयाग रवाना किया। ६ दिसंबर को तात्या टोपे और अग्रेज सेना मे फिर युद्ध हुआ। इस बार तात्या को हार खानी पडी। वह अपनी सेना लेकर शिव-राजपुर के रास्ते से गंगा पार जानेवाला था। अंग्रेज सेनापति होप ग्राट ने यही उसपर आक्रमण किया। तात्या टोपे को पद्रह तोपे छोडकर चला जाना पडा।

११ दिसबर को सर होप ग्राट बिठूर पहुचा।

तात्या टोपे ने कालपी पहुचकर पुन युद्ध की तैयारी आरभ की।

बिठूर की लूट

कानपुर मे अपनी सत्ता की पुनर्स्थापना कर अंग्रेज सेना बिठूर पहुची। वहां उसने जो लूटमार और हत्याकाड किया, वह अत्यंत क्रूर था। नाना-साहब पेशवा से संबधित सभी इमारते जला दी गईं। पेशवा का काच का बना गंगा-महल पेशवा घाट के पास था, वह जलाकर राख कर दिया गया। कहते है यह महल अत्यत सुदर था। रग-बिरगे कांचो से यह बनाया

गया था। बाजीराव पेशवा की धर्म-पत्नी सरस्वतीबाई की जिस स्थान पर दाह-क्रिया हुई थी, उस स्थान पर सगमरमर का एक सुदर मंदिर था। इसके भीतर रत्न जडे हुए थे। अग्रेजो ने रत्न आदि अमूल्य वस्तुए लूट ली। इस मदिर की सुदरता को नष्ट कर डाला गया। पास ही तात्या टोपे का प्रासाद था, उसे भी जलाकर राख कर दिया गया। नानासाहब के बाडे को तोपो मे नष्ट कर दिया गया और उसमे आग लगा दी गई। नानासाहब के इस प्रासाद मे पेशवाओ से सबधित कुछ स्त्रिया थी। जब बाडा जलने लगा तो वे प्राण बचाने छत पर पहुची। वहा उनको कई सैनिको ने देखा। एक अग्रेज लेखक ने लिखा है—"नानासाहब के जलते हुए बाड़े मे मैने एक सुदर नवयुवती को देखा।" लोगो का कथन है कि नानासाहब की मैना नामक एक पुत्री थी, जो इसी महल मे जल मरी। पर इतिहास मे उसकी पुत्री का कही उल्लेख नही है। हा, उसके बाडे मे मैनावती नामक एक दासी अवश्य थी। संभव है, उसीके नाम के कारण यह भ्रम फैला हो। नानासाहब के महल के इस अग्निकाड मे कई स्त्रिया जलकर मर गईं।

बिठूर मे तीन दिन तक हत्याकाड चलता रहा। जो कोई सड़क पर निकलता, गोली का शिकार होता। गगा मे एक स्टीमर द्वारा अग्रेजों ने गोलिया बरसाई। आज भी गगा-तट के मकानो पर इन गोलियो के चिह्न बने हुए है। अग्रेज फौज ने पहले दिन घर-घर घुसकर सोना-चादी और जेवरात लूटे। दूसरे दिन सिख फौज ने बर्तन, अन्न इत्यादि लूटा। तीसरे दिन मद्रासी फौज ने बचे हुए वस्त्र लूटे।

कुछ दिन बाद अगूरी तिवारी ने, जो इस समय अग्रेजो को गुप्त समाचार देने का काम कर रहा था, अग्रेजो को खबर दी कि नानासाहब का धन उसके बाड़े के कुए मे पड़ा हुआ है। धन को प्राप्त करने के लिए दोसौ गोरे कानपुर से आये। चार मोट बारह दिन तक पानी खीचती रही, तब कही इसका पानी इतना कम हुआ कि इसमे उतरा जा सके। इसमे से अग्रेजो को बहुत सपत्ति मिली। सोने की थालिया, चादी का सामान, जवाहरात, मोहरे आदि कुल मिलाकर तीस लाख रुपये की सपत्ति मिली।

इस प्रकार नानासाहब की लाखो रुपये की संपत्ति लूटी गई। नारायण रामचद्र सूबेदार ने भी इस लूट मे भाग लिया। पेशवा की सपत्ति का एक बडा भाग उसके घर पहुचा। कानपुर के नवाबगंज मे पेशवाओ की कोठी को सूबेदार ने नाममात्र के मूल्य पर खरीद लिया। इसमे आज भी उसके वंशज रहते है।

बिठूर मे जो आज 'सूबेदार की कोठी' कहलाती है, वह पेशवाओ का न्यायालय था। पर सन १८५७ की सेवाओ के पारितोषिक-स्वरूप अग्रेजो ने यह भवन उसे प्रदान कर दिया। इसीमे बाद मे सूबेदार-कुटुब रहने लगा।

इस प्रकार बिठूर अग्रेजो की प्रतिहिसा की अग्नि मे जलकर राख बन गया। बडे-बडे प्रासाद ईंटो के ढेर बन गए। आज भी इस स्वतत्र भारत मे प्रथम स्वातत्र्य समर की रणस्थली के ये अवशेष अपने सर्वस्व के बलिदान का स्मरण दिला रहे है।

: १७ :

झांसी का पतन

झांसी से अग्रेजी सत्ता के उठ जाने के बाद दस माह तक लक्ष्मीबाई ने बड़ी योग्यता से वहां का शासन चलाया। राज्य-भर मे उसने शाति स्थापित की। उसके शासन मे लोग अपने को सुरक्षित समझने लगे। वह प्रात काल पाच बजे उठती। स्नान और पूजा के बाद सरदार और शासन के अधिकारी उससे मिलते। सबकी बाते सुनकर वह उन्हे उचित आदेश देती। दोपहर के भोजन के उपरात थोड़ा विश्राम कर तीन बजे दरबार पहुंचती। वह प्राय: पुरुष-वेश मे ही पायजामा, कोट तथा टोपी पहनकर दरबार मे आती। गले मे मोती की माला तथा हाथ मे हीरे की अगूठी के सिवा वह कोई अलंकार न पहनती थी। कभी-कभी वह स्त्री वेश में भी दरबार मे आती थी। उस समय वह श्वेत साडी पहनती थी। दरबार मे वह सोने की जाली के परदे के पीछे बैठती थी। महारानी बहुत दानी थी।

"नही" तो कभी उसके मुह से निकलता ही न था। अपनी प्रजा से वह पुत्रवत प्रेम करती थी। जनता भी उसका माता की तरह आदर करती थी।

जब नत्थाखा ने झासी पर आक्रमण किया, तो झासी की जनता, आस-पास के ठाकुर, जमीदार आदि सभी महारानी की सहायता को दौड पडे। महारानी ने स्वय युद्ध का सचालन कर बात-की-बात मे नत्थाखा को मार भगाया। महारानी ने इदौर मे पोलिटीकल एजेट सर रॉबर्ट हेमिल्टन को पत्र लिखा कि वह अग्रेजो की अनुपस्थिति मे शासन-भार सभाले हुए है, पर यह पत्र हैमिल्टन को नही मिला।

६ जनवरी को महू (इदौर) से एक विशाल अग्रेजी सेना सर ह्यू रोज़ के अधिनायकत्व मे उत्तर की ओर रवाना हुई। रायगढ, चदेरी, सागर, बानापुर आदि पर विजय प्राप्त कर यह सेना १९ मार्च को झासी से १४ मील दूर चचलपुर नामक गाव पहुची। इस समय चारो ओर से क्राति-कारियो की हार तथा अग्रेज सेना की विजय के समाचार आ रहे थे। सर ह्यू रोज का दिमाग आसमान पर पहुंच चुका था। उसने सोचा कि जब नानासाहब और बहादुरशाह जैसे लोग भी अंग्रेजी सेना के सामने न टिक सके, तब झासी की रानी जैसी स्त्री कैसे टिक सकती है? उसने महारानी से कहला भेजा कि वह नि शस्त्र होकर मोरोपंत ताबे, लक्ष्मणराव तथा लालू बख्शी के साथ सामने हाजिर हो। पर उसे यह नही मालूम था कि महारानी कितनी आत्माभिमानिनी, वीर और साहसी है। रानी ने इस अपमानजनक सदेश की अवहेलना कर दी। अपने आत्माभिमान की रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हो गई।

महारानी ने झासी के किले की रक्षा की उचित व्यवस्था की। सब बुर्जो पर तोपे चढा दी गई। गोले-बारूद के कारखाने रात-दिन काम करने लगे। झासी के आस-पास की भूमि वीरान कर दी गई, ताकि अंग्रेज सेना को न रसद मिल सके, न पानी और न घोडो के लिए दाना ही मिल सके। पर ग्वालियर के महाराजा जयाजीराव शिदे तथा टीकमगढ़ के

राजा ने अंग्रेजो को पूरी सहायता दी। उन्होने उनके लिए रसद और घास आदि का भी प्रबध कर दिया।

अग्रेजी सेना शिक्षित और अनुशासित थी। ह्यूरोज़ का खयाल था कि झासी पर दो-तीन दिन मे अधिकार हो जायगा। पर झासी के वीरो ने अपनी महारानी का साथ दिया और ह्यूरोज़ के स्वप्न को मिट्टी मे मिला दिया।

महारानी स्वय दिन-रात युद्ध का सचालन करती रही। वह सैनिको को प्रोत्साहित करती थी तथा वीर-कृत्य करनेवालो को इनाम देती थी।

दस दिन तक झासी के लिए भयकर युद्ध हुआ। दिन-रात गोलाबारी होती रही। रात को तोपो के लाल-लाल गोले अत्यत भयकर दिखाई देते थे। २६ तारीख को जब दक्षिण के दरवाजे की तोपे शात हो गईं तो पूर्वी दरवाजे के गोलंदाज वहा पहुचे और उन्होने अग्रेजो के सर्व-श्रेष्ठ गोल-दाज को समाप्त कर दिया। अब अग्रेजो की तोपे की शात हो गई। गुलाम घोस नामक तोपची को, जिसने यह काम किया था, महारानी ने चांदी का एक कडा इनाम दिया।

छठे दिन झासी के गोलदाजो ने अग्रेजो को बडी हानि पहुचाई। सातवे दिन नगर के बाई ओर की दीवार ढह गई। पर मजदूरों ने काले कबल ओढकर रातो-रात इसकी मरम्मत कर दी। इसके बाद अग्रेजो ने किले के कुए पर शंकरगढ से गोले बरसाने शुरू किये। इससे पानी ढोने-वाले मारे गए। एक गोला किले के बारूदखाने पर भी गिरा। एक जोर-दार धडाका हुआ और सारा बारूदखाना उड गया।

इधर महारानी ने नानासाहब को सहायता के लिए पत्र लिखा। कालपी से एक बडी फौज लेकर तात्या टोपे झासी पहुचा। इससे अग्रेजी सेना घबडा उठी। एक तरफ से महारानी आक्रमण कर रही थी और दूसरी तरफ से वीर तात्या टोपे की फौजे उनपर हमला कर रही थी। बीच मे अंग्रेजो की स्थिति बडी दयनीय होती जा रही थी और उनकी पराजय निश्चय ही थी कि यकायक टोपे की सेना भागने लगी। टोपे के

सिपाही अनुशासित और शिक्षित नही थे। अतः अग्रेजो के सामने पहुचकर भी अग्रेजो के आक्रमण से घबडाकर वे भागने लगे। तात्या टोपे ने उन्हे रोकने का निष्फल प्रयत्न किया। अत मे तात्या को पीछे हटना पडा।

तात्या टोपे की हार का पता लगते ही महारानी निराश हो गई। अब अग्रेजो का आक्रमण तीव्रतर हो गया। नगर मे तोपो के गोलो से आग लगने लगी। बडे-बडे प्रासाद गिरने लगे। स्त्रिया तथा बच्चे मरने लगे। पानी के स्थान पर अग्रेज बराबर गोलाबारी कर रहे थे। इससे पानी की कमी पडने लगी। फिर भी कई बार महारानी के गोलदाजों ने ठीक निशाना साधकर अग्रेजो की तोपो को वद कर दिया।

अत मे झासी के सरदार भूलाजीसिह परदेशी ने स्वामीद्रोह किया। यह सरदार शहर के दक्षिण मे चार हजार सैनिको के साथ लड रहा था। इसके अधिकार मे तोपे भी थी। भूलाजी की आज्ञा से बारूद की जगह इन तोपो को बाजरे के बोरे दिये गए। इधर किले के बाहर हजारो मजदूर सिर पर घास के गठ्ठे लेकर किले की तरफ आ रहे थे। इनके पीछे सगीन लिये गोरे बढ रहे थे। घास के ये गठ्ठे नगर की दीवार के पास रखे गए। गोरे उनपर चढ़कर भीतर कूद गए। नगर अग्रेजों के हाथ मे चला गया। अग्रेजो ने जो सामने आया, उसे मारना आरंभ किया। झासी की सडके लाशो से पट गई। मालीसन ने कहा है कि झासी मे पाच हजार लोग मारे गए। पर वास्तव मे मरनेवालो की संख्या दस हजार से कम नही थी। बरसईकर गोडसे ने, जो इस हत्याकाड और लूट के प्रत्यक्ष-दर्शी थे, इसका बडा प्रामाणिक वर्णन किया है।

पहले दिन अग्रेजो ने सोना और जवाहरात लूटे। दूसरा दिन मद्रास के सिपाहियो की लूट का था। उन्होने ताबा और पीतल के बर्तन लूटे। हैदराबाद के सिपाहियो ने वस्त्रो की लूट की। फटो धोतिया तक वे उठा ले गए। सात दिन तक इसी तरह झासी मे लूट हुई।

महारानी ने जब यह देखा कि अग्रेजी सेना के सामने टिकना असभव

है, तो उसने वहा से कालपी जाने का निश्चय किया । इस घटना के प्रत्यक्ष-दर्शी गोडसे ने उसके झासी से निकलने का बडा मार्मिक वर्णन किया है—"तडके बाईसाहेब (महारानी) ने सब तैयारी पूरी की तथा किले के बाहर निकली । साथ मे मोरोपत ताबे तथा अन्य सबधी भी थे । सब लोग सशस्त्र होकर घोडो पर सवार हुए । हर एक को मोहरे तथा सोने के सिक्के कमर मे बाधने के लिए दिये गए। रियासत मे जो धन-सपत्ति थी, वह एक हाथी पर लादी गई । हाथी बीच मे खडा किया गया । साथ मे प्राण समर्पित करने को तैयार दोसौ विश्वस्त सरदार घोडो पर सवार हुए । महारानी खुद ढाई हजार रुपये के बहुमूल्य श्वेत अश्व पर आरूढ हुई । वह पायजामा, बूट आदि पुरुप-वेश धारण किये हुए थी । शरीर पर तार का कवच था । कमर मे जबिया आदि शस्त्र बाधकर बगल मे तलवार ली । उन्होने अपने साथ कुछ भी धन नही लिया । केवल चादी का एक प्याला आचल मे बाध लिया । तदुपरात रेशमी किनारे की धोती से उन्होने अपने दत्तक पुत्र को अपनी पीठ से बाधा ।"

रानी के उत्तरी दरवाजे से बाहर निकलते ही अग्रेजी सेना मे खलबली मच गई । चारो ओर से गोलियो की बौछार होने लगी। पर लक्ष्मीबाई अग्रेजी सेना को चीरकर उस पार निकल गई । लेफ्टीनेट बोकर ने कई घुड़सवारो के साथ उसका पीछा किया, पर मुह लटकाकर उसे वापस आना पडा । २४ घटे तक बराबर वह घोडे को दौडाती रही । जब वह कालपी पहुची तो घोडा इतना थक गया था कि अपनी स्वामिनी को सुर-क्षित स्थान पर पहुंचाकर वह गिर पडा और मर गया ।

महारानी का पिता उसके साथ कालपी न जा सका था। वह खजाना लेकर दतिया पहुचा । पर वहा के अधिकारियो ने उसकी संपत्ति लूट ली तथा उसे अंग्रेजो के हवाले कर दिया । वह झासी लाया गया। महारानी के पिता को उसीके महल के सामने फासी पर लटका दिया गया ।

कालपी इस समय क्रातिकारियों का एक प्रमुख केंद्र बन गया था । यहा आगे आनेवाले सघर्ष की तैयारी हो रही थी । सेनाएं इकट्ठी की जा

रही थी। कारखानो मे बारूद बनाया जा रहा था। सेनापति यद्यपि तात्या टोपे ही था, तथापि सिपाही उससे पूछा करते थे कि हमारे स्वामी कहा है? अत मे तात्या टोपे ने कुछ घुडसवारो को नानासाहब को लाने के लिए भेजा। नानासाहब ने अपने भतीजे रावसाहब को भेज दिया। कालपी मे रावसाहब को पेशवा घोषित किया गया।

इस समय कालपी मे रावसाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, बानपुर का राजा, बादा का नवाब, आदि अनेक क्रातिकारी नेता मौजूद थे। लेकिन इनमे अत तक यह निर्णय न हो सका कि अधिकार-सूत्र किसके हाथ मे रहे। तात्या टोपे यद्यपि सेनापति था, तथापि रावसाहब की आज्ञा उसे माननी पडती थी। इनमे प्रतिभावान तथा योग्य व्यक्ति दो ही थे। एक तो महारानी लक्ष्मीबाई और दूसरा तात्या टोपे। महारानी लक्ष्मीबाई को उसके स्त्री होने के कारण अधिकार नही सौपे जा सकते थे और तात्या टोपे राजवंश का न होने कारण अयोग्य माना गया। एक निश्चित तथा योग्य नेतृत्व का अभाव ही कालपी के नेताओ की असफलता का एक प्रमुख कारण था।

: १८ :

ग्वालियर पर अधिकार : लक्ष्मीबाई का प्राणोत्सर्ग

झासी पर अधिकार कर सर ह्यू रोज़ कालपी की ओर बढा। कोच मे युद्ध हुआ। तात्या टोपे ने महारानी को एक छोटीसी फौज का अधिनायकत्व दिया था। टोपे को हारकर वापस तो लौटना पडा, पर उसने जिस चतुरता से अपनी सेना को कटाये बिना लौटा लिया था, यह देख अग्रेजो ने भी उसकी रण-कुशलता की प्रशंसा की।

कालपी से ६ मील की दूरी पर गलौली मे पुनः अंग्रेजी सेना तथा तात्या टोपे की सेना मे युद्ध हुआ। इस युद्ध मे बादा का नवाब भी टोपे की सहायता को आया था। इस युद्ध मे लक्ष्मीबाई ने जो वीरता दिखलाई, उससे सभी

चकित रह गए । वह अपने घुडसवारो को लेकर अंग्रेजी सेना पर टूट पडी । उसने सैकडो अग्रेज सैनिको को काट डाला और अग्रेजो को पीछे हटने के लिए बाध्य किया । इसके बाद महारानी ने अग्रेजी तोपो पर हमला किया । इस दिन अग्रेज बहुत बुरी तरह से हारते, पर उनके सौभाग्य से इसी समय एक ऊट सेना उनकी सहायता को आ गई । इससे अग्रेजो की हार टल गई ।

महारानी के अतुल पराक्रम को सबने देखा । तात्या टोपे तथा रावसाहब ने उसे बधाई दी । टोपे यद्यपि चार बार हार चुका था, तथापि उसने अपनी सेना को कटने न दिया था। वह वैसी-ही थी । इस सेना के बल पर क्या किया जाय, इसपर विचार हुआ । अत मे लक्ष्मीबाई का यह विचार सबने पसंद किया कि ग्वालियर जाकर किले मे आश्रय लेना चाहिए । ग्वालियर की भौगोलिक स्थिति इतनी महत्वपूर्ण थी कि इसपर अधिकार करने से बडी सहायता प्राप्त होती । इस स्थान पर दक्षिण से भी सहायता प्राप्त की जा सकती थी ।

रावसाहब पेशवा, महारानी लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे अपनी सेना के साथ ग्वालियर की ओर बढे । इस समय ग्वालियर का महाराजा था जयाजीराव शिदे । उसके अल्पवयस्क होने के कारण सत्ता के सूत्र दीवान दिनकरराव राजवाडे के हाथो मे थे । वह अंग्रेज-भक्त था । उसके लिए स्वार्थ-साधन देशप्रेम से ऊचा था । अंग्रेज अफसरो के इशारो पर चलने मे ही वह अपने जीवन की सार्थकता मानता था । जब दिनकरराव ने सुना कि पेशवा की सेना ग्वालियर की ओर आ रही है, तो वह घबडा गया । इसी समय उसके पास रावसाहब का पत्र आया—"हम लोग मित्र-भाव से ग्वालियर आ रहे है । पेशवा और अपने संबधो का स्मरण कीजिये । हम आपसे सहायता की आशा करते है, ताकि हम दक्षिण की ओर बढ सके ।"

दिनकरराव ने उसका विरोध करने का निश्चय किया । जब पेशवा की सेना ग्वालियर मे मुरार नामक स्थान पर पहुची, तो दिनकरराव तथा जयाजीराव छः हजार पैदल, डेढ हजार घुड़सवार और आठ तोपो

के साथ उसपर आक्रमण करने आगे बढे। पर ग्वालियर की सेना अपने राजा तथा दीवान राजवाडे की तरह देशद्रोही न थी। इस सेना के कई अफसर जयाजीराव के पास गए और उन्होंने उससे कहा—"पेशवा तो आपके मालिक है। उनका विरोध करना उचित नही।" शिदे की सेना ने पेशवा की सेना पर आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। बहुत थोड़े सिपाही, जो अपने महाराज की आज्ञा मानना अधिक उचित समझते थे, आगे बढे और उन्होंने क्रातिकारी सेना पर आक्रमण कर दिया। महारानी लक्ष्मी-बाई के नेतृत्व मे घुडसवारो ने आगे बढकर शिदे की तोपो पर अधिकार कर लिया। महाराजा जयाजीराव तथा उसका देशद्रोही दीवान—दोनो—अग्रेजो की शरण लेने आगरा भाग गए।

इधर तात्या टोपे तथा महारानी लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर पर अधि-कार कर लिया। महारानी लक्ष्मीबाई की योजना पूर्ण रूप से सफल हुई। महारानी ने ग्वालियर के खजाने पर भी अधिकार किया। यहा से बहुत बडी मात्रा मे युद्ध-सामग्री प्राप्त हुई। ग्वालियर-विजय ने क्रातिकारियो को नवीन उत्साह और नवीन स्फूर्ति प्रदान की। पर इस विजय का जितना उपयोग होना चाहिए था, उतना न हो सका। ग्वा-लियर की विजय के बाद रावसाहब ने यहा अपना राज्याभिषेक कराया। ब्राह्मण-भोजन होने लगे। नाच-गाने के जलसे आरभ हुए। कई बार महारानी लक्ष्मीबाई ने रावसाहब से युद्ध की तैयारी करने को कहा, पर उसने उसकी एक न सुनी।

ग्वालियर मे क्राति के पक्ष मे बहुत-कुछ किया जा सकता था। आव-श्यकता थी अंग्रेज सेना का सामना करने की तैयारी की। गोला-बारूद, सेना, युद्ध-सामग्री आदि तैयार करने के बजाय यह बहुमूल्य समय आमोद-प्रमोद मे नष्ट किया गया। इस प्रकार क्रातिकारियो ने एक महान अवसर खो दिया।

लक्ष्मीबाई ग्वालियर का महत्व समझती थी। यहा बैठकर दक्षिण भारत मे भी क्रांति की अग्नि प्रज्वलित की जा सकती थी। देवास, इदौर आदि रियासतो से सेनाए प्राप्त की जा सकती थी। यही कारण था कि

ग्वालियर के पेशवा के हाथो मे पड़ते ही अग्रेज घबडा उठे। वे ग्वालियर के महत्व को अच्छी तरह से जानते थे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उस समय ब्रिटिश सत्ता का भविष्य काफी हद तक ग्वालियर पर निर्भर था। इसका अदाज इसीसे लगाया जा सकता है कि जब गवर्नर जनरल लार्ड केनिग ने सुना कि तात्या टोपे की सेना ग्वालियर की ओर बढ रही है, तो उसने विलायत तार भेजा था—"अगर सिंधिया विद्रोहियो से मिलता है तो कल ही मुझे अपना बिस्तर लपेटना पडेगा।"

रेजीडेट मैकफर्सन ने लिखा है—"ग्वालियर अगर विद्रोहियो से मिल जाता तो क्या होता ? इसका निश्चय करने के लिए नकशे पर एक दृष्टि-पात ही पर्याप्त है।"

मालिसन ने लिखा है—"अगर ग्वालियर शीघ्र ही फिर न जीता गया तो कितनी हानि होगी, इसकी कल्पना नही की जा सकती। इसमे बिलभ करने से तात्या टोपे ग्वालियर की महान राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति से तथा वहा की संपत्ति तथा प्राप्त युद्ध-सामग्री से और कालपी की बचीखुची सेना की सहायता से देश-भर मे मराठो के विद्रोह का अत्यत चतुरता से, जिसमे वह निपुण है, सगठन करेगा और दक्षिण की मराठा रियासतो पर पेशवा का झडा लहराने लगेगा।"

इस प्रकार ग्वालियर की विजय से अग्रेजो मे तहलका मच गया। अगर इस समय सारी शक्ति महारानी लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे के हाथो मे ही होती, तो नि सदेह अंग्रेजो का यह डर यथार्थ हो जाता, पर रावसाहब में, जो कालपी मे पेशवा घोषित हो चुका था, इतनी दूरदर्शिता कहा थी ?

लक्ष्मीबाई की वीरगति

अब अंग्रेजी सेना ग्वालियर विजय करने आगरा से रवाना हुई। बडी चतुरता से इस सेना के आगे अग्रेज सेनापति ने ग्वालियर के राजा जयाजीराव को रखा था। जब ग्वालियर की सेना ने अपने राजा को सामने देखा, तो उसने तात्या टोपे के लाख समझाने पर भी आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। अग्रेजो ने बड़ी सरलता से मुरार के किले पर

अधिकार कर लिया। १८ जून को युद्ध हुआ। पेशवा की सेना हार गई। इस युद्ध मे महारानी लक्ष्मीबाई बडी वीरता से लड़ी। उसकी प्रिय सखिया मदरा और काशी भी इस यद्ध मे बडे साहस से लड़ रही थी। उनके पराक्रम तथा वीरता को देख अग्रेज भी आश्चर्यचकित हो गए। स्वय लक्ष्मीबाई को कई घाव लगे, पर घायल अवस्था मे भी उसने कई अग्रेजो को यमलोक पहुचाया। तभी एक अग्रेज की तलवार से उसका सिर फट गया। आखे निकल आई और इस महान वीरांगना का शरीर निष्प्राण होकर गिर पडा। शव का वही पास मे ही दाह-संस्कार किया गया।

महारानी लक्ष्मीबाई संसार की सबसे महान वीरांगनाओ मे एक थी। उसके विरोधी सर ह्यू रोज़ ने जब उसकी मृत्यु का समाचार सुना तो उसने कहा—"विद्रोहियो मे सबसे बडा कोई मर्द था, तो वह झासी की रानी थी।" हिंदुस्तान के इतिहास मे उसका नाम सदा अमर रहेगा। उसकी स्मृति हमे सदा स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। सत्य ही १८ जून, १८५८ को हमारे देश की स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी अस्तंगत हुई।

: १९ :

बिहार में क्रांति : कुंवरसिंह

देश के सारे उत्तरी भाग मे क्राति की अग्नि धधक रही थी। ऐसे मे बिहार कैसे शात रहता? पटना क्रातिकारियो का एक प्रबल केद्र था। यह मुस्लिम-धर्मावलबी वहाबियो का यह सुदृढ़ अड्डा था। अवध और दिल्ली के मुगल राज्यो के हथियाये जाने के कारण ये लोग बडे क्रुद्ध थे और अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेकने मे प्रयत्नशील थे। यहां की क्रातिकारी गुप्त समितियो मे अनेक धनी साहूकार, व्यापारी तथा जमीदार भी शामिल थे। इसलिए इनके पास धन की कमी न थी। बिहार प्रात के क्रांतिकारी सगठन का केद्र पटना था। यह सगठन सुसंगठित और विशाल था। क्रातिकारी विचारो का प्रचार करने के लिए वैतनिक मौलवी रखे गए थे।

प्रात-भर मे इसकी शाखाए खुल चुकी थी। इसमे सभी तरह के लोग—जमीदार, सरकारी अफसर, पुलिस तथा सेना के सिपाही—शामिल हो चुके थे। दानापुर की छावनी मे भी गुप्त समिति की बैठके होती थी।

पटना के अग्रेज अधिकारी इस परिस्थिति को समझ चुके थे। मेरठ और दिल्ली की घटनाओ के समाचार पटना पहुचते ही वहा का कमिश्नर टेलर समझ गया कि पटना मे भी शीघ्र ही विस्फोट होनेवाला है। उसने आत्म-रक्षा की व्यवस्था करना शुरू की। टेलर चतुर व्यक्ति था। उसने देखा कि इस विद्रोह मे हिंदू और मुसलमान दोनो शामिल है, पर सिख लोग राज-भक्त है। अत. उसने २०० सिखों की एक टुकडी पटना की रक्षा के लिए भेजी। रैट्रे इस टुकड़ी का नायक था। जिन सिपाहियो पर थोडा-सा भी सदेह था, उनके शस्त्र छीन लिये गए। टेलर ने कठोरता से कार्य करना आरभ किया। तिरहुत जिले मे पुलिस का जमादार बारिशअली उसके सशय का पहला शिकार हुआ। उसके मकान की तलाशी ली गई। उसके यहा अवध के क्रातिकारी नेताओ के पत्र मिले। उसे फासी पर लटका दिया गया।

गया के मुस्लिम नेता अली करीम को भी पकड़ने का प्रयत्न किया गया, पर वहां पुलिस क्रातिकारियो से मिली हुई थी। अत· वह पकडा न जा सका। पटना के तीन प्रमुख मुल्लाओ पर टेलर ने क्राति के प्रचारक होने का सदेह किया। वह उन्हे गिरफ्तार करना चाहता था। पर उन्हे उनके घर पर पकडना आसान न था। इसलिए टेलर ने एक चाल खेली। एक दिन उसने अपने यहा राजनैतिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए प्रमुख नागरिको की सभा बुलाई। सभा मे वे तीनो मुल्ला भी बुलाये गए। सबके जाने के बाद वे गिरफ्तार कर लिये गए। अग्रेजो के इस विश्वासघात और धोखेबाजी से सभी क्रातिकारी चौकन्ने हो गए। उन्होने सोचा कि इस प्रकार नेताओं की गिरफ्तारियो से तो क्रातिकारी सगठन निर्बल होता जायगा। अतः उन्होने शीघ्र ही विद्रोह का झडा खडा करने का निश्चय किया।

पटना के क्रातिकारी नेता पीरअली के यहा ३ जुलाई को लोग एकत्र होने लगे। पीरअली लखनऊ का रहनेवाला था तथा यहा पुस्तक बेचने का काम करता था। वही से विद्रोह का आरभ किया गया। हाथों मे स्वतत्रता के हरे झडे लेकर "दीन-दीन" के नारो के साथ लोग बाहर निकल पड़े। सबसे पहले उन्होंने गिरजाघर पर आक्रमण किया। इसी समय ल्येल नामक अग्रेज उनके सामने आया। पीरअली ने उसे मार डाला।

इस विद्रोह का समाचार सुनते ही अधिकारियों ने इसके विरुद्ध सिख सेना भेजी। पीरअली पकड लिया गया। अन्य क्रातिकारियो के नाम जानने के लिए अंग्रेजो ने उसे बहुत कष्ट दिया। अग्रेज अफ़सरो ने उससे कहा—"अगर तुम अन्य नेताओ के नाम बता दो तो तुम्हारी जान बच सकती है।" पर उसने वीरतापूर्वक उत्तर दिया—"जीवन मे ऐसे कई अवसर आते है, जब जान बचाना उचित होता है, पर जीवन मे ऐसे भी अवसर आते है, जब प्राणो का बलिदान करना ही आवश्यक हो जाता है। यह अवसर ऐसा ही है। ऐसे अवसर पर मृत्यु का आलिगन अमर-जीवन का साधन बन जाता है।" फासी पर लटकते समय उसने अग्रेजो से कहा—"तुम मुझे फासी पर लटका सकते हो, मेरे जैसे दूसरों को भी फासी पर लटका सकते हो, पर तुम हमारे आदर्शो की हत्या नही कर सकते। अगर मै मरता हूं, तो मेरी जगह सहस्त्रों वीर पैदा होगे, जो तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देंगे।"

स्वातंत्र्यवीर कुंवरसिंह

जगदीशपुर का जमीदार कुवरसिंह एक वीर पुरुष था। उसकी नसो मे राजपूतो का वीर रक्त बह रहा था। जगदीशपुर उसकी वश-परपरागत तथा प्राचीन जागीर थी। सारे इलाके मे कुंवरसिंह का बडा सम्मान था। इस समय वह ८० वर्ष का था। इतना वृद्ध होते हुए भी उसमे नवयुवको को लज्जित करनेवाली वीरता और तेज़ी थी।

कुवरसिह के पिता शहजादासिह ने अपनी मृत्यु के समय अपना इलाका अपने चारो पुत्रो मे बाट दिया था। पर अन्य सब भाई अयोग्य थे। अतः

उनपर साहूकारो का ऋण हो गया । इलाका जप्त होने की नौबत आ गई तो कुवरसिह ने तीनों भाइयो के कर्ज को निबटाने की जिम्मेदारी ले ली । पर उसके लिए भी इतने बडे ऋण का बोझ उठाना असभव हो गया । अत मे अग्रेजो ने उसकी जमीदारी जप्त कर ली । इस अपमान को कुंवरसिह सहन न कर सका । वह उचित अवसर की ताक मे रहने लगा । जब देश मे क्रांतिकारी प्रचार आरभ हुआ तो उसके पास बिठूर और लखनऊ से प्रचारक आये और उन्होने उसे क्राति मे शामिल होने का निमत्रण दिया । उसके दो प्रमुख वीर सलाहकारो—रणदलनसिह और हरकिशनसिह—ने भी उसे क्राति की ओर आकर्षित किया ।

अग्रेज अफसर उससे सशकित हो उठे । टेलर ने उसे भी धोखा देकर गिरफ्तार करने की चाल खेली । उसने उसे अपने यहा आने का निमत्रण दिया, पर कुवरसिह उसके दाव मे न आया । फिरगियो की विश्वास-घातक नीति से वह पूर्णतया परिचित था । अत: उसने टेलर के निमत्रण को अस्वीकार कर दिया ।

इधर अग्रेज सशंकित हो ही रहे थे । किसी समय भी विद्रोह होने का भय लगा हुआ था । टेलर ने आपत्ति-काल मे अग्रेजो की रक्षा के लिए पक्की और सुदृढ दीवार से घिरे एक मकान को अपना आश्रय-स्थान बनाया । इसमे उसने आवश्यक सामग्री जमा की । समय पडने पर आत्म-रक्षा के लिए उसने इस घेरे मे शस्त्रास्त्र और गोला-बारूद एकत्रित किया । सभी अंग्रेजो को विद्रोह होते ही इस मकान मे आ जाने का आदेश दे दिया गया ।

जब पीरअली को फासी देने का समाचार दानापुर की छावनी में पहुचा तो सिपाही अधीर हो उठे । २५ जुलाई को दानापुर की सेना ने विद्रोह की घोषणा कर दी । विद्रोही सैनिक हाथो मे क्राति का हरा झंडा लेकर जगदीशपुर गए । कुंवरसिह ने आगे बढकर इन सैनिको का स्वागत किया । सैनिको ने कुंवरसिह से अपना नेतृत्व ग्रहण करने की प्रार्थना की । अस्सी-वर्षीय वृद्ध कुंवरसिह के बाहु फडकने लगे । अग्रेजो द्वारा किये गए अन्यायो

और अत्याचारो का बदला लेने का यह अवसर गवाना उसने उचित न समझा और क्राति की बागडोर उसने अपने हाथो मे ले ली ।

विद्रोही सैनिको के साथ वह आरा पहुचा । वहा उसने सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया । जेलखाने के फाटक खोल दिये गए । कुवरसिह के प्रभाव के कारण शहर मे न लूटपाट हुई और न कही हत्या ही हुई । आरा पर क्राति का हरा झंडा लहराने लगा ।

विद्रोह आरभ होते ही सभी अग्रेज अपने निश्चित आश्रय-स्थान मे एकत्र हो गए। अपनी रक्षा का उन्होने पूरा-पूरा प्रबध कर लिया था। इस घेरे मे सोलह अग्रेज तथा पचास सिख थे । विद्रोही सिपाही तथा नगर के क्रातिकारियो ने मिलकर इनपर आक्रमण किया । पर गोलियो की तेज़ बौछार के कारण उन्हे पीछे हटना पड़ा । तब भी क्रातिकारी घेरा इस मकान के चारो ओर पडा ही रहा । घेरे मे पानी की कमी पडने लगी । लेकिन सिखो ने २४ घटो मे ही एक नया कुंआ खोदकर तैयार कर लिया ।

कुवरसिंह ने घेरे के भीतर रहनेवाले सिखो के पास क्राति का पक्ष ग्रहण करने के लिए कई सदेश भेजे । लोग किले के पास जाकर सिखो से धर्म के नाम पर—देश के नाम पर—फिरगियो का पक्ष छोडकर क्रातिकारियो से मिलने की अपील करते, पर उत्तर उनको गोलियो की बौछार द्वारा ही मिलता ।

२६ जुलाई को दानापुर से आरा मे फंसे अंग्रेजो को मुक्त कराने तीनसौ गोरे तथा सौ सिख कैप्टन डनबर के नेतृत्व मे रवाना हुए । रास्ते मे आम का एक बाग था । कुंवरसिह ने अपने सैनिको को इस बाग मे छिपा दिया । ज्यो ही अग्रेज सेना यहा से निकली, उसपर गोलिया बरसने लगी । यह आक्रमण इतना भयंकर था कि केवल पचास सैनिक किसी प्रकार बचकर दानापुर वापस पहुच सके, जहा उन्होने अग्रेजी सेना की दुर्दशा का वर्णन किया ।

अब मेजर आयर के नेतृत्व मे अंग्रेजो की एक बडी सेना तोपखाने के साथ आरा के लिए रवाना हुई । मेजर आयर डनबर की हार का बदला

लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। बीवीगंज नामक स्थान पर दोनो सेनाए भिडी। कुंवरसिह की सेना ने अग्रेजो के छक्के छुडा दिये। पर जब तोपखाना सामने आया तो सिपाहियो के पैर उखड गए। आठ दिन की स्वतत्रता के बाद आरा पर पुनः यूनियन जैक फहराने लगा। घेरे मे पडे हुए अग्रेज मुक्त किये गए।

मेजर आयर आगे ही बढता गया। जगदीशपुर पर भी उसने अपना अधिकार कर लिया। कुंवरसिह अपनी सेना सहित जगलो मे छिप गया। वह बाहर निकलकर अग्रेजो को पुन ललकारने का उचित अवसर देख रहा था। मेजर आयर ने कुवरसिह का महल जला डाला और उसकी मपत्ति लूट ली।

सहसराम के जगलो मे कुवरसिह ने अपने योद्धाओ की सभा की। आगे क्या करना चाहिए, इसपर विचार हुआ। इस सभा मे कुंवरसिह ने जो भाषण दिया, वह बडा करुणापूर्ण था। उसने कहा—"आज मुझे दु ख इसलिए नही हो रहा है कि मै युद्ध मे हार गया हूं। मुझे दु ख इस बात का है कि जिस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मैंने क्राति मे भाग लिया, वह पूर्ण होता दिखाई नही देता। अगर आज मेरे पुत्र होता तो मुझे विश्वास हो जाता कि वह अपने पूर्वजो की जागीर पुन प्राप्त करेगा।"

इसपर उसका छोटा भाई अमरसिह आगे बढा और बोला—"मै आपका छोटा भाई हूं। आपके लिए पुत्रवत् ही हू। मै आज इस सभा मे प्रतिज्ञा करता हू कि जबतक मै अपने उद्देश्य को पूरा न कर लूगा, तबतक शस्त्र नीचे न रखूगा। आपके आशीर्वाद तथा रणदलनसिह और हर-किशनसिंह जैसे पराक्रमी वीरो की सहायता से मै अपने उद्देश्य मे अवश्य सफल होऊगा।"

क्रातिकारियो को इससे नवजीवन, नवस्फूर्ति और नवचेतना प्राप्त हुई। पुन. सभी अग्रेजो से भिडने की तैयारी करने लगे।

अग्रेज जानते थे कि कुवरसिह चुप बैठनेवाला नही है और उसके रहते उनका अस्तित्व सदा संकट मे बना रहेगा। अग्रेजो ने कुंवरसिह

के सिर के लिए पचास हजार रुपये का इनाम घोषित किया। पर जनता मे एक भी ऐसा व्यक्ति न निकला जो कुवरसिह को धोखा देता। अग्रेजो के लाख सिर मारने पर भी जनता से उन्हे कोई सहयोग नही मिला। कुंवर-सिह अगर एक तरफ जाता, तो गाववाले अग्रेजो को दूसरा ही रास्ता दिखाते। कुवरसिह की सहायता के लिए धनिको ने अपनी थैलिया खोल दी। नौ-जवानो ने अपना जीवन उसे सौप दिया।

एक बडी सेना इकटठी कर कुवरसिह पश्चिम की ओर रवाना हुआ। वह दिल्ली जाना चाहता था। पर रास्ते मे ही उसे दिल्ली पर अग्रेजो का अधिकार होने का समाचार मिला। फिर वह अयोध्या गया। वहा उसकी सेना मे क्राति के मतवाले कई नौजवान भरती हुए। इस सेना के साथ उसने आजमगढ पर आक्रमण कर दिया। अग्रेजी सेना मिलमैन के नेतृत्व मे सामने आई। पर उसे दो बार मुह की खानी पडी। कुवरसिह को इस लडाई मे कई तोपे मिली और युद्ध-सामग्री भी बडी मात्रा मे प्राप्त हुई। अब एक दूसरी अग्रेज सेना कर्नल डेम्स की अधीनता मे मिलमैन की सहायता के लिए आई। मिलमैन और डेम्स की सयुक्त सेना को कुवरसिह ने पुनः हराया। अग्रेजी सेना भाग खडी हुई और उसने आजमगढ के किले मे शरण ली। आजमगढ पर विजयी कुवरसिह ने अपना अधिकार जमा लिया। यहा से कुवरसिह बनारस की ओर बढा। कुवरसिह की विजयो से देश-भर मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। क्रातिकारियो को इससे बडी स्फूर्ति प्राप्त हुई। अनेक क्रातिकारी उससे आ मिले।

कुंवरसिह की विजयों ने लार्ड केनिग को घबडा दिया। उसने इस महान सकट का सामना करने के लिए लार्ड मार्क केर के अधिनायकत्व मे एक बडी सेना भेजी। ६ अप्रैल को इस सेना का कुंवरसिह की सेना से घोर सग्राम हुआ। कुवरसिह अपने उज्वल अश्व पर सवार होकर युद्ध का सचालन कर रहा था। इस अस्सीवर्षीय वृद्ध की चपलता, दृढता और वीरता नौजवानो को लज्जित करनेवाली थी। अत मे मार्क केर हारकर भाग गया और उसने आजमगढ़ के किले मे शरण ली। कुवरसिह बनारस की

ओर बढने के बजाय पुनः आजमगढ लौट आया और उसने वहा किले के चारो ओर घेरा डाल दिया।

डेम्स की सहायता के लिए सेनापति लुगार्ड के नेतृत्व में एक और सेना आई। पर कुंवरसिह ने उसे भी मार भगाया। अपनी एक सेना को उसने तीन भागो मे बाट दिया। एक सामने से उससे लडने लगा। दूसरे दलो ने घूमकर पीछे से लुगार्ड की सेना पर आक्रमण कर दिया। लुगार्ड को पीछे हटना पडा, पर उसने मनोहर गाव मे कुवरसिह पर फिर आक्रमण कर दिया। अब कुंवरसिह पुन· पीछे हटा। लुगार्ड पीछा करता ही रहा। शिवपुर नामक स्थान पर कुवरसिह की सेना ने गगा को पार किया। कुंवर-सिह अंतिम नाव मे था। इतने मे अग्रेज सेना वहा आ पहुंची। एक गोली कुंवरसिह की कलाई मे लगी। इससे शरीर-भर मे विष फैलने का डर था। वीर कुंवरसिह ने बाये हाथ मे तलवार ली और अपना दाहिना हाथ काट-कर गगा माता को समर्पित कर दिया। इसी घायल अवस्था मे कुवरसिह अपनी जन्मभूमि जगदीशपुर पहुचा। उसका महल तो अग्रेजी प्रतिहिसा की अग्नि मे पहले ही भस्म हो चुका था। वहा एक झोपडी मे इस महा-पराक्रमी वीर ने आराम किया। जगदीशपुर पर आठ महीने से जो यूनियन जैक फहरा रहा था, वह निकालकर फेक दिया गया और उसके स्थान पर क्राति का झंडा लहराया गया।

जगदीशपुर से डेढ़ मील की दूरी पर कुवरसिह की सेना का अग्रेजो से फिर युद्ध हुआ। अंग्रेजी सेना मे अग्रेज तो थोडे ही थे पर सिख अधिक थे। पर इस युद्ध मे भी अंग्रेजो की हार हुई। 'इडियन म्युटिनी' के लेखक व्हाइट के शब्दो में यह हार "हमारी पूर्ण तथा सबसे बुरी हार थी।" अनेक तोपे तथा युद्ध-सामग्री इसमे कुवरसिह को मिली।

पर कुवरसिह के हाथ का घाव ठीक न हो सका था। लडाई के अगले ही दिन, २४ अप्रैल, १८५८ को कुंवरसिंह ने अपनी इहलोक की यात्रा समाप्त की। मृत्यु के समय जगदीशपुर पर स्वतंत्रता का झंडा लहराता देख उसको अनंत शाति मिली होगी।

वीरवर कुंवरसिह के विजय-गीतो से देश का वायुमडल गूज रहा था। उसके पराक्रम की कथाए स्वतत्रता-संग्राम के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखी जाने योग्य है। क्राति के टिमटिमाते हुए दीपक को कुवरसिह की महान विजयो ने नवजीवन और नवज्योति प्रदान की। क्रातिकारियो के डगमगाते पैरो मे उनसे नया बल आया।

कुवरसिह की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई अमरसिह जगदीशपुर की गद्दी पर बैठा। चारो ओर अग्रेजी सेनाओ के बादल घिरते चले आ रहे थे। उसने इन आनेवाले सकटो का सामना करने के लिए अपनी सेना को सुसगठित करना आरभ किया। कुवरसिह के पराक्रम ने अंग्रेजो की प्रतिष्ठा धूल मे मिला दी थी। उसके सामने अग्रेजी सेना हर बार भागती नजर आती थी। अत मे लार्ड केनिग ने जगदीशपुर की शक्ति नष्ट करने के लिए सात ओर से आक्रमण करने को योजना बनाई। इन सात सेनाओं से अमरसिह घिर गया। इतनी बडी सेनाओ का सामना करना उसके लिए असभव था। अत वह अपने घोडे पर सवार होकर अग्रेजी सेना की पक्तियों को चीरता हुआ बाहर निकल गया। अग्रेजो ने उसका पीछा किया। अमरसिह के साथ चारसौ सैनिक थे। एक स्थान पर वह घेर लिया गया। इस सघर्ष मे उसके तीनसौ साथी मारे गए। पर अत मे अमरसिह पुन· भाग निकला। कैमूर की पहाडियो मे भी अग्रेजो ने उसका पीछा किया। पर उस महावीर ने हार नही मानी। वह घेरे से निकलकर तराई के जगलों मे पहुच गया। इसके बाद उसका क्या हुआ, इसका पता नही।

जगदीशपुर के महल की वीर स्त्रियो ने शत्रुओ के हाथों मे पडने से इन्कार कर दिया। महल की डेढसौ स्त्रिया तोपो के सामने खडी हो गई। अपने हाथों से उन्होने तोपो पर बत्ती रखी और अपने को नष्ट कर लिया। जगदीशपुर की स्त्रियो का जौहर भारतीय इतिहास का एक जगमगाता हुआ परिच्छेद है।

: २० :

रुहेलखंड और अवध में संघर्ष

दिल्ली का पतन हो चुका था, लेकिन रुहेलखड, दोआब, तथा अवध मे अभी भी क्रातिकारियो की सत्ता बनी हुई थी। दिल्ली से अग्रेजी सेना खाली हो गई थी, इसलिए अग्रेजो ने अब इस भाग की ओर ध्यान देना आरभ किया। उधर दिल्ली की हारी हुई क्रातिकारी सेना के सिपाही भी अवध और रुहेलखड मे आकर एकत्र होने लगे।

सीटन के नेतृत्व मे एक अग्रेज सेना दिल्ली से अलीगढ रवाना हुई। रास्ते के गावो को जलाती, निर्दोष व्यक्तियो और विद्रोही सिपाहियो को फासी पर लटकाती हुई यह सेना अलीगढ पहुची। वालपोल के नेतृत्व मे एक दूसरी सेना कानपुर से अलीगढ तक की सडक क्रातिकारियो से जीतने के लिए भेजी गई। इधर सेनापति कैंपबेल एक विशाल सेना लेकर कानपुर से फतेहगढ के लिए रवाना हुआ।

कर्नल वालपोल को इटावा मे रुक पडा। एक मकान मे पच्चीस क्रातिकारी बैठे हुए थे। दीवारो मे उन्होने बदूक की नली के लिए छेद कर लिये थे। ये क्रातिकारी अग्रेजी सेना पर इस तेजो से गोली-वर्षा कर रहे थे कि अग्रेजो की विशाल सेना को आगे बढने का साहस न होता था। स्वतत्रता के ये मतवाले पच्चीस वीर प्रबल अग्रजी सेना को चुनौती दे रहे थे। अत मे सुरग लगाकर इस मकान को अग्रेजी सेना ने उड़ा दिया। क्रातिकारी सैनिक इसीके नीचे दबकर मर गए। तब कही अग्रेजी सेना आगे बढ सकी। इन पच्चीस क्रातिकारियो का बलिदान १८५७ के संग्राम की एक और गौरवपूर्ण घटना है।

८ जनवरी, १८५८ को दोनो सेनाए मैनपुरी मे मिली। कैंपबेल की सेना ने फतेहगढ़ पर अधिकार कर लिया। दोआब के क्रातिकारियो का यह प्रमुख केंद्र था। फर्रुखाबाद के नवाब का किला व युद्ध का सामान भी अग्रेजो को मिला। नवाब खुद अग्रेजो का कैदी बन गया। यहा नानासाहब

की सेना का एक वीर अधिकारी नादिरखा भी पकडा गया। उसे फासी पर लटका दिया गया। मृत्यु के समय नादिरखा ने लोगो को लक्ष्य कर कहा—"ऐ हिदुस्तान के लोगो! अपनी तलवारे खीचो और फिरगियो को मारकर देश को आजाद करो।"

दिल्ली के अनेक सेनानायक अब भी शस्त्र लेकर अपने दलो के साथ रुहेलखड तथा अवध मे ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देते घूम रहे थे। रुहेलखड अपने प्रिय नेता बख्तखा के नेतृत्व मे और नीमच वीरसिह के नेतृत्व मे विद्रोही बना लड रहा था। इसी प्रकार अन्य कई क्रातिकारी नेता अपने-अपने स्थानो मे क्राति का झडा ऊचा किये हुए थे। दिल्ली मे एक बार खबर उड़ी कि नानासाहब बहादुरशाह को मुक्त कराने दिल्ली आ रहा है। चारों ओर तहलका मच गया। बहादुरशाह पर पहरा देनेवाले अग्रेज सैनिको को गुप्त आज्ञा दे दी गई कि नानासाहब के दिल्ली आते ही बहादुरशाह को गोली से उडा दिया जाय।

फतेहगढ मे सीटन, वालपोल तथा सेनापति कैंपबेल की सेनाए आकर इकट्ठी हुईं। इस समय अग्रेजी सेना मे सत्रह हजार पैदल, पाच हजार सवार तथा एकसौ चौतीस तोपे थी। इतनी बडी सेना अवध मे कभी नही देखी गई थी। इस सेना मे अंग्रेज, सिख तथा पंजाबी थे। अनेक पराजयो का बदला लेने यह विशाल सेना लखनऊ की ओर बढ़ी। रास्ते के कई गांव बारूद से उडा दिये गए, ताकि लोग आतकित होकर क्रातिकारियो का साथ न दें।

पर इतनी सेना भी अवध-विजय के लिए पर्याप्त नही समझी गई। अग्रेजो ने नेपाल के राणा जंगबहादुर से सहायता मागी। अवध और नेपाल की तो पुरानी शत्रुता थी। नेपाल-युद्ध मे वाजिदअली शाह ने ढाई करोड़ रुपया अंग्रेजों को सहायता में दिया था। उसका बदला लेने तीन हजार गुरखा सेना आजमगढ और जौनपुर आई। क्रातिकारियो पर आक्रमण करते हुए यह सेना आगे बढने लगी। क्रातिकारी नेता मुहम्मद हुसैन, बेनीमाधव तथा नादिरखा ने इस सेना पर आक्रमण कर उसे पूर्वी

अवध से बाहर निकाल दिया।

नौ हजार गुरखो की एक और विशाल सेना लेकर जगबहादुरसिह खुद लखनऊ की ओर बढ़ने लगा। ब्रिगेडियर एच० रोक्राफ्ट की सेना भी दूसरी ओर से इस गुरखा सेना से जा मिली। रास्ते मे अकबरपुर का एक छोटा-सा किला था। आश्चर्य की बात तो यह है कि केवल चौतीस क्रातिकारी इसकी रक्षा कर रहे थे। गुरखो तथा गोरो की संयुक्त सेना ने इस किले पर हमला किया। चौतीस वीर अपने स्थान पर डटे किले की रक्षा करते रहे। वे जानते थे कि इतनी बडी सेना के सामने उनका टिकना कठिन है। पर जबतक उनमे से एक भी जीवित रहा, वे कर्त्तव्य-पथ डटे रहे। जब चौतीसो वीर अपने स्थान पर मारे गए, तभी किला अंग्रेजो के हाथ लगा।

रास्ते के दरौरा नामक किले पर रोक्राफ्ट ने आक्रमण किया। लाख प्रयत्न करने पर भी वह यह किला न जीत सका। अत मे हारकर उसे भागना पड़ा। सेनापति कैंपबेल ने दड-स्वरूप उसका पद घटा दिया।

लखनऊ क्राति का प्रमुख केद्र था। सेना का सचालन मौलवी अहमद-शाह के सुयोग्य तथा सुदृढ हाथो मे था, पर क्रातिकारियो का बल आपसी वैमनस्य, प्रतिस्पर्धा तथा स्वार्थ के कारण घट गया था। लोग अहमद-शाह के प्रभाव को देख उससे डाह करने लगे थे। अहमदशाह ने कई बार आलमबाग मे पड़ी हुई अंग्रेज सेना पर आक्रमण किया। वह उसे वहा से भगा देना चाहता था। पर उसके कई अफसर उसकी आज्ञाओ की अवहेलना करते थे। अतः वह अपने प्रयत्न मे असफल रहा।

जब अंग्रेजो द्वारा होनेवाले आक्रमण का समाचार लखनऊ पहुंचा तो क्रातिकारी नेता आपस मे मिले। पर विरोध की योजना मे इतना मतभेद हो गया कि कोई निर्णय न हो सका। यद्यपि वास्तविक शासक हजरतमहल थी, तथापि वह क्रातिकारियों को संयुक्त कार्य करने के लिए प्रेरित न कर सकी।

अंग्रेजी सेना लखनऊ पहुंची। अहमदशाह अपनी सेना के साथ उसका सामना करन पहुंचा। युद्ध में मौलवी हाथी या घोडे पर सवार होकर

सदा सेना के आगे रहता । १५ जनवरी को उसके हाथ मे गोली लगी । १७ जनवरी को वीर विदेही हनूमान घायल हो गया और अग्रेजो के हाथो मे पड गया । राजा बालकृष्णसिह भी युद्ध में काम आया । आपसी वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा को मिटाने के लिए स्वय बेगम हजरतमहल घोडे पर सवार होकर रणक्षेत्र मे उतरी । ६ मार्च से १५ मार्च तक लखनऊ मे खूब घमासान युद्ध हुआ । एक-एक इच भूमि के लिए लड़ाई हुई । लखनऊ की सडको पर रक्त की नदिया बहने लगी । स्थान-स्थान पर लाशे बिछी पडी थी ।

कोई मार्ग न देखकर बेगम हजरतमहल, नवाब बिरजिस कदर तथा मौलवी अहमदशाह शहर से निकल गए । एक बार फिर अहमदशाह अपनी छोटी सी सेना के साथ लखनऊ के शहादतगज मे घुस आया और उसने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण पर दिया । उसके पास मुट्ठी-भर सैनिक तथा केवल दो तोपे थी । पर उसने इस दिन जिस वीरता से युद्ध किया, उसकी अंग्रेजों ने भी प्रशंसा की है । पर वह विशाल अग्रेजी सेना के सामने कैसे टिक सकता था ? उसे पुन. भागना पड़ा । अग्रेज घुडसवारो ने छ. मील तक उसका पीछा किया, पर वे उसे पकड न सके ।

लखनऊ पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया । दस महीने तक यहा क्राति का झंडा लहराता रहा था । अब उसके स्थान पर यूनियन जैक फिर फहराने लगा ।

लखनऊ नगर भी अंग्रेजो की क्रूर प्रतिहिसा का शिकार बना । लोगो को घरो के बाहर घसीटा गया । शरीर मे संगीनें भोंक-भोककर उन्हे ऊपर उठाया जाता । कई लोग जिदा जला दिये गए । अग्रेज सैनिको ने ऐसे भयकर अत्याचार किये कि उनका वर्णन करना असभव है । लखनऊ खूब लूटा गया । असख्यो की संपत्ति अग्रेजो के हाथ लगी ।

अग्रेज सैनिक महल मे घुस गए । जनानखाने में उन्होने कई स्त्रियो को मार डाला । कई गिरफ्तार कर ली गई । एक कैदी बेगम से हंसकर किसी अग्रेज ने पूछा—"क्या आप यह नहीं मानती कि युद्ध समाप्त हो गया ?"

उसने जवाब दिया—"नही, मुझे पूरा यकीन है कि अत मे तुम्हारी ही हार होगी।"

: २१ :

तात्या टोपे की आत्माहुति

ग्वालियर के युद्ध के बाद १८५७ के क्रातिकारी महायज्ञ की ज्वालाए प्राय बुझ चुकी थी। पर अनेक पराजयो को चुनौती देते हुए एक महान वीर ने रणागण से हटने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि जबतक मै जीवित हू, तबतक क्राति की ज्वाला कभी न बुझने दूगा। उसने अपने सर्वस्व की आहुति देकर स्वातन्त्र्य यज्ञ-कुड के बुझते हुए हुताशन को इतनी प्रबलता और प्रखरता से प्रज्वलित कर दिया कि ससार आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगा। इस महान वीर और पराक्रमी पुरुष का नाम था तात्या टोपे।

२० जून, १८५८ को ग्वालियर के रणक्षेत्र मे जो युद्ध हुआ, जिसमे महारानी लक्ष्मीबाई ने भारतमाता के चरणो में अपने प्राण समर्पित कर दिये, उसके बाद सभी क्रातिकारी नेता हताश हो गए। इस रणक्षेत्र मे क्राति के सफल होने की रही-सही आशा भी नष्ट हो गई। नेताओ के सामने सर्वनाश का राक्षस विकराल रूप धारण कर नृत्य करने लगा। सभी अपने-अपने दलो के साथ इधर-उधर चल दिये। झासी के रामरावगोविद तथा रघुनाथसिह महारानी लक्ष्मीबाई के अंतिम आदेश का पालन करते हुए उसके दत्तकपुत्र दामोदरराव उर्फ आनद को साथ लेकर एक सुरक्षित स्थान मे जाकर छिप गए। बालासाहब तथा नानासाहब इस समय अवध और रुहेलखंड में घूम रहे थे। रावसाहब और तात्या टोपे जावरा अलीपुर की ओर भागे। पर इन लोगो का उद्देश्य अपने प्राणो की रक्षा करना न था। वे तो अब भी स्वतंत्रता की लडाई जारी रखने के प्रयत्न मे लगे

हुए थे। सन १८५८ के जून से लेकर मार्च, १८५९ तक तात्या टोपे न पराजय को चुनौती देते हुए स्वातन्त्र्य-समर जारी रखा। उत्तर मे अलवर से लेकर दक्षिण मे नर्मदा के पार नमापुर तक तथा पश्चिम मे उदयपुर से लेकर पूर्व में सागर तक—दस महीने तक वह अग्रेजो के अनेक महान सेनापतियो को छकाते हुए घूमता रहा। अग्रेजो की सात-आठ सेनाए अनुभवी तथा पराक्रमी सेनापतियो के अधिनायकत्व मे इस वीर पुरुष को पकडने के लिए जी-जान से प्रयत्न कर रही थी। चारों ओर से वे उसे घेरने के प्रयत्न कर रही थी। इस समय तात्या टोपे के पास न तो बडी सेना थी, न मित्र थे। न धन था और न युद्ध चलाने के साधन ही। पर ऐसी विकट परिस्थिति मे भी, जब पीछे निराशा और आगे सर्वनाश ही दिखाई देता था, तात्या टोपे ने साहस नही खोया। कई अन्य क्रातिकारी नेताओं की तरह अंग्रजो की शरण मे जाने की कल्पना भी उसके वीर हृदय मे न उठी। इस समय तात्या के पास मुठ्ठी-भर लोग थे। अत· उसने मैदान में अग्रेजों को सामना करने की नीति त्याग दी और मराठो की सुप्रसिद्ध और सुपरिचित छापेमार लडाई की रणनीति को अपना लिया।

ग्वालियर की पराजय के बाद तात्या टोपे की सेना तथा अग्रेजी सेना मे एक और टक्कर २१ जून को जावरा अलीपुर मे हुई। इस युद्ध मे राव-साहब तथा बादा के नवाब भी थे। इसमे भी तात्या टोपे की पराजय हुई। तात्या टोपे अपने साथियो के साथ भरतपुर की ओर भागा, पर वहा ब्रिग्रेडियर शावर्स रास्ता रोके खडा था। अत. वह जयपुर की ओर मुडा। मेजर जनरल राबर्ट्स ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। वह जयपुर मे जाकर तात्या टोपे की राह देखने लगा। खबर मिलते ही तात्या टोपे अपनी सेना के साथ दक्षिण की ओर मुडकर टोंक पहुच गया। टोक के नवाब ने जब सुना कि तात्या टोपे अपनी सेना के साथ वहा आया है तो उसने अपनी सेना एक तोपखाने के साथ उसका सामना करने के लिए भेजी तथा स्वय दरवाजा बंदकर किले के भीतर बैठ गया। टोक के नवाब की सेना जाकर तात्या टोपे के साथ मिल गई। इस प्रकार चार तोपे और अनेक सैनिक

प्राप्त कर वह बूदी की ओर बढा। बूंदी के महाराव ने भी अपने किले के दरवाजे बंद कर लिये। इसके उपरात वह उदयपुर की ओर बढा। इधर कर्नल होम्स बराबर उसका पीछा कर ही रहा था। जब उसे पता चला कि तात्या टोपे भी भीलवाडे की ओर जा रहा है, तो राबर्ट्स अपनी सेना के साथ भीलवाडा जा पहुचा। वहां होम्स और राबर्ट्स की संयुक्त सेना तथा तात्या टोपे की सेना मे संघर्ष हुआ। बनास नदी के तट पर दूसरा संघर्ष हुआ। दोनो मे तात्या टोपे को पीछे हटना पडा।

राबर्ट्स तात्या के पीछे ही पड़ गया था। इसलिए तात्या ने चंबल पार करने का निश्चय किया। यहा से ब्रिगेडियर पार्क ने उसका पीछा आरभ किया। टोपे ने बडी कठिनाई से चबल नदी पार की। इसी समय चंबल मे बाढ आ जाने के कारण अंग्रेज सेना उसके पीछे न जा सकी। तात्या टोपे ने जाकर झालरापाटन को लूटा। पार्क उस पार से सब-कुछ देखता रहा पर कुछ न कर सका। यहा टोपे को सैनिक भी मिले और धन भी। तीस तोपे भी उसके हाथ में आई।

तत्या टोपे ने यह योजना बनाई थी कि वह किसी प्रकार इदोर पहुंच जाय। उसे पूरी आशा थी कि होल्कर की सेना उसका साथ देगी। वह झालरापाटन से राजगढ गया। लेकिन मालवा का सेनापति मेजर जनरल मिचेल उसकी योजना को समझ गया था, अतः वह अपनी सेना लेकर इंदौर का रास्ता रोककर खडा हो गया। उसने कर्नल लॉकहार्ट को उज्जैन के मार्ग से रवाना किया। राजगढ के निकट मिचेल तात्या टोपे की सेना के पास आ पहुंचा, पर उसकी सेना इतनी अधिक थक गई थी कि रात को आक्रमण करने के लिए वह तैयार न थी। पर सवेरा होते ही मिचेल ने देखा कि तात्या टोपे की सेना गायब हो चुकी है! उसने पुनः उसका पीछा करना शुरू किया। सिरोज नामक स्थान के युद्ध मे तात्या टोपे की कई तोपे छीन ली गई। पर तात्या खुद अपनी सेनासहित बच निकला। अंग्रेजो ने उसका पीछा जारी रखा।

अब तात्या ने नर्मदा पार कर दक्षिण जाने का विचार किया। उसे

विश्वास था कि महाराष्ट्र पहुचते ही उसे चारो ओर से सहायता प्राप्त हो जायगी तथा पेशवा के नाम पर एक बडी सेना खडीकर वह अंग्रेजो से पुन संघर्ष कर सकेगा। सबसे पहले उसने ईसागढ पर आक्रमण किया और उसे लूट लिया। यहा से बेतवा नदी पारकर वह ललितपुर पहुचा। बडी चतुरता से उसने अपनी सेना के दो दल किये। एक का नेतृत्व खुद उसने अपने हाथो मे रखा तथा दूसरे दल का नेतृत्व रावसाहब को सौप दिया। तात्या टोपे को चारो ओर से अग्रेजी सेनाए घेरती जा रही थी। अतः वह नर्मदा पार करने दक्षिण की ओर चला। रास्ते मे खरई मे एक साधारण सघर्ष हुआ। दक्षिण की ओर से एक बड़ी सेना लेकर एक अग्रेज लेफ्टीनेट कर्नल तात्या टोपे का मार्ग रोकने के लिए उत्तर की ओर से बढ़ रहा था। हुशंगाबाद से चौतालीस मील दूर तात्या टोपे ने नर्मदा पार की।

ज्योही अग्रेजो को पता चला कि तात्या टोपे ने नर्मदा पार कर ली है तो वे घबडा उठे। वे जानते थे कि दक्षिण मे अगर तात्या टोपे क्राति की अग्नि प्रज्वलित करने में सफल हो गया तो फिर उनकी खैर नही। नागपुर मे ब्रिटिश सेना होने के कारण उस ओर से दक्षिण जाना उसके लिए कठिन था। अत. तात्या टोपे ताप्ती नदी की घाटी मे घुस पडा और वहा से दक्षिण जाने के दुर्गम मार्ग की खोज करने लगा। लेकिन दक्षिण के सभी रास्तों पर अग्रेजी सेनाएं लगी हुई थी। इसलिए उसे अपनी योजना मे परिवर्तन करना पडा।

अब उसने बड़ौदा की ओर बढने का निश्चय किया। उसे आशा थी कि गायकवाड़ की सेना उससे मिल जायगी। रास्ते मे कुडगाव नामक स्थान पर होल्कर की एक सेना थी। इस सेना को तात्या टोपे ने अपनी ओर कर लिया। रायगढ के सघर्ष में तात्या टोपे की बची-खुची दो तोपे भी छीन ली गई। तात्या टोपे ने फिर नर्मदा पार की और बडौदा की ओर बढने लगा। छोटा उदयपुर मे ब्रिगेडियर पार्क और तात्या टोपे में मुठभेड हुई। तात्या टोपे को फिर भागना पड़ा। इस समय तात्या टोपे की हालत बड़ी निराशाजनक थी। बादा का नवाब भी उसके साथ भागते-भागते

थक गया था। अंत मे उसने अग्रेजो के सामने आत्म-समर्पण कर दिया।

इस समय रावसाहब और तात्या टोपे के चारो ओर अग्रेजी सेनाओ जाल फैला हुआ था। जनरल राबर्ट्स बासवाडे का रास्ता रोके खड़ा था। मेजर रॉक की सेना उत्तरी मार्ग पर तैयार खडी थी। पूर्व के मार्ग पर कर्नल सॉमरसेट पहार दे रहा था। दक्षिण की ओर नर्मदा के पास तो अंग्रेजी सेना की कई टुकडिया तैयार खडी थी। बासवाडा के जगलो मे थोडा आरामकर तात्या टोपे प्रतापगढ की ओर बढा। जीरापुर नामक स्थान पर २९ दिसबर को दक्षिण से आनेवाले लेफ्टिनेट कर्नल की सेना से उसकी मुठभेड हुई। नाहरगढ के संघर्ष के बाद मानसिह उससे आकर मिला। ७ दिसबर को अवध का फिरोजशाह भी आकर मिला। इसी समय तात्या टोपे को चारो ओर से अग्रेजी सेना ने पुन. घर लिया। उत्तर और उत्तर-पूर्वी दिशा मे नैपियर अपनी सेना लेकर खडा था। उत्तर-पश्चिम की ओर से ब्रिगेडियर शावर्स बढता चला आ रहा था। पूर्व मे ब्रिगेडियर सॉमरसेट अड्डा जमाये था। ब्रिगेडियर स्मिथ दक्षिण-पूर्व का मार्ग रोके खड़ा था। मेजर जनरल मिचेल दक्षिण की ओर पहरा दे रहा था। बिगेडियर होनर पश्चिम की ओर डटा था। इस प्रकार पाच-छः सेनाएं तात्या टोपे को पकडने मे अपनी सारी ताकत लगा रही थी। पर तात्या तो निराश होना जानता ही न था। वह पुनः जयपुर की ओर बढा। दौसा पहुचते ही शार्सव उसके पीछे पड गया। वह फिर सीकर की ओर भागा, जहा एक सघर्ष में तात्या टोपे की पुनः हार हुई।

तात्या इस समय विचलित हो उठा। उसने अपनी सारी सेना राव-साहब तथा फिरोजशाह को सौप दी और खुद परौन के जगल में छिपकर बैठ गया।

जब अग्रेजो ने देखा कि सैनिक शक्ति से वे तात्या टोपे को पकड़ने मे असमर्थ है, तो उन्होने उसे पकडने के अन्य मार्ग ढूढने शुरू किये। इसी समय तात्या के मित्र मानसिह ने अग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण किया। कर्नल मीड ने उसके घर की स्त्रियो और बच्चो को भी पकड़ लिया। तरह-

तरह की धमकिया देकर उसे तात्या टोपे को पकडने के लिए तैयार किया गया। मीड ने खुद लिखा है कि मानसिह को तैयार करने मे उसे बहुत प्रयत्न करना पडा।

तात्या टोपे रावसाहब तथा फिरोजशाह से मिलने फिर जाना चाहता था। पर मानसिंह ने उसे ऐसा करने से रोका। इस समय तात्या के साथ केवल दो ब्राह्मण, एक नौकर, दो घोडे और एक टट्टू था। परौन के जगलो मे जहा तात्या छिपा था, वहा मध्य रात्रि मे अग्रेज सैनिको ने जाकर तात्या को गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार महान सेनापति तात्या टोपे अग्रेजो का कैदी बना। उसका पीछा करनेवाले अग्रेज सेनापतियो ने उसकी बडी प्रशसा की है। उसकी वीरता, साहस, सूझ-बूझ के वे सभी कायल है।

तात्या का पीछा करनेवाले एक अग्रेज अफसर ने लिखा है—"प्रत्येक सैनिक अफसर, जो कमान संभालता था, यही समझता था कि वह तात्या को पकड लेगा। लबी-लबी मजिले तय की गई, अफसर और सैनिक अपना सामान—अपने तबू—तक फेक देते थे ताकि वे एक दिन मे चालीस मील से अधिक यात्रा कर सके। पर यह विद्रोही एक दिन में पचास मील चलता था! अत मे हमारे घोडो के पैरो मे चलते-चलते घाव हो गए। एक सप्ताह या दस दिन का विश्राम आवश्यक हो गया। पुन कोई नया सैनिक अफसर तात्या का सिर उतारने आता। यह अपने साथ ताजे दम की सेना और ऊट भी लाता था। पर उसे केवल तात्या का ही पीछा न करना पडता था, वरन उस क्षेत्र से भी अलग रहना पडता था जिसमे उसके उच्च अधिकारी कार्य कर रहे थे। तात्या का पीछा करने मे आश्चर्यजनक शक्ति लगा दी गई। जगलो मे सैकडो मरे हुए ऊट पडे थे। तात्या के लिए अथवा उसका पीछा करनेवालों के लिए सडकों अथवा नदियो की आवश्यकता न थी। जबतक पूरी तरह से हरा न दिये जायं, उसके सिपाही बढते ही जाते थे। कभी सौभाग्य से तात्या की सेना का कोई सिपाही पीछे रह जाता। पर ऐसा घने जगलो में ही होता था। तात्या को ठीक समाचार मिलते रहते थे। पास सेना होने पर वह मैदान मे कभी न

आता था। हमारी खबरे गलत निकलती थी क्योकि जनता की सहानुभूति हमारे विरोधियो के साथ थी।"

कर्नल मीड ने गिरफ्तार होते समय तात्या का निम्नलिखित शब्दो मे वर्णन किया है—"जब तात्या टोपे गिरफ्तार किया गया तो उस समय उसके पास एक तलवार, एक कुकरी तथा एकसौ अठारह मोहरो की एक थैली थी। तात्या उर्दू, गुजराती तथा मराठी जानता था। अग्रेजी मे केवल हस्ताक्षर कर सकता था। उसकी आयु प्राय ४०-४५ की थी। कद मझोला, प्राय. पाच फुट ऊंचा, धनुष की तरह भौहे, काली आखे, चेहरे पर पराक्रम की स्पष्ट छाप दिखाई देती थी। वह थोडे तथा गिने-चुने शब्दो मे ही बोलता था। अगर कोई गभीर प्रश्न उससे किया जाता तो वह 'मालूम नही' इतना ही उत्तर देता। १५ अप्रैल को उसका कोर्ट मार्शल हुआ। उसने न्यायालय मे एक बयान दिया, जो काफी लबा, स्पष्ट तथा तथ्यपूर्ण है। इस बयान पर उसने अग्रेजी मे 'तात्या टोपे' हस्ताक्षर किया।

"इस बयान मे उसने कहा—'मै कभी भी अग्रेजों की प्रजा न था। अतः मुझ पर विद्रोह का आरोप लागाया ही नही जा सकता। मैंने जो कुछ किया किया, वह नानासाहब पेशवा या रावसाहब पेशवा की आज्ञा से ही किया।' उसने न्यायालय से इतना अवश्य कहा कि उसके कार्यों मे उसके कुटुबियो का कोई हाथ नही, अत. उनको कष्ट न दिया जाय।"

१८ अप्रैल १८५६ को इस महान पराक्रमी नर-शार्दूल को शिवपुरी मे फासी पर लटका दिया गया। उसने फासी के समय आखे बधवाने से इन्कार कर दिया। खुद फासी के तख्ते पर चढा। अपने हाथ से उसने फांसी का फदा अपने गले मे डाला। मरने तक उसके प्रत्येक व्यवहार से वीरता और आत्माभिमान टपक रहा था। उसे फासी चढ़ाकर जब सेना चली गई, तब सैकडो लोगों ने इस महान देशभक्त का चरण-स्पर्श किया और साश्रुनयनों से उसका अतिम दर्शन कर भारी हृदय से वे अपने-अपने घर गए।

: २२ :

देश के अन्य भागों में हलचलें

१८५७ की क्राति के मुख्य केंद्र दिल्ली, अवध, वुदेलखड, दोआब और बिहार थे। क्रांति के अनेक सग्राम इन्ही भागो मे हुए। इन भागो मे ब्रिटिश सत्ता समाप्त हो चुकी थी। अधिकाश उत्तरी भारत मे इस क्राति की ज्वाला सबसे प्रखर रूप मे प्रकट हुई थी, पर देश के अन्य भागो मे क्राति निर्बल रही। बगाल, राजपूताना, मध्य भारत आदि स्थानों मे थोडी सी क्रातिकारी घटनाए हुई, पर तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो विध्याचल से नीचे का भाग बिल्कुल शात बना रहा।

बगाल

उस समय कलकत्ता भारत की राजधानी था। गवर्नर जनरल वही रहता था। देश मे जब क्रातिकारी घटनाए आरभ हुई तो लार्ड केनिग ने बंगाल पर विशेष दृष्टि रखी। यहा की प्रत्येक घटना पर उसकी सतत जागरूक दृष्टि बनी रही। प्रेस एक्ट द्वारा उसने पत्रो पर नियत्रण किया। शस्त्र-कानून को दृढता से लागू किया गया। कुछ स्थानो पर थोडी-बहुत अशाति हुई। कई स्थानों पर दो-चार अग्रेज मारे भी गए, पर केनिग ने बडी चतुरता से इस अशांति को दबा दिया। जिस सेना का व्यवहार थोड़ा भी संशयप्रद होता, उसे निःशस्त्र कर दिया जाता। वाजिदअलीशाह इस समय कलकत्ते मे नजरबद था। जब अवध मे क्राति की आग भडक उठी, तो उसे किले मे ले जाकर बंद कर दिया गया। इस प्रकार केनिग ने अत्यत सजग रहकर बगाल की शांति को भग न होने दिया।

मद्रास

इस क्रांति में मद्रास के सिपाहियों ने अग्रेजो का बडा साथ दिया। मद्रास के सिपाहियों के बल पर ही १७५७ मे क्लाइव ने प्लासी का युद्ध जीता था। १८५७ की सशस्त्र क्राति मे भी ये सिपाही अग्रेजों के बहुत

काम आये। मद्रास मे पूरी तरह से शाति थी। अतएव यहा की फौज उत्तर भारत रवाना की जा सकी। कर्नल नील के अधिनायकत्व मे जो मद्रासी पलटन कानपुर गई, उसने इस भाग मे ब्रिटिश सत्ता को पुनः स्थापित करने मे बड़ी सहायता दी।

राजस्थान

अगर कही राजस्थान मे विद्रोह की आग भडक उठती तो फिर परिस्थिति अग्रेजो के काबू के बाहर हो जाती। राजस्थान मे अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, प्रत्येक राज्य मे सेना थी, पर राजपूतो का स्वाभिमान खत्म हो चुका था और उनकी देशभक्ति मर चुकी थी। १८५७ की क्राति मे उन्होने पूरी तरह से अग्रेजो का साथ दिया।

इसपर भी यहा कई अग्रेज-विरोधी घटनाए हुई। अजमेर की जेल मे गडबडी हुई। पचास कैदी भाग गए। अग्रेजी सैनिको ने उनमे से कई को मार दिया और कई को गिरफ्तार कर लिया। १२ जून को नसीराबाद छावनी मे एक सैनिक ने अशाति फैलाने का प्रयत्न किया। वह घोडे पर सवार होकर छावनी मे घूम-घूमकर सिपाहियो से जोर-जोर से कहने लगा कि वे अग्रेजो को मार डाले और देश को मुक्त करे। जब गोरे सैनिक उसको पकडने गए तो उसने १२ नबर की सेना के पास जाकर शरण ली। पर अत मे वह मार डाला गया। इस प्रकार क्राति का प्रयत्न यहा भी असफल रहा। आबू मे कई उल्लेखनीय क्रातिकारी घटनाए हुई। यहा के सिपाहियो ने भी विद्रोह कर दिया। लेफ्टीनेट कोनोली अग्रेज स्त्री-पुरुषो के साथ भाग गया। विद्रोही सिपाही अजमेर की ओर बढे। रास्ते मे जोधपुर के महाराजा ने इनके विरुद्ध अनारसिह के नायकत्व मे एक सेना भेजी। आवा के ठाकुर ने विद्रोहियों की ही सहायता की। पाली मे युद्ध हुआ। जोधपुर की सेना हारकर भाग गई। जनरल लारेस ने आवा को जीतने का प्रयत्न किया, पर असफल रहा। इतने मे विद्रोही दिल्ली के लिए रवाना हो गए। रास्ते मे उनपर आक्रमण किया गया। कई सिपाही मारे गए और कई भाग गए। बाद मे एक बड़ी सेना आने

पर आवा का किला उडा दिया गया।

कोटा के सिपाहियो ने भी क्रांति का झडा खडा किया तथा रेजीडेसी पर हमला किया। पोलिटिकल एजेट मेजर बर्टन का सिर काटकर शहर-भर मे घुमाया गया। महाराव ने सिपाहियो को मदद देने से इन्कार कर दिया, अत उसे भी कैद कर लिया गया।

अत मे राबर्ट्स ने आकर इस विद्रोह को दबाया।

बंबई मे मेरठ और दिल्ली के घटनाओ के समाचारो के आने के साथ बंबई के गवर्नर एलफिस्टन ने आगरा-बंबई मार्ग सुरक्षित करने के लिए एक गोरी पलटन महू छावनी भेजी। सेनापति वुडबर्न ने औरगाबाद में सदेहास्पद सैनिको के हथियार रखवा लिये। बेलगाव और कोल्हापुर की सेनाएं भी विद्रोह करने को तैयार थीं, अत वे नि शस्त्र कर दी गई। उत्तर भारत मे नानासाहब आदि क्रातिकारी नेताओ के जो प्रचारक दक्षिण जाते थे, वे पकडकर तोप से उडा दिये जाते थे। कोल्हापुर की अशाति मे भाग लेने के अपराध मे चिमासाहब और रंगो बापूजी के पुत्र तथा भतीजे को फासी पर चढा दिया गया। जमखडी मे बख्शी बधु को भी फासी दे दी गई। रगो बापूजी का अग्रेजो ने बहुत पता लगाया, पर वह हाथ न आया। उसे पकडने के लिए पाचसौ रुपये का इनाम भी घोषित किया गया। जमखंडी के पटवर्धन को तो केवल सदेह पर ही रत्नागिरि के किले मे बद कर दिया गया।

इस प्रकार बबई मे जो थोडी-बहुत अशाति हुई, वह दृढतापूर्वक दबा दी गई। इस प्रात मे शाति स्थापित होने के बाद औरगाबाद के मुसलमान सिपाहियों को जब दिल्ली पर आक्रमण करने की आज्ञा दी गई तो उन्होंने इन्कार कर दिया। पर इन्ही सिपाहियो ने सर हेनरी ड्यूरेड को धार, इदौर, मदौसर, नीमच, आदि भागो मे शाति स्थापित करने में बडी सहायता दी।

हैदराबाद

इस समय हैदराबाद मे अफजलउद्दौला निजाम था। उसका दीवान सर सालारजग एक अत्यत प्रतिभाशाली व्यक्ति था। जब यहां दिल्ली के

स्वतंत्र होने का समाचार आया तो यहा के मुसलमान——विशेषकर मौलवी-मुल्ला लोग——बडे प्रसन्न हुए । १२ जून को सारे हैदराबाद मे मौलवियो की ओर से एक नोटिस चिपकाया गया कि मुसलमानो को चाहिए कि वे उठकर खडे हो जायं और देश से अंग्रेजी राज्य को मिटा दे । १७ जुलाई को रुहेला लोगो ने रेजीडेसी पर आक्रमण कर दिया । लेकिन रेजीडेट मेजर डेविडसन तथा सर सालारजग ने मिलकर इन अशातिकारियों को दबा दिया । १८५८ मे शोरापुर के हिदू राजा ने भी क्रातिकारियों का साथ दिया और क्राति का झंडा लहराया, पर वह भी शीघ्र ही पकडा गया । उसने अपमान का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा जेल में आत्महत्या करना श्रेयस्कर समझा ।

दक्षिण मे नरगुड नामक एक छोटा-सा राज्य था । उसका शासक भावे पुत्रहीन था । अत. उसने अंग्रेज सरकार से एक लड़का गोद लेने की आज्ञा मागी । सरकार ने यह आज्ञा न दी । अपमानित भावे ने अंग्रेजो के खिलाफ शस्त्र उठाये । सेनापति मालकम ने नरगूड पर आक्रमण किया और यहा के किले पर अपना अधिकार कर लिया । राजा की माता और पत्नी ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए नदी मे डूबकर आत्महत्या कर ली । भावे को १२ जून १८५८ को फासी दे दी गई ।

मध्य भारत

नागपुर के भोसलो का राज्य १८५३ मे अग्रजों ने अपने अधिकार में कर लिया था । यहां के लोग इस अन्याय को भूले नही थे । उत्तरी भारत की अशाति के समाचार जब यहा पहुचे तो कुछ सिपाहियो ने विद्रोह किया । पर तुरंत ही उनके शस्त्र रखवा लिये गए । इस विद्रोह के नेता अलीखां को फासी दे दी गई । बुदेलखंड के निकट होने के कारण सागर, नरसिहपुर, जबलपुर आदि कई भागो मे भी क्रातिकारी घटनाएं हुई, पर यहां के अंग्रेज अधिकारियो ने गौड के राजा की सहायता से इस भाग मे शाति कायम रखी । जबलपुर की ५२ नबर की पलटन ने विद्रोह किया, पर शीघ्र ही वह भी निःशस्त्र कर दी गई । भूतपूर्व गोड राजा शंकरशाह तथा

उसके पुत्र देवीशाह को अशाति फैलाने के अपराध मे जबलपुर मे फव्वारे के पास फासी दे दी गई। इस प्रकार मध्य भारत भी प्राय. शात ही रहा।

दक्षिण मे पूर्ण शाति स्थापित करने के बाद सर ह्यू रोज एक विशाल सेना लेकर महू की छावनी से निकला। अनेक अशात स्थानो पर शाति स्थापित करते हुए वह झासी की ओर बढा। मद्रासियो की एक दूसरी सेना के साथ जनरल ह्विटलॉक को जबलपुर-प्रयाग-मिर्जापुर-मार्ग साफ करने का काम सौपा गया। ह्विटलॉक २६ जनवरी को दमौह पहुंचा। वहा के क्रातिकारियो की टुकडी का सफाया कर वह ६ अप्रैल को बादा पहुचा।

बादा का नवाब मुसलमान था, पर वह बाजीराव पेशवा तथा उसकी प्रेयसी मस्तानी का वशज था। जब नानासाहब ने अंग्रेजो के विरुद्ध रण की घोषणा की तो उसकी नसो मे बहनेवाला बाजीराव पेशवा का रक्त भी उबल उठा। वह भी इस क्राति में शामिल हो गया।

चित्रकूट का माधवराव पेशवा इस समय केवल नौ वर्ष का बालक था। ह्विटलॉक ने उसपर विद्रोही होने का आरोप लगाया और उसे गिरफ्तार कर लिया। चित्रकूट के पेशवा के पास बहुत बडी सपत्ति थी। बहुमूल्य जवाहरात थे। ह्विटलॉक और उसकी सेना ने वे सब लूट लिये। ह्विटलॉक ने सुना था कि चित्रकूट के पेशवा के पास बहुत बडी सपत्ति है। इस धनराशि को प्राप्त करने के लिए उसने कई बहाने किये। चित्रकूट से उसने सेनापति के पास यह रिपोर्ट भेजी—"मैंने विद्रोहियो की राजधानी को लूट लिया है। यहा के तोप और बंदूक बनाने के कारखानो को नष्ट कर दिया है। इस प्रकार अंग्रेजो पर आनेवाले सकट को मैंने दूर कर दिया है।" पर वास्तविकता यह थी कि यहा न बदूक बनाने के कारखाने थे, और न कोई क्रांतिकारी ही थे। ह्विटलॉक ने अपनी लूट का समर्थन करने के लिए ही ऐसी झूठी रिपोर्ट तैयार की थी।

: २३ :

विक्टोरिया का घोषणा-पत्र

अग्रेजो ने क्राति को नष्ट करने के लिए कोई भी उपाय बाकी न रखा। सैनिक आक्रमण के साथ-साथ क्रातिकारियो मे फूट के बीज बोना, धन देकर लोगो को पक्ष मे करना, डर दिखाकर लोगो को भयभीत करना, आदि अनेक उपायो से उन्होने क्राति को कमजोर करने का प्रयत्न किया। इसी सिलसिले मे इग्लैड की महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा-पत्र १ नवंबर १८५८ को प्रकाशित किया। यह घोषणा-पत्र भी क्राति को दबाने की एक चाल-मात्र था। घोषणा-पत्र मे जनता की शिकायतो को दूर करने का आश्वासन था। इससे स्पष्ट होता है कि विद्रोह के कारण ब्रिटिश सरकार की दृष्टि मे भी न्याय्य तथा उचित थे। घोषणा-पत्र मे सक्षेप मे यह कहा गया था :

"हिंदुस्तान पर शासन करने का अधिकार ईस्ट-इंडिया कंपनी से इंग्लैंड की महारानी अपने हाथो मे ले लेती है। कपनी की राजाओ और रियासतो से जो संधियां हुई थी, उनका पूरा तरह से पालन होगा। महारानी की इच्छा राज्य-विस्तार करने की नही है। वह तो राजाओ के अधिकार, मान और प्रतिष्ठा को कायम रखकर देश मे शाति और सुराज्य स्थापित करने मे राजाओ से सहायता की इच्छुक है। प्रत्येक प्रजाजन से, चाहे वह ब्रिटिश भारत का हो अथवा देशी रियासतों का, समान व्यवहार किया जायगा। ईसाई धर्म पर पर यद्यपि हमारा पूर्ण विश्वास है, तब भी हम अपने धार्मिक विचार प्रजाजनो पर नही लादेगे। सभी धर्मो के अनुयायियो को कानून की दृष्टि से समान पक्षपात-हीन सरक्षण प्राप्त होगा। सरकारी नौकरियो के लिए धर्म का आधार नही माना जायगा। शिक्षा, योग्यता और व्यवहार के आधार पर ही उत्तरदायी पदों पर नियुक्तिया की जायगी। हिंदुस्तानियो की पूर्व-परंपराओं, रीतियो तथा प्राचीन रूढ़ियो की पूरी प्रतिष्ठा की जायगी। देश मे शाति स्थापित होते ही उद्योग-धधो को प्रोत्साहित किया जायगा।

सार्वजनिक उपयोग के काम आरभ किये जायगे। शासन का उद्देश्य प्रजा का हित ही माना जायगा।"

साथ ही इस घोषणा-पत्र मे यह भी कहा गया था—"१ जनवरी, १८५९ तक जो विद्रोही क्षमा-याचना कर आत्म-समर्पण कर देगा, उसे क्षमा प्रदान की जायगी, पर प्रत्यक्ष हत्या और स्त्रियो तथा बच्चो की हत्या के अपराधियो को क्षमा न दी जायगी।"

उपरोक्त घोषणा-पत्र अत्यत आदर्शवादी, उच्च विचारो से परिपूर्ण तथा दूरदर्शी मालूम होता है। पर यह उदारता अन्याय से किये गए राज्य-विस्तार की कडवी गोली को हिदुस्तानियो के गले से उतारने के लिए उस-पर शक्कर के लेप-जैसी ही थी। नही तो अगर इसमे जरा भी सच्चाई होती तो राजाओ से की गई सधियो का पालन करने का आश्वासन देते समय इन सधियो को निर्लज्जतापूर्वक तोडकर जो राज्य अग्रेजी साम्राज्य मे मिला लिये गए थे, वे उनके अधिकारियो को क्यो नही लौटाये गए? प्रत्येक प्रजाजन से समान व्यवहार करने की घोषणा भी कोरी थी। भारतीयो के साथ ब्रिटिश सरकार ने जैसा व्यवहार किया, वह इतिहास से छिपा नही है। इसी प्रकार योग्यता के आधार पर उच्च पदो पर नियुक्त करने की घोषणा भी धोखे के सिवा क्या थी? इस यह घोषणा ब्रिटिश सरकार की एक चाल-मात्र थी। इसके पीछे न ईमानदारी थी और न इसमे दिये गए आश्वासनो को पूरा करने की इच्छा ही।

इस घोषणा का बिल्कुल वैसा ही परिणाम हुआ जैसाकि अग्रेज चाहते थे। क्राति की गति मे शिथिलता आते ही अनेक लोग—विशेषकर सिपाही—इस घोषणा-पत्र का आधार लेकर क्षमा-याचना कर अपने-अपने घर चले गए। पच्चीस हजार लोग क्राति से अलग हो गए। इस प्रकार इस घोषणा-पत्र ने क्रांति की धीमी पडती गति मे पूर्ण विराम लाने मे सफलता प्राप्त की।

: २४ :

महायज्ञ की आहुतियां

इस प्रकार १८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य समर असफल सिद्ध हुआ। १० मई, १८५७ को मेरठ में जिस क्रांति का शंखनाद हुआ था, वह १८ अप्रैल, १८५९ को वीर सेनानी तात्या टोपे के महान बलिदान के साथ समाप्त हो गई। अशांति की छुटपुट घटनाएं इसके बाद भी देश के कई स्थानों में होती रहीं, पर क्रांति के महास्रोत में न जीवन रह गया और न प्रबल अबाध गति। स्रोत सूख चुका था। क्रांति के अनेक सेनानी या तो रणांगण में अपने प्राण न्योछावर कर चुके थे, अथवा अंग्रेजों के हाथों में पड़कर फांसी के तख्ते पर झूल चुके थे। जो जीवित बचे थे, वे अवध के उत्तरी जंगलों में अथवा नेपाल की विकट तराइयों में आत्मरक्षा के प्रयत्न में इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। इस परिच्छेद में क्रांति के इन्हीं कुछ सेनानियों के भविष्य पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

दिल्ली पर विजय प्राप्त करते ही अंग्रेजों ने मुगल सम्राट बहादुरशाह, उसकी बेगम ज़ीनतमहल, उसके पुत्रों तथा नातों को गिरफ्तार कर लिया। नरपशु हडसन ने मिरजा खिजिर सुलतान, मुगल मिरजा और अबूबकर मिरजा, इन तीन शहजादों की आम रास्ते पर ही हत्या कर डाली। यही नहीं, तीनों शहज़ादों के सिर काटकर थाली में रखकर बहादुरशाह के सामने लाये गए। पर उसने सम्राटोचित शान से कहा—"तैमूर की संतानें इसी तरह सुर्ख रूह होकर बुजर्गों के सामने आनी चाहिए।" इक्कीस अन्य शहजादों को फांसी दे दी गई। बहादुरशाह पर सैनिक-न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। अंग्रेज सरकार का पेंशनर होने पर भी विद्रोहियों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने का उसपर आरोप लगाया गया। और आरोप यह था कि उसने अपने को हिंदुस्तान का बादशाह घोषित किया था और ४९ अंग्रेजों की हत्या में सहायता दी। इसी प्रकार के कई अन्य आरोप भी लगाये गए।

न्याय के ढोग का यह एक ऐतिहासिक उदाहरण है। मुगल सम्राट को अंग्रेजी न्यायालय ने देश-निकाले का दंड दिया। उसे इस देश से हटाकर ब्रह्मदेश की राजधानी रगून मे प्रतिबध मे रखा गया। पतिपरायणा बेगम जीनतमहल तथा उसके पुत्र जवाबख्त तथा उसकी पत्नी शहजादी ने वृद्ध बादशाह के साथ निर्वासन में जाकर रहना ही पंसद किया।

इसी नजरबदी मे ही स्वदेश से दूर मुगल सम्राट बहादुरशाह की ७ नवंबर, १८६२ को मृत्यु हो गई।

क्राति की वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई ग्वालियर के रणागण मे १८ जून को स्वर्गवासी हुई थी। लक्ष्मीबाई ने अपनी वीरता, पराक्रम और साहस से कई बडे अग्रेज सेनापतियो के छक्के छुडा दिये थे। मृत्यु के पूर्व उसने अपने विश्वसनीय सेवक रामरावगोविद को अपने पुत्र को सुरक्षित रखने के लिए सौप दिया था। महारानी लक्ष्मीबाई अंतिम युद्ध मे पुरुष वेश धारण किये हुए थी। अत. अग्रेज यह न समझ सके कि यही महारानी लक्ष्मीबाई है। महारानी के गिरने पर उन्होंने उसकी ओर विशेष ध्यान नही दिया। अधकार होते ही महारानी के सेवक घायल महारानी को गगादास बाबा के मठ मे ले गए। वहा उसकी दवा आदि का प्रबंध किया गया। यही महारानी का प्राणात हुआ। पास ही घास का एक ढेर लगा हुआ था। इसमे लक्ष्मीबाई का शव रखा गया और उसका अग्नि-सस्कार किया गया। उसकी अतिम इच्छा, कि मेरे शव को अग्रेज छू न सके, पूर्ण हुई। लक्ष्मीबाई की मृत्यु के साथ ही मानो क्राति की भाग्य-लक्ष्मी और वीरश्री का भी अंत हो गया।

जगदीशपुर का जमीदार कुंवरसिह इस क्राति का एक प्रमुख नेता था। अस्सी वर्ष की अवस्था होने पर भी कई बडे-बड़े अग्रेज सेनापतियो के रणक्षेत्र में दात खट्टे कर सात महीनों तक उसने बिहार मे क्राति का झडा ऊचा रखा। २४ अप्रैल, १८५८ को यह महान सेनानी अपनी मातृभूमि जगदीशपुर मे सदा के लिए सो गया। इस वीर की मृत्यु के बाद उसके भाई अमरसिंह ने कई दिनो तक युद्ध जारी रखा। पर कुछ दिनों के बाद

उसे हारकर तराई के जगलो मे आश्रय लेना पडा। इस प्रकार देश के पूर्वीय भाग मे भी क्राति की आग ठंडी हो गई।

लखनऊ पर यद्यपि अग्रजो ने १७ मार्च, १८५८ को अधिकार जमा लिया था, पर अवध की क्रांति अभी समाप्त नही हुई थी। अवध मे अनेक स्थानीय नेता अपने-अपने दलो के साथ क्राति का झडा ऊचा किये हुए थे। क्राति का नेता मौलवी अहमदशाह अब भी अग्रजो की शक्ति को चुनौती देते हुए स्वच्छद घूम रहा था। ५ जून को इस पराक्रमी मौलवी ने अंग्रेजो के मित्र पोवेन के राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा के भाई ने निशाना साध-कर मौलवी पर गोली चलाई, जिसने उसके प्राण ले लिये। अवध के सर्व-श्रेष्ठ क्रातिकारी नेता का इस प्रकार अत हुआ।

कानपुर के प्रथम युद्ध के बाद ही अजीमुल्ला ऐसा लुप्त हो गया कि फिर उसका पता ही न चला।[1] रुहेलखड के मुहम्मदअली खा, बरेली के खानबहादुर खा और ज्वालाप्रसाद अग्रेजो के पजे मे पड गए। वे फासी पर लटका दिये गए। लखनऊ के मम्मूखा और फर्रुखाबाद के नवाब तफ़ज्जुल-हुसेन खा भी पकड़े गए। उन्हें आजन्म कारावास का दड दिया गया। बादा के नवाब ने अग्रेजो के सामने आत्म-समर्पण कर दिया और फिर मक्का के लिए रवाना हो गया। फिरोजशाह अरब भाग गया।

नानासाहब की मृत्यु के संबंध मे तरह-तरह की कथाएं प्रचलित है। कानपुर की लड़ाई के बाद नानासाहब अवध और रुहेलखंड मे रहा। कालपी का कार्य-भार संभालने के लिए उसने अपने भतीजे रावसाहब को तात्या टोपे के पास भेजा था। ग्वालियर के युद्ध के बाद अग्रेजो की सेना अवध में घुस पडी। स्थान-स्थान पर क्रातिकारियो की खोज होने लगी।

---

[1]डॉ० सेन के अनुसार नेपाल में अज़ीमुल्ला नानासाहब के साथ ही था और उसका देहांत नेपाल में ही बुटवल नामक स्थान पर मलेरिया ज्वर से अक्तूबर १८५९ में हुआ।

नानासाहब, अवध की बेगम, बालासाहब, मेहदी हसन, बेनीमाधव आदि को उत्तर की ओर जाना पडा। ये लोग कुछ दिनों तक बरेली के जगलों मे रहे, पर वहा इन्हे अंग्रेजी सेना ने चैन न लेने दिया। अंत मे क्रातिकारी नेता नेपाल के जगलों मे जाकर रहने लगे। जब अंग्रेजो को पता लगा कि नानासाहब आदि नेपाल के जगलो मे जाकर रहने लगे है, तो उन्होने वहा भी सेना भेजी। १२ दिसंबर, १८५८ को राप्ती नदी के किनारे घनघोर युद्ध हुआ। क्रातिकारी सेना की सख्या पाच हजार थी। नानासाहब, बालासाहब, अवध की बेगम हजरत महल, मेहदी हसन आदि नेता हाथियों पर चढकर खुद सेना का सचालन कर रहे थे। इस युद्ध मे अंग्रेज सेनापति कालिन कैंपबेल भी घबडा उठा। अज्ञात जंगली और पहाडी स्थान मे युद्ध करना अत्यंत कठिन होता है। नानासाहब आदि नेपाल के भीतरी जगलो में घुस गए। अंग्रेज सेना को वापस लौटना पडा। बालासाहब पेशवा का इसी युद्ध मे अत हुआ।[१] इस प्रकार सैनिक विजय प्राप्त करने की महत्वाकाक्षा का किला ढह जाने पर अंग्रजो ने नेपाल के राणा जगबहादुर पर दबाव डाला कि वह नानासाहब को अपने यहा से निकाल दे। राणा जगबहादुर ने एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसके द्वारा इन लोगो को आज्ञा दी गई कि वे नेपाल से बाहर निकल जायं। साथ-ही-साथ उसने अपने एक विश्वसनीय कर्मचारी बद्रीसिह को अवध की बेगम तथा नानासाहब के पास भेजा। उसने उनसे कहा कि अगर वे अपनी सेना को वापस हिदुस्तान भेज दे तो राणा उनको सुरक्षितता-पूर्वक रख सकेगा। नानासाहब और अवध की बेगम ने इस सुझाव को न माना, क्योकि वे जानते थे कि सेनाओ के जाते ही राणा उनको पकडकर अंग्रेजो के हवाले कर देगा।

नानासाहब के साथ उसके कुटुब की स्त्रिया भी नेपाल गई थी। चालीस वर्ष तक वे वहा रही। राणा जगबहादुर ने उनकी सहायता की। नाना-

[१]डॉ० सेन के अनुसार बालासाहब का देहांत भी युद्ध में न होकर अजीमुल्ला की तरह मलेरिया रोग से ही हुआ। नानासाहब की मृत्यु भी उनके अनुसार इसी रोग से हुई।

साहब की बहन कुसुमावती उर्फ बयाबाई आप्टे भी नानासाहब के साथ नेपाल मे रही। उसकी मृत्यु १९१७ में हुई। मृत्यु के पूर्व उसने नानासाहब की मृत्यु के सबध मे इतिहासाचार्य राजवाडे से जो बातें कही वे सबसे अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। उसीके शब्दो में—"नानासाहब नेपाल की ओर बढे। पर वहा उन्हे आश्रय देने के लिए कोई तैयार न था। नेपाल की सीमा में जाते ही वहा का राजा उन्हे बाहर कर देता। अंग्रेजी राज्य मे जाना तो कठिन ही था। अंग्रेजो का सुदर्शन-चक्र रात-दिन उनपर पहरा दे रहा था। नाना को दिन-रात चैन न थी। १४ मास तक कभी इस सीमा में कभी उस सीमा मे, इस प्रकार भागते ही रहना पड़ा। अंत मे अत्यधिक श्रम और कष्टो के कारण नाना को ज्वर आने लगा। यह विषम ज्वर मे परिणत हो गया।

"नानासाहब ज्वर मे बेहोश पड़े थे, लेकिन इसपर भी नेपाल के राणा उनसे अपनी सीमा से बाहर जाने का तकाजा करते ही रहे। तब लोगो ने हम स्त्रियों को पास के गाव मे भेज दिया और नानासाहब को देवखोरी नामक गांव के पास ले गए। वही उनका अंत हुआ। वही लोगो ने उनका दाह-सस्कार किया और उनकी अस्थि लेकर स्त्रियों के पास वे लोग आये। नानासाहब की उत्तर-क्रिया मेरे ही सामने हुई। उस समय मैं बारह वर्ष की थी।"

इस प्रकार अक्तूबर १८५९ मे प्रथम स्वातंत्र्य-समर के महान नेता नानासाहब की मृत्यु हुई।

नानासाहब की मृत्यु के बाद रावसाहब नेपाल से ग्वालियर के लिए रवाना हुआ। जब रावसाहब पंजाब मे घूम रहा था, तब एक देशद्रोही ने अंग्रेजो को उसके बारे मे खबर दे दी। रावसाहब पकडा गया। वह कानपुर लाया गया। न्याय का ढोंग रचकर यही उसे फांसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार पेशवा-कुटुब स्वतत्रता की वेदी पर बलिदान होकर अमर हो गया।

अवध की बेगम किसी प्रकार अफगानिस्तान पहुंची। वही उसने

अपना शेष जीवन बिताया ।

यद्यपि नानासाहब की मृत्यु की खबर अग्रेजो तक पहुच चुकी थी, तथापि उनकी प्रतिहिसा की भयकरता उन्हे इसपर विश्वास नही करने थी । वे तो नानासाहब को पकडकर अत्यंत क्रूरता से उसका वध करने पर तुले हुए थे । इतिहासकारों मे भी इस संबंध मे तीव्र मतभेद है । कानपुर के अपराधो की जाच करनेवाले शेरर ने अपने ग्रथ मे लिखा है—"इसी वर्ष (१८५९) जाडो मे नानासाहब की मृत्यु हुई, क्योकि इसी समय उसके आश्रित अनेक लोग नेपाल से अयोध्या होते हुए आये ।"

इसी समय ज्वालाप्रसाद भी पकडा गया । उसने भी कहा—"नानासाहब की मृत्यु के समय मै उपस्थित न था, पर दाह-क्रिया मेरी आखो के सामने हुई ।"

अभीतक जितनी बाते सामने आई है, उनके आधार पर तो यही प्रतीत होता है कि नानासाहब की मृत्यु अक्तूबर, १८५९ मे ही हुई ।

: २५ :

असफलता के कारण

इस प्रकार १८५७ का प्रथम स्वातन्त्र्य-समर असफल रहा । क्राति-कारी शक्तियो से प्रतिक्रियावादी शक्तिया अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई । इस परिच्छेद मे हम इस सग्राम की असफलता के कारणो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे, और यह भी देखने का प्रयत्न करेगे कि उस समय देश मे ऐसी कौन-सी शक्तिया थी और इस संग्राम के स्वातंत्र्य-वीरों के सगठन में ऐसी कौन-सी निर्बलताए थी, जिनके परिणामस्वरूप देश को स्वतन्त्र करने के इस महान प्रयत्न को असफलता प्राप्त हुई ।

जहातक क्राति की योजना अथवा सगठन का संबध है, वह संसार की किसी भी सफल क्रांति की योजना और संगठन से कम न थी । योजना, सगठन और प्रचार के तरीके से इसके नेताओं की बुद्धिमत्ता तथा कुशलता प्रकट होती है । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, तथा बंगाल से लेकर

गुजरात तक कमल और चपातियो ने घूम-घूमकर प्रत्येक सैनिक, राजा-महाराजा, जमीदार, उच्च अधिकारी, पुलिस और जेल के अफसर, गाव के चौकीदार आदि सभी लोगो के पास क्राति का सदेश पहुंचाया। सहस्रो साधु तथा फकीर-वेशधारी प्रचारक देश मे फैलकर क्राति के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने मे लगे हुए थे। इतनी देशव्यापी तैयारी जिस सावधानी से की गई, वह अत्यंत आश्चर्यजनक थी। इन तैयारियो का अंग्रेजो को पता न लगा। पर केवल सुदर और कुशल योजना ही सगठन की सफलता के लिए पर्याप्त नही होती। व्यवहार मे भी इसके अक्षुण्णु बने रहने की आवश्यकता रहती है। यह योजना और सगठन अंत तक दृढ नही रह सका।

इस सग्राम के आधार पर देशी सौनक ही थे। ये सैनिक भावी क्राति के विचारो को योजनानुसार गुप्त न रख सके। उनके नेताओ ने उनको स्पष्ट-रूप से आदेश दिया था कि ३१ मई तक वे बिल्कुल शात रहे और अपने अधिकारियो को जरा भी सदेह न होने दे। पर सैनिक इन आदेशो का पालन न कर सके। इस सग्राम की योजना बनानेवालो ने देश-भर मे क्राति का श्रीगणेश करने की तिथि ३१ मई निश्चित की थी। इस दिन सारे देश मे एक साथ अंग्रेजो पर आक्रमण होनेवाला था। पर निश्चित तिथि के इक्कीस दिन पूर्व ही मेरठ के सैनिको ने विद्रोह कर दिया। परिणामस्वरूप देश-भर मे एक साथ क्राति का आरंभ नही हुआ। इससे अंग्रेज भी सावधान हो गए।

अंग्रेजी सेना की एक बडी विशेषता थी उसका जबरदस्त अनुशासन। पर अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिक जब क्राति मे सम्मिलित हुए तो उन्होने इस अनुशासन को पूरी तरह से तिलाजलि दे दी। विद्रोह करना, अधि-कारियो की हत्या करना, सरकारी खजाने लूटना, जेल तोडकर अपराधियो को मुक्त करना, शस्त्रास्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना होना, यही सब उनके लिए क्रांति थी। प्रत्येक सिपाही अपने को क्राति का सरदार मानता था। अधिकारियो अथवा अपने नेताओ की आज्ञा मानना विद्रोही सिपाही

व्यर्थ समझते थे। परिणामस्वरूप क्राति के नेताओ की अधिकाश शक्ति इन अनुशासनहीन सैनिको को संभालन मे ही खत्म हो जाती थी।

इस अनुशासनहीनता का प्रभाव उनकी कार्यक्षमता पर पडे बिना कैसे रहता ? क्राति की सफलता के लिए आवश्यक साहस और पराक्रम भी उनमे नही था। कानपुर के मिट्टी के कच्चे घेरे तथा बालू के पीछे छिपे मुट्ठी-भर अंग्रेजो को सहस्त्रो की सख्या मे घेरनेवाले सिपाही तोपे आदि होते हुए भी पराजित करने मे असफल रहे। इसी प्रकार लखनऊ की रेजीडेसी मे आश्रय लेनेवाले घिरे हुए अंग्रेज़ दस हजार विद्रोहियो के आक्रमण को दस मास तक चुनौती देते रहे। दिल्ली मे एक लाख विद्रोही सैनिक सभी सामग्री से सुसज्जित होने पर भी अग्रेजो के आक्रमण से उसकी रक्षा न कर सके। ये सैनिक अभी तक अपने अग्रेज अफसरो की आज्ञा का पालन करने के आदी थे। जब उन्होने स्वतत्रतापूर्वक लडना आरंभ किया, तो उनमे साहस और आत्म-विश्वास की कमी स्पष्ट-रूप से दिखाई देने लगी।

स्वातंत्र्य-सग्राम की सफलता के लिए जिस राष्ट्रीय ऐक्य की आवश्यकता रहती है, उसका १८५७ मे अभाव ही था। जहा कुछ लोग सिर पर कफन बाधकर अपने देश को स्वतत्र करने के लिए निकल पडे थे, वहा कुछ लोग ऐसे भी थे जो इन धर्मवीरो और स्वातंत्र्य-वीरो के उद्देश्य को असफल बनाने मे अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। इस क्राति के दमन का अधिकाश श्रेय अग्रेजो की जगह हिदुस्तानियों को ही है। सिखो और गुरखों ने इस युद्ध मे अंग्रेजो की पूरी सहायता की। अग्रेजो की फूट डालने की नीति इस समय खूब काम में आई। दिल्ली में बहादुरशाह के सम्राट घोषित होते ही अग्रेजों ने सिखों से कहा—"तुम्हारे गुरुओ के साथ अन्याय करनेवालो से बदला लेने का समय आ गया है।" अग्रेजो ने उन्हे इस भविष्यवाणी का भी स्मरण दिलाया कि एक दिन सिख सरदार दिल्ली को लूटेगे और कहा कि वह समय आ गया है।

इसी प्रकार अवध मे जब अग्रेजी सत्ता समाप्त की गई, तो अग्रेजो ने

नेपाल के गुरखो को याद दिलाई कि अवध के नवाब ने नेपाल-युद्ध में अग्रेजो की सहायता की थी, अत अब वे अवध पर विजय प्राप्त करने में अग्रेजो की सहायता कर पूरा-पूरा बदला चुका सकते है । गुरखे उनकी बातो में आ गए और गुरखा सेना अग्रेजो की सहायता के लिए आ पहुची ।

इस युद्ध के प्रारंभिक काल मे नेताओ की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और व्यवहार-कुशलता के कारण हिदुओ और मुसलमानो मे एकता दिखाई देती थी । पर कुछ ही महीनो बाद दबा हुआ यह मतभेद पुन उभरने लगा । दिल्ली मे हिदुओ और मुसलमानो के मतभेद ने उग्र रूप धारण कर लिया । कई कट्टरपथी मुसलमान हिदुओ के साथ काम करने को तैयार न थे । गो-हत्या के प्रश्न को सामने लाकर कई जिहादी मुसलमानो ने दिल्ली की हिदू-मुस्लिम एकता को नष्ट कर डाला । बहादुरशाह ने इस एकता को बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया, पर उसे आशिक सफलता ही प्राप्त हुई । अवध मे भी इसी प्रश्न ने स्वातन्त्र्य सेना को निर्बल बनाया । कानपुर की प्रथम विजय के बाद ही कुछ मुसलमानो ने नानासाहब के विरुद्ध आदोलन आरभ किया । यहातक कि उन्होने नत्था खा नामक व्यक्ति को कानपुर का नवाब घोषित करने की भी योजना बनाई थी ।

दक्षिण की मुस्लिम सेना ने दिल्ली और अवध के मुस्लिम राज्यो के विरुद्ध लडने से इन्कार कर दिया था । पर इसी सेना ने प्रयाग, कानपुर, कालपी, ब्रह्मावर्त आदि भागो मे जाकर अंग्रेजो को स्वातन्त्र्य-संग्राम को कुचलने मे पूरी सहायता दी । अंग्रेजो ने इस भावना को उभाडते हुए दिल्ली तथा अवध के विरुद्ध सिखो और गुरखो का उपयोग किया । इस तरह अंग्रेजो ने अपनी भेद-नीति से पूरा-पूरा लाभ उठाया ।

देशी राजाओ ने अपने देशवासियो की सहायता करने के बजाय अग्रेजो की सहायता कर अपने देशवासियो को कुचलने मे सहायक होना ही अपना धर्म माना । शिदे और होल्कर जैसे मराठे राजाओ ने और इसी प्रकार राजपूत राजाओं ने भी अपने पूर्वजो की वीरता और देशप्रेम को भुलाकर मातृभूमि को दासता की शृंखला मे जकड़े रखने मे सहायक

होना ही ठीक समझा। ये राजा-महाराजा साधन-सपन्न थे। पर उनके साधन हिदुस्तानियो को नही, अंग्रेजों को प्राप्त हुए।

सग्राम के नेताओ ने यह योजना बनाई थी कि सारे हिदुस्तान मे एक साथ क्राति आरंभ हो। दक्षिण मे सगठन का काम सतारा के रगो बापूजी को सौपा गया था। पर जहां उत्तरी भारत मे क्राति का शखनाद हुआ, वहा विध्याचल का दक्षिणी भाग प्रायः शात ही बना रहा। वहा कोई महत्त्वपूर्ण घटना नही हुई। परिणामस्वरूप दक्षिण की अग्रेजी सेना को उत्तर आकर अशाति को दबाने की छूट मिल गई। योजनानुसार अगर दक्षिण और उत्तर भारत मे एक साथ अशाति होती, तो अंग्रेजी सेना तितर-बितर रहती और वह कोई प्रभाव-पूर्ण कार्य न कर सकती। लेकिन ऐसा हुआ नही। यही नही बबई और मद्रास की सेनाओ ने कानपुर, झासी, ग्वालियर आदि स्थानो की अशाति को दबाया भी। अगर ये सेनाए दक्षिण ही में रहती, तो निःसदेह अंग्रेजो के लिए नानासाहब, तात्या टोपे और झासी की रानी पर विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता।

असफलता का सबसे बडा कारण यह था कि इस महान क्राति का ऐसा कोई सर्वमान्य नेता न था जो देश मे एकसूत्रता स्थापित करता। यद्यपि मुगल सम्राट बहादुरशाह इस क्राति का नेता घोषित किया गया था, तथापि वह वृद्ध व अत्यंत प्रभावहीन था। उसकी कोई नही सुनता था। इस प्रकार की विराट क्राति के नेता के लिए आवश्यक गुणो का उसमे सर्वथा अभाव था। बहादुरशाह दिल्ली के ही मोर्चे मे एकसूत्रता और कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने मे असफल रहा। दिल्ली की स्वातंत्र्य-सेना के नायकों का आपसी वैमनस्य और द्वेष बहुत अधिक बढ़ गया था और उनकी कार्य-क्षमता बहुत कम रह गई थी।

उस समय की भावना के अनुसार देश का सर्वमान्य नेता वही हो सकता था जो राजवश का हो। साधारण कुटुब के व्यक्ति को सब लोग नेता नही मान सकते थे। साधारण कुटुब का कोई व्यक्ति अगर अपनी प्रतिभा और पराक्रम से आगे बढ़ता, तो लोग उससे ईर्ष्या करने लगते और उसको

असफल बनाने की चेष्टा करते । दिल्ली मे बख्तखा तथा लखनऊ मे मौलवी अहमदशाह की असफलता के यही प्रमुख कारण थे । इस सग्राम के प्रारभिक-काल मे इसी कारण तात्या टोपे को नेतृत्व प्राप्त नही हुआ । महारानी लक्ष्मीबाई पराक्रमी और वीर थी, पर स्त्री होने के कारण वह भी क्राति का नेतृत्व अपने हाथो मे न ले सकी । नानासाहब का नेतृत्व भी कानपुर तक ही सीमित रहा ।

इस प्रकार इस सग्राम को कोई देश-मान्य नायक नही मिला और १८५७ का स्वातन्त्र्य-सग्राम हिदुस्तान से ब्रिटिश सत्ता को उखाड फेकने मे असफल रहा । दासता की शृखलाए तोडकर स्वतत्र होने की राष्ट्र की महत्वाकाक्षा पूर्ण न हो सकी । स्वातन्त्र्य-समर का यज्ञ-कुड दो वर्ष तक धधकने के बाद ठडा पडने लगा । पर इसके बाद आनेवाली प्रत्येक पीढी ने इस परम पावन हुताशन को अपने बलिदानो से सदा प्रज्वलित रखा । देश को दासता से मुक्त करने के राष्ट्रीय सकल्प की जो मशाल प्रज्वलित की गई थी, वह कभी अधिक तो कभी कम प्रखरता से सतत जलती रही । प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम के सैनिको का स्वप्न ठीक ९० वर्ष बाद पूरा हुआ ।